वायु-पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित)

सम्पादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ
और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान, बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान,
बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

★

प्रथम संस्करण
१९६७

★

मुद्रक :
बम्बई भूषण प्रेस,
मथुरा

★

मूल्य :
७) रुपया

भूमिका

(भारतीय पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है। संसार के अन्य प्राचीन देशों—जैसे यूनान, ईरान आदि में भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते हैं, जिनको वहां का पुराण कहा जाता है, पर वे प्रायः वीर लोगों के अद्भुत साहस तथा भयंकर संकटों का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने की कथायें-मात्र हैं। पर भारतीय पुराणों का मुख्य उद्देश्य साधारण जन-समाज में धार्मिक भावों का संचार करना है। यद्यपि उनमें भी सत्य, अर्द्ध सत्य और काल्पनिक कथायें हैं, रूपक, अलंकार और अतिशयोक्तियों का भी बाहुल्य है, पर लेखकों का लक्ष्य लोगों को सदैव धर्म-प्रेरणा देने का ही रहा है। यह ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ अनेक स्थानों पर सीमा को पार कर जाती हैं, उन्होंने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर विरोधी बातें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यों के हृदय में धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सांसारिक सुखों के लालच से ही सही, वे धर्माचरण को अपनावें। उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन करेगा उसकी रक्षा भी धर्म करेगा। संसार में जितनी उन्नति, उत्कर्ष, कल्याण है वह सब धर्म पर ही आधारित है। इसलिए लोगों को किसी भी प्रकार से धर्म की प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा।

जन-साधारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणों के मुख्य विषय *सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, मन्वन्तर* और *युगों* का वर्णन, देव, ऋषि तथा राजाओं के वंशों का वर्णन कहा गया है। पर इनका विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भजन, देवोपासना को भी उनमें सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, उपाख्यान, गाथामें एक यही दृष्टि-बिन्दु रक्खा है कि लोगों को धर्म के प्रति आकर्षण हो और वे अपनी बुद्धि, शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अंशों में धार्मिकता की तरफ अग्रसर हों। हो सकता है कि जिन लोगों ने अपने धर्म-विषयक विचार बहुत ऊँचे तथा तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले बना रक्खे हैं,

उनको पुराणो के धर्म-सम्बन्धी विवेचन से निराशा हो, उनमे त्रुटियाँ नजर आवें, पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियो के लिये उत्तम-मध्यम धर्माचरण की आवश्यक्ता को व्यवहारिक समझते हैं, वे पुराणो के मत को ठीक ही बतलावेंगे, एक धर्मशास्त्र मे कहा गया है—

"अप्सु देवना बालानाम, दिव देवता मनीषिणाम् ।"

"बालकों का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनता का देवता गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ स्थान हैं। विद्वानो के देवता, भगवान की दैवी शक्तियाँ जैसे—सूर्य, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि है और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनका देवता केवल 'आत्मा' ही होता है।"

समाज मे सभी श्रेणियों के व्यक्ति पाये जाते हैं। उसमे वेद और उपनिषदो के अध्यात्म ज्ञान को समझने वाले आत्मज्ञानी और योगी भी होते हैं, यज्ञ और अन्य कर्मकाण्डो मे सलग्न पण्डितजन भी होते हैं और केवल जीवन निर्वाह के कार्यों मे ही लगे रहने वाले व्यापारी, किसान मजदूर आदि भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्रेणियाँ समाज मे अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मानी जाती है, पर अधिकता सदैव तीसरी श्रेणी की ही होती है। तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन-साधारणके लिये धार्मिक नैतिक, चारित्रिक नियमो की जानकारी कराने और उन पर आचरण कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगों को धार्मिक शिक्षा देने के साधन हैं। इन लोगो को यदि उपनिषदो के निराकार ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बडे कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाय तो वे उसे क्या समझ सकते हैं और कहाँ तक उस पर आचरण कर सकते हैं ? पर पुराणों की सरल कथाओ और रोचक दृष्टान्तो को वे भी कौतूहलपूर्वक सुनते रहते हैं और अन्त में इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म, पुण्य, सत्कर्म करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक मे सुख मिलता है, इसलिये जहाँ तक बन पडे मनुष्य को वैसा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल मे पुराणों की कथा बाँचने वाले 'पुराणी' और 'व्यासों' ने उनमे बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण हो सकते हैं।

अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये हैं। राज्यो मे, शासन-सस्था मे जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगो के रहन-सहन और विचारो मे परिवर्तन हुये और कथा वाचको ने उनके अनुकूल बातें बटादी। भिन्न-भिन्न प्रदेशो की परिस्थितियो के प्रभाव से जिन पुराणो का जहाँ अधिक प्रचार था उनमे वहाँ की बातो को विशेष स्थान दे दिया गया। साम्प्रदायिकता के बढने पर उनके आचार्यों और विद्वानो ने अपने सिद्धान्तो की पुष्टि करने वाले उपाख्यान और विवरण पुराणो मे सम्मिलित कर दिये। अन्तिम पर एक बडा कारण कथावाचको की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे उन्होंने व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, दान के प्रकरणो को खूब बढाया और अधिक से अधिक दान देने की महिमा का प्रतिपादन किया। इस श्रेणी की मिलावट क्रमश इतनी अधिक बढ गई और विभिन्न प्रकार के दानो के परिमाण तथा उनके पुण्य फल को इतना बढा-चढा कर कहा गया कि श्रोताओ को उनसे विरक्ति होने लगी। पुराणो मे जिन ब्रह्माण्डदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-सागर दान, रत्नमयी धेनुदान आदि का जो वर्णन किया गया उनकी सामग्री की लागत कई लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान मे सोने की मूर्तियो और रत्नो का विधान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानो के वर्णनो को पढकर कभी-कभी तो ऐसा जान पडता है जैसे कोई आधुनिक ढग का घटिया विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफो का पुल बाँध रहा हो।"

इस मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान समय मे अधिकाश शिक्षित व्यक्तियो ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पो का खजाना मान लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणो को और उनकी तमाम बातो को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह अवस्था समाज तथा धर्म के लिये अवांछनीय ही कही जायगी। इसके फल-स्वरूप हम उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वचित रह जायेंगे जो पुराणो में पर्याप्त परिमाण मे सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पह-लुओ पर विचार करके एक पुराणो के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार व्यक्त किये हैं—

'पुराणों में इन अनेक गुणों के होते हुये भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची लगन थी, पुराणों को सर्वथा त्याज्य माना है, उनकी भरपेट निन्दा की है, मार्मिक दुष्ट स्थलों को तर्क के चाकू से चीरफाड़ कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। हम मानते हैं कि उन्होंने यह कार्य किसी द्वेषवश नहीं किया है वरन् 'त्याज्य दुष्ट' *प्रियोऽप्यासीदङ्गुली चोरगदष्टता'* (अर्थात् साँप की काटी हुई उङ्गली की तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणों को सर्वथा बहिष्कृत बतलाया है। उनकी धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के लायक नहीं रह गये हैं सामान्य जनता इन में वर्णित आदर्शों पर चलकर सुखी नहीं हो सकेगी, अपने वास्तविक कर्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश में सत्य है, पर यदि औषधि करने से सर्वथा विष उतर जाय तो अँगुली को काटकर फेंक देना समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव और एक विशेष परिस्थिति में अँगुली का काट देना भी एक अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस अँगुली ने इतने जीवन तक अनेक दुःखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासम्भव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी बहुत परम्परागत पवित्र भावनायें उनके साथ जुड़ी हुई हैं इन सब बातों को देखते हुये उनको एक दम बहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोड़ी सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र बना देती हैं नितान्त अनर्गल कथाओं तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों से अलग करके आप उनकी उपादेयता से इनकार नहीं कर सकते। सुनारों की दुकानों की मिट्टी को बटोरकर धोने वालों को भी जीवन यापन के लिये पर्याप्त सोना चाँदी मिल जाता है, फिर पुराण तो अनेक रत्नों के भण्डार हैं, दृष्टि फैलाइये विवेक के जल से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित प्रसङ्गों को, जिनमें निन्दा कुत्सा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है स्वच्छ कीजिये, सहानुभूति एवं विश्वास का सम्बल रखिये, उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।"

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणों की बहुमूल्य सामग्री को

परिमार्जित संस्करण के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अंशों के अतिरिक्त पुराणों के अनावश्यक रूप से बड़े हो जाने का एक कारण यह भी है कि कितने ही विषयों की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो पाठक को खटकती है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारों वर्णों और चारों आश्रमों के आचार-विचार, पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब में एक से ही दिये गये हैं। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के अध्याय एक दूसरे मिलते हुये हैं। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते शब्दों में पढ़ने से पाठक को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी पढ़ा था, फिर ज्यों का त्यों कैसे आ गया ? ऐसे विषयों को एक जगह पूरे रूप में दिया जाय तो यह पुनरुक्ति दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह पुराणों में बहुसंख्यक जीवनोपयोगी और उच्चकोटि के धार्मिक विषयों की शिक्षा दी गई है, पर इस मिलावट और नकलखोरी की भीड़भाड़ में वे खो जाते हैं और सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती। इसलिए जैसा उपर्युक्त उद्धरण में संकेत किया गया है यदि पुराणों में पक्षपात या स्वार्थवश जो अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनावश्यक रूप से बढ़ाये गये अंशों को सूक्ष्म करके पुराणों को प्रकाशित और प्रचारित किया जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा होगी।

'वायु-पुराण' सम्बन्धी विवाद—

पौराणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' में वर्णित पाठ्य-सामग्री पर विचार करने से पूर्व हमको अनेक विद्वानों द्वारा उठाई इस शंका पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महापुराणों' में है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। कुछ आलोचकों ने इसे 'शिव महापुराण' में 'वायवीय संहिता' नामक एक खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि अन्य विद्वानों ने दोनों पुराणों की विषय सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान् अंतर के आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

में हमने विविध पुराणो के अन्तर्गत पाई जाने वाली "१८ पुराणों की सूचियो का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि 'वायु-पुराण' को अधिकाश ने १८ पुराणों मे ही माना है। पाठको की जानकारी के लिये हम उन सूचियो को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बडी है। उसमे प्रत्येक पुराण के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पुराण के मुख्य मुख्य विषयो की सूची के साथ उनको दान करने की विधि भी बतलाई है। उसमे दिये गये अठारह पुराणो की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपुराण १०००० श्लोक, (२) पद्मपुराण ५५००० (३) विष्णु पुराण २३०००, (४) वायु पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्यपुराण १४०००, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण १८००० (११) लिङ्गपुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १७००० (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(२) मत्स्य पुराण में भी पुराण सूची काफी विस्तार से दी गई है उसमे विभिन्न पुराणो के श्लोको की जो सख्या दी गई है वह कई स्थानो पर नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमे भी पुराणो के दान की विधि सक्षेप मे दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३०००, (२) पद्मपुराण ५५०००, (३) वैष्णव [विष्णु] पुराण २३०००, (४) वायवीय पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८०००, (६) नारद पुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९००० (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण, १४५०००, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण १८०००, (११) लिङ्ग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४००० (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२००।

(३) स्वय वायु पुराण के अध्याय १०४ में पुराण-सूची दी गई है। पर उसमे अठारह पुराणो का उल्लेख करने पर भी वास्तव मे १६ पुराणो के ही नाम मिलते हैं। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी तरह लिखने से रह गया है। इसकी क्रम सख्या भी अन्य पुराणो से बहुत भिन्न है—

(१) मत्स्य पुराण १४०००, (२) भविष्य पुराण १४५००, (३) मार्कण्डेय पुराण ६०००, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००, (८) वामनपुराण १००००, (६) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण २३००० (११) नारदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड पुराण १६०००, (१३) पद्म पुराण ५५०००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर (वाराह) पुराण २४०००, (१६) स्कन्द पुराण ८१०००।

इस सूची मे विष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणों के नाम नहीं हैं। लेखक की भूल मानकर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से दो पुराणो का नाम रह गया है। तो भी इस सूची मे आदि पुराण को शामिल किया गया है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८ पुराणो मे से किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।

(४) अग्नि पुराण की सूची की क्रम-सख्या अन्य पुराणो से मिलती है, पर इसमें जो श्लोक सख्या दी है, उसमे अन्य पुराणो से बहुत अधिक अन्तर है। पाठक स्वय मिलान करके देखें—

(१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण १२०००, (६) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००, (१४) वामनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १३०००, (१७) गरुड पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(५) वामन पुराण मे पुराण-सूची केवल एक श्लोक मे दे दी है और

वह भी बड़े अद्भुत ढंग से, अन्यथा अठारह पुराणों का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना संभव न था—

> मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयं ।
> अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

"अर्थात् १८ पुराणों में से दो के नाम 'म' से आरम्भ होते हैं (मत्स्य और मार्कण्डेय), दो 'भ' से आरम्भ होते हैं (भागवत और भविष्य), तीन 'ब्र' से हैं (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त), चार 'व' से हैं (वाराह, वायु, वामन और विष्णु)' शेष सात पुराणों के प्रथम अक्षर इस प्रकार हैं—अ=अग्नि, ना=नारद, प=पद्म लि=लिङ्ग, ग=गरुड, कू=कूर्म, स्क=स्कन्द ।

(६) विष्णु पुराण में यह सूची संक्षेप में दी गई है, पर उसने क्रम—संख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

> ब्राह्मं पाद्मं, वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
> तथा न्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥
> आग्नेयं मष्टमं चव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।
> दशमं चैव ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥
> वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
> चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा ॥
> मात्स्यच गारुडं चैव ब्रह्माडं च ततः परम ।
> महापुराण न्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥

(वि०पु० ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानों का मत है कि विष्णु पुराण में जो क्रम संख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है । इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अंतिम समय का रचित कहा जायगा ।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १४४ वें अध्याय में ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारों श्लोक ज्यों के त्यों उद्धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवाँ स्थान स्वयं स्वीकृत किया है ।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड में १८ पुराणों की उपर्युक्त सूची

को देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमे कहा गया है कि "१८ पुराणों मे से दस शैव, चार वैष्णव, दो वाह्म और दो अन्यो के हैं। शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और गरुड—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण अग्नि की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं।"

पुराणो की इन विभिन्न सूचियो मे 'वायु-पुराण' को स्पष्टतः १८ पुराणो मे माना गया है और उसकी श्लोक संख्या २३ या २४ हजार बतलाई गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोको का ही मिलता है। 'मत्स्य पुराण' के मतानुसार इस पुराण मे 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसग मे अनेकानेक धर्म प्रसगो के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण तथा शिवपुराण के अन्त मे दी गई 'वायवीय संहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब कि वायवीय संहिता के अधिकाश मे वही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-दीक्षा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिंग पूजा से महापापो का नाश, शैवाचरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं, वायुपुराण मे पुराणों के लक्षणों के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओ के वशो आदि विषयों का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमें यह कहने में कुछ भी सकोच नही कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और उसके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणो के तत्सम्बन्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसगत है और यदि उसकी रूपक तथा अलकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से की जाय तो उसमे कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तत्वो का पता लग सकता है। पुराणो की सबसे बडी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई है कि वे वेदों के गूढ़ तत्वो और रहस्यवादी वर्णनो की विशद व्याख्या के साथ रोचक यथार्थशैली मे उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

ही पुराणों की अपेक्षा उच्च—श्रेणी में रखे जाने योग्य है।

वायुपुराण की तर्क संगतता—

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए वायुपुराण में आरम्भ मे उसे भी ब्रह्माजी, वायुदेव, व्यास जी, सूत जी, आदि का रचा हुआ कहा है, पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है तो रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह पुराण अन्य ग्रंथो की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है। सृष्टि रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के अंतिम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है—

प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्याच पुनः प्रवृत्तिः ।।
तच्छ स्त्र युक्तया स्वमतिप्रयुक्ताद् समस्तमविष्कृत धी धृतिभ्यः ।।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतम् यथयातथ तच्छृणुतोच्यमानम् ।।

अर्थात् "प्रकृति की मूल अवस्था मे कारणो की कैसी स्थिति रहती है, तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है ये सब बातें हर शास्त्र के मतानुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानो के लिये प्रकाशित कर रहे हैं। हे विप्रो! पूर्वकाल में ऋषियों ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह रहा हूं, आप लोग ध्यान से सुनिये ।।"

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओ के सम्बन्ध मे कोई लेखक यह तो कह नही सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर या गढ कर कह रहा हूं। उनका तो कोई न कोई आधार ढूंढना और बतलाना पड़ेगा। लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यो को अपनी विशेष शैली मे अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठकों या श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित करे। इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नहीं लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न माननीय शास्त्रो और प्राचीन विद्वानो द्वारा रची गाथाओ आदि से एकत्रित की गई है। इस बात को प्रकट करके तथ्यो की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रो पर और वर्णनशैली तथा विवेचन-प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है।

आगे जहाँ राजवंशों का वर्णन आया है वहाँ भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुषङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय मे पाण्डवो की आगामी पीढ़ियो का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

'राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेघदत्त हुआ। अश्वमेघदत्त से शत्रुओ के किलों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। उसी के राज्य काल में आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यों जनता की धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थो को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर वायु-पुराणकार' ने उस परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थो की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशंसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थो में से अधिकांश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढने से ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता। प्रकट में उन्होंने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियो का जो कुछ चित्रण किया है, उससे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था में थे और उस समय ये मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नहीं। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

'उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं

स्रोपार्धिना शुष्क इवोदपान.।

है। लोक-तत्व और लोक-जीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।)

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

(*वायु-पुराण में योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर* दिया है और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी है। उसमें कहा गया है—"जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं, प्राणायाम का फल भी उनमें से किसी से कम नहीं है।) सौ सम्वतसर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिन्दु पान करने का जो फल होता है, वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है, धारणा से पापों का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।"

आगे चलकर कहा है—"शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद इन चारों को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का आशय है इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किये हुये भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक में हित के लिये लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का संयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारकादि और भूत, भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पञ्च-वायु जिससे प्रसन्न हो उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम-धर्म हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल-भय का निवारक है।"

(इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्त्व दिया है और यथा-संभव उसको व्यवहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता बहिरापन, मूकत्व, अन्धापन, स्मृति लोप, वृद्धता आदि अनेक प्रकार के रोग

उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म में प्रवृत्त होने से होते हैं। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थों में भी देखने में आती है, पर इस पुराण में इन रोगों की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने में नहीं आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषों की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषों को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीड़ित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे कष्ट न मिटे तो मस्तक में धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन में किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश में वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन में और बहरापन हो तो कानों में धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगों में सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकड़ी की कील रखकर धीरे धीरे खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट आती है। अगर साँप न काट लिया हो तो हृदय और उदर में धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने में आ गया हो, तो हृदय में विशल्या धारणा करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार घड़े तक से स्नान करते हैं। कण्ठ तक जल में घुसकर मस्तक में धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की दोनियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषों की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास में भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषों की बात। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक भाव-

नाओ का महत्व अधिक है, इसलिये उसमें दोषो की चिकित्सा भी मानसिक ढग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निस्सन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर सलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायो से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा भी मानसिक विकार बडे अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते हैं। शरीर के कष्टो को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमो को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है, पर मनोविकारो मे ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियत्रण ही हट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध मे विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते है—

"तत्व दृष्टि से योगियो के उपसर्गों (व्याधियो) पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री-प्रसग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ आदि तपस्याएँ, कपट, धनार्जन, स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओ मे योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओ का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्प नैपुण्य, सब भाषाओं का बोध, विद्या का तत्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दो को सौ योजन दूर से भी सुन लेना, यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि का दिव्य दर्शन आदि योगियो के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओ मे देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, पितरो को देखने लगते हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियों को आठ प्रकार की सिद्धियाँ कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्व पचभूतात्मक है, निरवद्य भी पचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहकार एव सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहकार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यों की यह

त्रिविधि प्रवृत्ति है। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश मे होते हैं। वे तीनो लोको के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग क्षय, क्षरण, छेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्ही मे लिप्त हो जाते हैं। उनमे से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारो में शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नही आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नही हो सकती। थोडे समय तक हठपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्तःकरण को क्रमशः बिल्कुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोडे समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नहीं सकतीं। इतना ही नही ऐसे व्यक्तियो मे से कितने ही बाद में स्वार्थ और विषयो की लालसा मे फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रिय संयम्य य आस्ते मनसास्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावों से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

कामनाएँ रखकर साधन-भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त में गिरना ही पडता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन मे हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और "जीवो जीवस्य भोजनम्" की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियो के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्त्व प्रदान नही किया है। पर जिस 'मनुष्य' प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है जब समस्त ससार मे एक ही आत्म-तत्त्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व-व्यापी चैतन्य तत्त्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यों ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि मे हिंसा का प्रतिपादन किया है, पर उनकी इस अनीतिमूलक प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त में ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' मे इस समस्या की गम्भीरपूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दो मे यह निर्णय किया है कि यज्ञादि मे जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नहीं हो सकती। त्रेता युग मे यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुबलि के सम्बन्ध में उसमे यह कथानक मिलता है—

"जब त्रेता मे वृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं, लोग घर द्वार, आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे, तो विश्व भोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एव पारलौकिक कल्याण के लिये वेद सहिताओ और मन्त्रों का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेघ यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमे सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओ के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुन कर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म में व्यस्त हो गये, यज्ञ मे भाग लेने वाले देवता और महात्मागण आवाहित होने लगे, ठीक उसी समय यज्ञ-मडल में समागत महर्षिगण

अध्वर्यु गण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म कार्य कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ-बीजों से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नहीं है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल में बीस वर्ष पुराने रखे हुये बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन हैं।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद में पड़े उन मुनियों ने यह समझौता किया कि इस विषय में राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा वसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थों के यज्ञ विषयक वचनों को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों और फलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियों के द्वारा अविष्कृत मंत्र समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा वसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने कहा— 'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा 'अब तू रसातल मे प्रवेश कर।' मुनियो के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था वसुधा तल पर आ गया। अत पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने मे बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ है। महर्षियो ने जीव हिंसा को धर्म का द्वार नही माना है।"

यद्यपि अधोगति मे पडे जीवो के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्श का पालन बडा कठिन है, तोभी धर्म कार्यों मे हिंसा का प्रवेश कदापि वाछनीय नही कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोडे लोगो पर ही पडता है और उसे कोई महत्व नही दिया जाता, पर धर्म-कार्य में हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अत यज्ञो के रूप में जीव हिंसा का विधान निस्सन्देह, क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियो को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

प्राचीन समय मे ज्ञान-विज्ञान के सम्बन्ध मे जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी अविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इ जिन बनाकर रैल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है, पर जिन मनुष्यो ने दावानल के भयकर अग्निकाण्ड मे से थोडी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप मे प्रयोग किया वह भी कम प्रशसा के पात्र नही है। इसी प्रकार वर्तमान-युग मे अणु-बम एक युग परिवतनकारी अविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियो ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि ससार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु हैं और वही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु-विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। वायु-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि-प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों को

देवता मानकर उनके रथो, घोडो, महलो और दरबारियों का मनोरंजक वर्णन किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हो, पर साथ ही बीच-बीच मे विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यो का परिचय भी दे दिया है। यद्यपि सूर्य को उन्होंने सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट किया है और लोकरंजन के निमित्त उसमे मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातुधान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान पर यह भी प्रकट कर दिया है ससार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य ही है। उसमें कहा गया है—

"तीनो लोको का मूलकारण सूर्य ही है इसमें सन्देह नही। देवता, असुर और मनुष्यो से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवो का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और सूर्य मे ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल मे लोको की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, सवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमे लय को प्राप्त होते हैं, वह सूर्य ही है। सूर्य को छोडकर और किसी साधन से काल की गणना नही की जा सकती। और बिना काल तथा समय के न शास्त्र, न दीक्षा, न दैनिक कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओ का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढ़ेंगी। ससार को प्रतप्त करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग मे भी देवो का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल है, अग्नि है और द्वादशात्म प्रजापति है। ये ही तीनो लोको के चराचर को प्रतप्त किया करते हैं। सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक पालो के आत्मा है ये उत्तम वायु-मार्ग का अवलम्बन करके किरणो द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी जगहो में ताप-दान करते हैं।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय मे जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान की खोज से प्रकट हुआ है। सूर्य से ही समस्त ग्रहो और उपग्रहों की उत्पत्ति होती है, वही इनमे जीवन और प्राणतत्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

जगत के सब व्यवहारों को स्थिर रखने का आधार है और अन्त में यही इन सब को प्रलय भी करता है, यही विज्ञान का आधुनिकतम सिद्धान्त है। धर्म शास्त्रो के मतानुसार भी अव्यक्त परब्रह्म का प्रकट रूप सूर्य ही है। वही उत्पत्ति पालन, और प्रलय के कर्ता के रूप मे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के कार्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकार धर्मशास्त्र तथा विज्ञान इस सम्बन्ध में एक मत है कि सृष्टि का मूल आधार सूर्य ही है और यही बात उपरोक्त उद्धरण मे वायुपुराणकार ने स्पष्ट शब्दों मे कह दी है।

यह भी स्पष्ट है कि उस युग मे यन्त्र-विद्या का इतना अधिक प्रचार नही था कि आजकल की तरह भीमकाय दूरबीनो तथा अन्य ताप-मापक यन्त्रो द्वारा दूरवर्ती ग्रहो, ताराओ का आन्तरिक रहस्य जान सकें। स्वयं वायुपुराण ने ज्योतिष सम्बन्धी बातो का पता लगाने के लिये जिन साधनो का वर्णन किया है उनमे यन्त्रो का जिकर नही किया है 'ज्योतिमण्डल का विस्तार' शीर्षक प्रकर्ण के अन्त मे उन्होने स्वयं लिखा है—

"ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्म-चक्षुओ से देखकर नही कर सकता। बुद्धिमान मनुष्य शास्त्र, अनुमान, प्रत्यक्ष एव उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमे भक्ति और श्रद्धा करे। बुद्धिमान विप्रो ! ज्योति-तत्व के निर्णय में चक्षु, व शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित ये ही पांच कारण कहे गये हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि पुराण के रचयिता अपनी तर्क बुद्धि और योग शक्ति (एकाग्रता और ध्यान) से सृष्टि मूल रहस्यो को अधिकाश मे समझ सके थे। यदि उन्होंने इन विषयो को रूपक, उपमा, दृष्टान्त के आवरण मे छिपाकर प्रकट किया है, तो इसका कारण यही है कि वे जनसाधारण को सामने गहन तत्वो अधिक रूप में रखना निरर्थक समझते थे। सामान्य बुद्धि वालो को अत्यन्त सरल रूप मे इन तत्वो से परिचित करा देने का काम जैसी युक्ति और चतुरता से इन पुराणकारो ने सम्पन्न किया उस प्रशसनीय ही कहा जायगा। इनके द्वारा सवसाधारण मे सैकड़ों वर्षों तक आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक शिक्षा का प्रचार होता रहा और लोगों में धर्म-कर्त्तव्य बुद्धि जागृत रही।

यह बात दूसरी है कि काल क्रम से इस क्षेत्र मे भी स्वार्थी और कम

योग्यता वाले लोगो ने प्रवेश किया और अपने स्वार्थ की पूर्ति की निगाह से तरह-तरह की मिलावट करके पुराणो को निर्मल धारा को गँदला बना दिया। स्वार्थीजन सदैव अपना दाव-घात ढूंढते रहते हैं और जहां कही लाभ का मौका देखते हैं वही तरह-तरह के छल-बल, धूर्तता से भीतर घुस कर दोष उत्पन्न करते हैं और अपना मतलब पूरा करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी इस बात की भी चिन्ता नही करते कि हमारी इस सामयिक स्वार्थपरता के कारण जन-जीवन बहुत समय के लिये पतित और गर्हित हो जायगा वर्तमान समय की राजनीतिक संस्थाओ मे इसका उदाहरण भलीभांति देखा जा सकता है कि किस प्रकार लोग देशभक्त और जन नायक का वेश धर कर भीतर घुस जाते हैं और सच्चे कार्यकर्ताओ को हटाकर भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। यही बात पुराणो के सम्बन्ध मे भी हुई है और इसी से हमको उनका विकृत रूप दिखलाई पडता है।

साम्प्रदायिकता के दोष का शमन—

पुराणों पर प्राय: साम्प्रदायिक विद्वेष की बातें फैलाने का दोषारोपण किया जाता है। कई शैव पुराणो मे ब्रह्मा और विष्णु के सम्बन्ध मे बहुत-सी हीनता द्योतक बातें लिखी हैं और एकाध वैष्णव पुराण में उसी तरह शिव को नीचा सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। किसी शैव लेखक ने लिखमारा कि 'विष्णु को प्रणाम करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है' तो उसी के मुकाबले के किसी वैष्णव नामधारी ने शिव-पूजा को घोर पाप कर्म घोषित कर दिया। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' का दर्जा काफी ऊँचा माना जायगा कि जिसमे 'शैव-पुराण' कहलाने पर भी विष्णु के सम्बन्ध मे कोई निन्दात्मक बात नही है वरन् तीन अध्यायो मे विष्णु-वंश का वर्णन करते हुये जगह-जगह उनकी प्रशंसा ही की गई है। 'वायु पुराण' मे भी दक्ष और शिव के विरोध तथा संघर्ष की कथा दी गई है पर उसमे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि की वैसी दुर्गति तथा हीनता का एक शब्द भी नहीं मिलता जैसा कि 'शिवपुराण' आदि में दिखाया गया है। 'वायु पुराण' मे शिव को ही सृष्टि का मूल और सर्व शक्तिमान बतलाया गया है पर विष्णु के सम्बन्ध में भी उसने जब कभी

उनकी चर्चा आई है, सम्मान युक्त भाषा का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारो के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियों ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

"सूतजी ! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं ? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं ? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे ? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिये उत्पन्न होते हैं ? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि में किस लिये जन्म धारण करते हैं ? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु सहारकारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो-जो कर्म सम्पन्न होते हैं, उन सबको हम भली भाँति सुनकर चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमे बताइये, उसी प्रकार उनके अवतारों के विषय मे भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय मे भी हमें जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भगवान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल मे उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं ? देवताओ और मनुष्यो को उचित मार्ग पर लगाने वाले, भूर्भुव आदि लोकों के उत्पत्तिकर्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि मे समाविष्ट करते हैं ? चक्र धारण करने वालो मे श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही ससार के मानवमात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हे मानव-योनि मे उत्पन्न होने की इच्छा क्यो हुई ? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं, वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओं का पालन करते हैं।

"जो भूतात्मा भगवान ससार के समस्त भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ मे किस लिये आते हैं। जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरो को श्राद्धभोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभ कर्मों से विधि के अनुसार मोक्ष के लिए

यज्ञ रूप मे प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होने युग के अनुसार तीन लोकों की क्रमानुसार रचना कर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास सवत्सर, ऋतु, काल, योग आदि की रचना की है, जिन्होंने सर्व जीव समूहों मे व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियो में योग द्वारा रमण करते हैं, जो गत-आगत सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत के विस्तृत विविध विधानो के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगो की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओ के लिये दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारो वर्णों, के उत्पत्तिकर्ता एव रक्षक हैं, उनका वर्णन हमें सुनाइये।

"इन समस्त लोको की सृष्टि करने वाला जो सनातन पुरुष है, वह इस मर्त्यलोक मे किस लिये आगमन करता है ? परम बुद्धिमान सूतजी ! इस बात का हमे बडा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करने वालो की गति है, वह मनुष्य शरीर धारण ही क्यो करता है ? भगवान विष्णु के इन आश्चर्य में डालने वाले कर्मों के विषय मे हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं। वेद एव देवगण उन भगवान विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते ! भगवान विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये। उनका आख्यान कहने और सुनने वालो को परम सुख देने वाला है। उनके बल एव पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एव महान हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध मे भी हम लोगो को बतलाइये।"

किसी अन्य शैव-पुराण में विष्णु का इस प्रकार गुणगान नहीं पाया जाता। उल्टा अनेक लेखको ने उनके लिये अनुचित, अपमानजनक शब्द और घटनाक्रमो का प्रयोग किया है। यह शैली ठीक नही है और इस प्रकार की ओछी बातें पढने से पाठक के हृदय मे कहने वालो के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' के वर्णन सर्वत्र सम्यता और

होकर बोले—"विष्णो ! देव ! शाश्वत ! सुनो, मेरी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है । प्रकाश-अप्रकाश, जङ्गम-स्थावर, अथवा यह सारा विश्व ही रुद्र और नारायणमय है । मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि और मैं दिन हूँ । तुम ऋत हो मैं सत्य हूँ । तुम यज्ञ हो मैं उसका फल हूँ । तुम ज्ञान हो मैं ज्ञेय हूँ । सुकृत करने वाले जन तुम्हारा जप कर, तुमको प्रसन्न कर मुझमें प्रविष्ट हो जाते हैं । युगक्षय काल मे हम दोनो को छोडकर दूसरी कोई गति नही है । तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझको पुरुष । तुम जिस प्रकार मेरे आधे शरीर हो उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ । तुम हमारे महान श्रीवत्स पद लक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ । हे विष्णो तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हूँ । तुम सभी कार्यों के कर्ता और मैं कार्याधिष्ठित देवता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ।"

वायु पुराणकार ने जो इस प्रकार की सदाशयता, शालीनता का परिचय दिया है वह धर्म के लिये परम हितकारी है । यदि अन्य पुराणकार भी ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय देते तो आज यह देश साम्प्रदायिक विद्वेष और पारस्परिक विरोध-भावना से बहुत कुछ मुक्त होता । यदि कोई किसी अन्य के उपास्य देव पर कटाक्ष करेगा तो वह भी वैसी ही भावना प्रकट करेगा और इससे समाज मे कलह तथा विशृङ्खलता फैलेगी और धर्म की अप्रतिष्ठा होगी । इसलिए इस विषय मे 'वायुपुराण' की नीति सर्वथा सराहनीय है ।

'वायु पुराण' के वर्णनों की स्पष्टता—

जैसा पहले बतलाया जा चुका है पुराणकारो ने अनेक वैदिक-तत्वो से रूपक, अलकारयुक्त बडी-बडी कथायें बनाकर मनोरजन के साथ धर्म-शिक्षा की विधि से काम लिया है । उदाहरण के लिए 'वामनावतार' का कथानक प्रसिद्ध है । वेदो मे विष्णु की प्रशसा करते हुए दो-चार स्थानो पर यह कहा गया है कि "यह समस्त विश्व आपकी पैरो की धूल मे समाया हुआ है ।" यह कथन ब्राह्मण ग्रन्थो मे व्याख्या द्वारा बलि-वामन की संक्षेप कथा के रूप मे बदल दिया गया और पुराणो मे इसे क्रमशः बढाते हुए अन्त मे 'वामन पुराण' जैसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत कर दिया गया ।

यही बात देवी या दुर्गा की कथा कथा के सम्बन्ध में है। 'मार्कण्डेय पुराण' मे दी गई 'दुर्गा सप्तशती' की कथा मे दुर्गा और असुरो के सग्राम का वर्णन बडे वीरतापूर्ण और रोचक ढङ्ग से किया गया है। 'देवी भागवत' मे तो उसे एक 'महापुराण' के समान विस्तृत रूप दे दिया गया है। इनमे पूर्व चरित्र में मधु-कैटभ का वध है, मध्यम चरित्र मे महिषासुर का वध है और उत्तर चरित्र मे शुम्भ निशुम्भु आदि के वध का वर्णन किया गया है।

देवी का उल्लेख वेदो में भी आया है पर वहाँ विश्व की मूलभूत चिति-शक्ति ही 'देवी' है। उसका एक मुख्य रूप वाक् या वाणी भी बताया गया है। वह 'वाग्देवी' अपनी महिमा और शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है—

"मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, दोनो अश्विनीकुमार इनको मैं ही धारण करती हूँ। वसु रुद्र, आदित्य इस 'त्रिक' का सचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा, भग इनका भरण करने वाली मैं ही हूँ। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वस्तुओ का सचय करने वाली वसु पत्नी हूँ। जितने यज्ञीय अनुष्ठान हैं सबमे प्रथम मेरा स्थान है। देवो ने मुझे अनेक स्थानों मे प्रतिष्ठित किया है। जो देखता, सुनता और साँस लेता है वह मेरी ही शक्ति से अन्न खाता है। मैं जिसका वरण करती हूँ उसे ही उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष म मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है। मेरा अपना जन्मस्थान जलो के भीतर पारमेष्ठी समुद्र मे है। वहाँ से जन्म लेकर मैं सब लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक को स्पर्श करती है। झझावात की तरह साँस लेती हुई मैं सब भुवनो का उपादान हूँ। द्युलोक (स्वर्ग) और पृथ्वी से भी परे मेरी महिमा है।

(ऋग्वेद १०।१२५)

पर पुराणो मे देवी के वर्णन को अत्यन्त विस्तारयुक्त कथा का रूप देकर एक भिन्न प्रकार की उपासना पद्धति तथा सम्प्रदाय का स्रोत बना दिया गया। उनमे मधु कैटभ वध के अवसर पर देवी का विष्णु की 'महामाया' के रूप मे वर्णन किया गया, जिसने ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किये जाने पर ... जगाया और मधु कैटभ को मोहित करके विष्णु

महिषासुर के उपाख्यान मे उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महादेव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना, यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनों बाहु बनी। चन्द्रमा के तेज से दोनो स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यदेश, वरुण के तेज से जघा और उरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनो चरण, सूर्य के तेज से पैरों की अगुली और वसुगणों के तेज से हाथो की अगुली बनी। कुबेर से नासिका, प्रजापति से दांत, पावक के तेज से तीनो नेत्र, वायु के तेज से दोनो कान बने।" इस प्रकार वह मगलमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओ ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा सग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

'वायु पुराण' में भी मधु कैटम के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बड़े सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमे कहा गया है—

"भगवान शकर के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल मे घुस गये। तब पद्म जन्मा ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बैठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु कैटभ नामक दो अतुल भीम बलशाली भ्राताओ ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनो की आँखें अन्धकार मे चमक रही थी और वे दोनों ही वीर हँस-हँस निर्भयभाव से पद्म पत्रो को तोड रहे थे। उन दोनो ने ब्रह्मा से कहा तुम हमारे भक्ष बनो। यह कहकर वे दोनो अन्तर्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को जानना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे सीधे रसातल में उतर गये। वहाँ उन्होने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होने उनको जगाया और जगने पर कहा—'देव! हमे भूतो से भय हो रहा है, उठिये, हमे बचाइये हमारा कल्याण कीजिये।'

'शत्रु को दमन करने वाले स्वय भगवान विष्णु हँसते हुये बोले—'कुछ चिन्ता नही, डरने की कोई बात नही।' ब्रह्मा जी के चले जाने पर उन अनन्त भगवान ने अपने मुख से विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओ को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनो ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु-जिष्णु के आवागमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बनालिया। उन्हों

बल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम क
लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से म
उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ। उनका आकार-प्रकार और संस्था-
नादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनों
का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने
लगे। तब उन्होंने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के
ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बांध दिया और मन्त्रों
का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रम्ह को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी
कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो? कन्या ने कहा आप मुझे
विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु-कैटभ
थक गये और विष्णु-जिष्णु ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र कथानक—

वायु-पुराणमें दक्ष-यज्ञके विध्वंस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त पुराणों से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढने में आया था कि शिव-पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल कर आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वंस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थी पर दक्ष ने उसका सम्मान नहीं किया जिससे उसने स्वतः आत्मघात कर लिया। तब शिव ने दक्ष को श्राप दिया कि तुम अगले जन्म में एक वृक्ष-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होगे और तब भी तुम्हारा नाम दक्ष ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ और उस जन्म में भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमें नहीं बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी ने उसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे बहुत रुष्ट हुईं और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है

सम्भवत पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प-भेद' बतलायें, पर जब अ सब कथायें इसी समय की हो और अन्य ग्रन्थो से मिलती हों तो किसी एक ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नहीं है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणो मे अनेक स्थलो पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा औ विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्भव की क दी गई है और एकाध पुराण मे इस प्रसग में ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखा गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बहुत हीन प्रकट किया गया है पर 'वायु-पुराण' में इस कथा को भी बहुत स्वाभाविक रूप में दिया गया और *शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओं में श्रेष्ठ ! मै तु* दोनो पर प्रसन्न हूं। पूर्वकाल में तुम दोनो सनातन पुरुष मेरे शरीर से उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नि युद्ध मे स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बॉये हाथ हैं।" इस कथानक मे और अ पुराणों में ब्रह्मा को झूंठा बनाने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों में जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त में पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार अ साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया कि परब्रह्म का स्वरूप वेदो के कथनानुसार अक्षर, अव्यय, अतीन्द्रिय अ चिन्मात्र है, अथवा जैसा भक्ति प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह ना प्रकार के आभरण धारण करने, वेणु वादन करते हुए गोपियों सङ्ग रासलील हास-विलास, रतिक्रीडा आदि के प्रेमी, गौओं की रक्षार्थ इधर-उधर दौडते हु राधा विलासी के रूप मे है। भक्तगणो ने उन परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलो धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर, अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस मस्या का निराकरण नहीं कर सके तो उन्होंने एकान्त में बैठकर आहार, वस्त्र एव आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदों का आवाहन क्या। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्तिमान वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि--- अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों में भेद बनाकर कर्म और ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओं से घिरे हुये चित्त वाले मनुष्यों के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उसका फल स्वर्ग कहा गया है। और ईश्वर में ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गई है। चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एव आनन्द स्वरूप है। यह सब जान लेने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदों के कथन से व्यास जी को जो कुछ ज्ञान पड़ा उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नही है। पुष्प के रस एव गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप है भी आत्मस्वरूप हैं, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है।"

अधिकांश पुराणों में जिस प्रकार अवतारों के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, वह बात 'वायु पुराण' मे देखने में नहीं आती। इसमें ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त मे व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओं पर ध्यान देने पर इसे 'महा-पुराणों' की सूची मे स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव में पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

वायु-महापुराण

।। मुनियों द्वारा पुराण-जिज्ञासा ।।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ।।१
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ।।२

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यञ्चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयः ।।३
य इमान् पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ।।४

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।५
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ।।६

श्री मन्नारायण को नमस्कार करके और नरों में उत्तम नर को नमस्कार
रे । इसी प्रकार देवी सरस्वती को नमस्कार करके इसके पश्चात् 'जय' शब्द
। उच्चारण करना चाहिए । सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले
राशर ऋषि के पुत्र व्यास मुनि की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से निःसृत

अमृत का यह समस्त जगत् पान करता है। निश्चल, अविनाशी, शाश्वत, महान् आत्मा वाले, समस्त जगत् के पति देव-ईशान महादेव की शरणागति में जाता हूँ ॥१॥ इस लोक की रचना करने वाले, सर्व विषयों के ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-काल और भविष्य-काल के पति तथा वर्तमान समय के सत्पति ब्रह्माजी की शरण में जाता हूँ ॥२॥ जिस जगत् के पति का अनुपम ज्ञान और वैराग्य है तथा चारों सिद्धियों के साथ धर्म और ऐश्वर्य भी अद्भुत है ॥ ३ ॥ जो इस सत् और असत् स्वरूप वाले भावों को निरन्तर देखते हैं वे क्रिया-भाव के अर्थ रूप ईश्वर में फिर प्रवेश कर जाते हैं ॥ ४ ॥ लोकों का सृजन करने वाले और लोकों के तत्व को जानने वाले तत्त्व-वेत्ता ने योग में स्थिर होकर स्थावर और चर समस्त प्राणियों की सृष्टि की है ॥ ५ ॥ पुराण के आख्यानों को जानने की इच्छा रखने वाला मैं उस अजन्मा, विश्वकर्मा अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की रचना वाले, ज्ञान के पति लोकों के साक्षी प्रभु की शरण में जाता हूँ ॥६॥

ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः ।
ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥७
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णाय चर्षये ।
वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥८
पुराण सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ।
धर्मार्थन्यायसंयुक्तं रागमैः सुविभूषितम् ॥९
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि ।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥१०
ऋषयः सशितात्मानः सत्यव्रत परायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृपद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥१२
द्रष्टुं तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तम. ।
लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतृणा यत् सुभाषितैः ।

कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिल्लोमहर्षण ॥१३
तप श्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमत.।
शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥१४

समाहित अर्थात् सावधान होकर ब्रह्मा, वायु और महेन्द्र के लिये नमस्कार करके, ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के लिये, अत्यन्त यशस्वी उनके नाती जातूकर्ण ऋषि के लिये परम पवित्र वसिष्ठ के लिये तथा कृष्णद्वैपायन के लिये नमस्कार करके धर्म, अर्थ और न्याय से संस्कृत अर्थात् संयुक्त आगमों से सुशोभित वेदों की सम्मति से युक्त ब्रह्माण्ड पुराण को भली भाँति कहता हूँ ॥७–८–९॥ अनुपम कान्ति वाले, परम विक्रमशाली, समस्त नृप मण्डल में अति श्रेष्ठ असीमकृष्ण नामक राजा के द्वारा इस भू मण्डल पर शासन करने के समय में धर्म के व्रत में तत्पर, परम सरल रजोगुण से हीन, शान्त प्रकृति वाले दमनशील और इन्द्रियों को जीतने वाले ऋषि लोग संशित आत्मा वाले होकर धर्म के धाम कुरुक्षेत्र में पवित्र तट वाली परम पवित्र दृषद्वती नदी के तट पर दीर्घ सत्र का यजन करने लगे। सभी ऋषि लोग शास्त्र की विधि के अनुसार दीक्षा प्राप्त करने वाले और नैमिषारण्य के भ्रमण करने वाले थे ॥१०–११–१२॥ महान् तीव्र बुद्धि वाले, पुराणों के ज्ञाता तथा वक्ताओं में परमश्रेष्ठ सूतजी ने उन ऋषियों को देखने के लिये वहाँ आकर अपनी सुन्दर उक्तियों के द्वारा लोगों को हर्षित कर दिया अर्थात् सबको पुलकित बना दिया। इसी सत्कर्म से अर्थात् पुलकायमान बना देने के काम से संसार में वे 'लोम-हर्षण' इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥१३॥ वे तपस्या, शास्त्रों का श्रवण और आचार की निधि अत्यन्त बुद्धिमान् व्यास मुनि के श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी शिष्य थे और लोकों में बहुत ही प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

पुराण वेदो ह्यखिलो यस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठित ।
भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥१५
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।
सूक्ष्मा सुपरिज्ञाप्याश्च प्रमाणोपमयो यथा ॥१६
स तान् न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।

अभिगम्योपसंगृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलि ।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ॥१७
ते चापि सत्रिण. प्रीता ससदस्या महौजसः ।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१८
अथ तेषा पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्त विद्वास लोमहर्षणम् ॥१९
तस्मिन् सत्रे गृहपतिः सर्वशास्त्रविशारद. ।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषा सूतमनोदयत् ॥२०
त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तम ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासित ।
दुदोह वै मर्ति तस्य त्व पुराणा श्रया कथाम् ॥२१

समस्त पुराण और सम्पूर्ण वेद जिसमे भली-भाँति प्रतिष्ठित थे और महाभारत के बढाने वाली प्रचुर सरस्वती विराजमान थी ॥ १५ ॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन वाली अनेक कथाऐं जिसमे प्रतिष्ठित थी । सूक्त और अच्छी परिभाषाऐं भूमि मे ओषधियों के तुल्य जिनमे विद्यमान थीं ॥ १६ ॥ ऐसे न्याय के शास्त्र उन सूतजी ने न्याय से अच्छी बुद्धि वाले उन श्रेष्ठ मुनियों के समीप आकर और निकट मे पहुँच कर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और उन समस्त ऋषियो को अपने प्रणिपात तथा विनम्र व्यवहार से सन्तुष्ट किया ॥१७॥ सत्र का यजन करने वाले महान् ओज वाले सदस्यो के सहित वे सब भी उस समय बहुत ही प्रसन्न हुए और वे भी उन सूतजी का कर्त्तव्य यथा-विधि करने में तत्पर हुए ॥१८॥ इसके अनन्तर उन समस्त ऋषियो के हृदय मे पुराण के श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई क्योंकि उन्होंने अत्यन्त विश्वास के पात्र और महान् विद्वान् लोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥१९॥ उस सत्र मे समस्त शास्त्रो के पण्डित गृहपति ने उन सब ऋषियों के हार्दिक भाव को इङ्गितों के द्वारा लक्ष्य करके श्री सूतजी को प्रेरित किया ॥ २० ॥ गृहपति ने कहा—हे सूतजी ! आपने ब्रह्म के ज्ञाताओं में अति श्रेष्ठ महान् बुद्धि शाली भगवान् व्यासजी की इतिहास और पुराणों के ज्ञान प्राप्त करने के लिये

भली-भाँति उपासना की है और आपने पुराणो मे आश्रित कथा वाली उनकी बुद्धि का अच्छी तरह दोहन किया है अर्थात् आपने अच्छा पौराणिक ज्ञान उनसे प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

एषाञ्च ऋषिमुख्याना पुराण प्रति धीमताम् ।
शुश्रूषाऽस्ति महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२
सर्वे ह्यमे महात्मानो नाना गोत्राः समागता ।
स्वान् स्वान् वशान् पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिन ॥२३
सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिञ्छ्रावयैया मुनीनय ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभि स्तेन प्रागसि सस्मृतः ॥२४
इति सञ्चोदितः सूतस्तैरेव मुनिभिः पुरा ।
पुराणार्थं पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२५
स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्ट पुरातनैः ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥२६
वशाना धारण कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभि ॥२७
न हि वेदेष्वधीकार कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मन ।
सुत्यायामभवत् सूतः प्रथम वर्णवैकृत- ॥२८

हे महाबुद्धे ! इन बुद्धिमान् मुख्य ऋषियो की पुराण के प्रति श्रवण करने की अत्यन्त हार्दिक इच्छा है सो आप इन्हें वह सुनाने के योग्य होते हैं ॥ २२ ॥ ये सब महान् आत्मा वाले हैं और अनेक गोत्र वाले यहाँ एकत्रित हुए हैं । ये सब ब्रह्मवादी लोग पुराणो के द्वारा अपने-अपने वशो का श्रवण करें ॥ २३ ॥ इस दीर्घ-सत्र मे पुत्रो के सहित इन मुनियो को श्रवण कराइये । उसके द्वारा दीक्षिष्यमान हम सबके द्वारा आप पहिले ही सस्मृत हुए हो ॥२४॥ इस प्रकार से सत्यव्रत मे परायण पुराणो के ज्ञाता उन्ही मुनियों के द्वारा पहिले पुराण के लिये सूतजी से सत् कहा गया ॥ २५ ॥ प्राचीन सत्पुरुषो ने यह सूत का अपना धर्म देखा है कि देवताओ का ऋषियों का और अपरिमित तेज

वाले राजाओं का तथा महात्माओं के श्रुत वशों का धारण करना चाहिए जो कि ब्रह्म वादियों ने इतिहास और पुराणों में दिष्ट किये हैं ॥ २६-२७ ॥ किन्तु सूत का वेदों में कहीं भी कोई अधिकार नहीं दिखाई देता है क्योंकि महात्मा राजा वेन के पुत्र पृथु के वर्तमान यज्ञ में सूत्या में प्रथम विकृत वर्ण वाले सूत की उत्पत्ति हुई थी ॥ २८ ॥

ऐन्द्रे ण हविषा तत्र हविः पृक्त बृहस्पते ।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चितञ्च कर्मसु ॥२९
शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूत गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृत ॥३०
यच्च क्षत्रात् समभवद्ब्राह्मणाऽवरयोनितः ।
ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः ॥३१
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥३२
तत स्वधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
यस्मात् सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥३३
पितृणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ॥३४
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मतः ।
तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ॥३५

वहाँ पर इन्द्र सम्बन्धी हवि से पृक्त बृहस्पति की हवि को इन्द्र देव के लिये के लिये हुत किया था। इसमें सूत की उत्पत्ति हुई। वहाँ प्रमाद से कर्मों में प्रायश्चित्त किया ॥ २९ ॥ जो शिष्य के हव्य से गुरु का हवि पृक्त होकर अभिभूत हो गया और इस अधरोत्तर चार से ही यह वर्ण वैकृत उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ और जो क्षत्रिय से ब्राह्मण की अवर योनि से हुआ वह पहिले के साथ साधर्म्य होने के कारण तुल्य धर्म वाला कहा गया है ॥ ३१ ॥ रथ, नाग और अश्व का चरित्र क्षत्रियों का उपजीवन यह सूत का मध्यम श्रेणी का धर्म होता

है तथा चिकित्सा करना जघन्य श्रेणी का धर्म है ॥ ३२ ॥ सो ब्रह्म वादी आप लोगों ने मुझसे मेरे धर्म के अनुकूल ही पूछा है। मैं ऋषियों के द्वारा समर्चित पुराण को भली-भांति क्यों नहीं कहूँगा अर्थात् अवश्य ही कहूँगा ॥३३॥ पितरों की वासवी नामक मानसी कन्या हुई थी वह पितरों के द्वारा अपध्यात होकर मत्स्य योनि में हुई थी ॥ ३४ ॥ जिस तरह अग्नि की उत्पत्ति का निमित्त अरणी होती है उसी भाँति वेदों के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ महान् योगी व्यास मुनि उससे उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्त्तिने ।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥३६
जातमात्रश्च यं वेद उपतस्थे ससङ्ग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्णादवाप तम् ॥३७
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाश जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ॥३८
वेदद्रुमश्च य प्राप्य सशाख समपद्यत ।
भूमिकालगुणान् प्राप्य बहुशाखो यथा द्रुम. ॥३९
तस्मादहमुप श्रुत्य पुराण ब्रह्मवादिन. ।
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजितादीप्ततेजसः ॥४०
पुराण सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयै महात्मभि ॥४१

उन पुराण पुरुष, भृगु के वाक्य प्रवृत्तों, विद्वान्, छद्म से मनुष्य का रूप धारण करने वाले, होनहार विष्णु भगवान् व्यासजी के लिये नमस्कार करके जिनके उत्पन्न होते ही संग्रह सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गये थे, किन्तु धर्म की ही मर्यादा का पालन कर जातूकर्ण से उसको प्राप्त किया था ॥ ३६-३७ ॥ जिसने श्रुति रूपी सागर में बुद्धि रूपी मन्थन करने वाले से मथ कर संसार में महाभारत रूपी चन्द्रमा को प्रकट कर दिखलाया है ॥ ३८ ॥ जिस तरह भूमि के तथा काल के गुणों को प्राप्त कर वृक्ष बहुत सी शाखाओं से युक्त

हो जाता है उसी तरह वेद रूपी वृक्ष भी वेद व्यास मुनि को प्राप्त कर अनेक शाखाओं से युक्त हो गया ॥ ३९ ॥ उन ही दीप्त तेज वाले, समस्त वेदों से पूजित, सर्वज्ञ और ब्रह्म के वक्ता से मैंने उप श्रवण करके पहिले महा-ना और नैमिषारण्य में निवास करने वाले मुनियों के द्वारा पूछे गये वायु देव ने जो पुराण कहा था उस वायु पुराण को मैं अब आप लोगों के समक्ष में कहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥४२
अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं सम्प्रचक्ष्यते ।
सुखमर्थं समासेन महानप्युपलभ्यते ।
तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥४३
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं तत् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४४
यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥४५
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥४६
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात् प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥४७
यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४८
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥४९
अतश्च सङ्क्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥५०

सूतजी ने कहा—जिस वायु पुराण में ब्रह्मवादी वायु देव के द्वारा विप्रों

का धन, यश और आयु के देने वाला, पापों का नाश करने वाला परम पुण्यमय कीर्त्तन और इसका श्रवण तथा विशेष रूप से धारण करना कहा जाता है ॥ ४२ ॥ इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है। संक्षेप से सुखपूर्वक महान् अर्थ उपलब्ध होता है इससे कुछ समुद्दिष्ट करके पीछे विस्तारपूर्वक इसका वर्णन करूँगा । ४३ ॥ जो कोई अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला पुरुष इसके प्रथम पाद का अध्ययन करता है उसने इस समस्त पुराण का अध्ययन कर लिया है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ४४ ॥ जो द्विज चारों वेदों को उनके समस्त षडङ्गों तथा उपनिषदों के सहित जानता है और यदि पुराण का ज्ञान नहीं रखता है तो वह विलक्षण नहीं होता है ॥ ४५ ॥ इसलिये इतिहास और पुराण इन दोनों से वेद को अच्छी तरह उपबृंहित करना चाहिए। जो अल्पश्रुत द्विज होता है उससे वेद भी भयभीत होता है कि मुझे अल्पज्ञ यह ब्राह्मण प्रताड़ित कर देगा ॥ ४६ ॥ इस अध्याय का अभ्यास करने वाले स्वयम्भू भगवान् ने साक्षात् स्वयं कहा है कि इसका अध्ययन करने वाला पुरुष आपत्ति में फँस कर भी मुक्त हो जायगा और यथेष्ट अच्छी गति को प्राप्त करेगा ॥ ४७ ॥ पहिले जिसने यह पुराण पूर्ण किया उसने इसका स्मरण किया है। जो इसके निरुक्त को जानता है वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४८ ॥ इस समस्त विश्व में नारायण व्याप्त होकर प्रवृत्त होते हैं उस जगत् के स्रष्टा का भी सृजन करने वाले महेश्वर देव हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये आप लोग यत्न से इस पुराण का श्रवण करें। वह सर्ग के समय में सर्गों को बनाते हैं और संहार करने के समय आने पर पुनः इसका आदान कर लिया करते हैं ॥ ५० ।

॥ द्वादशवर्षीय सत्र निरूपण ॥

प्रत्यग्र वत् पुनः सूतमपृच्छस्ते तपोधनाः ।
पुत्र सत्रं समभवत् तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥१
पियन्त चैव तत्काल कथं च समवर्त्तत ।
आचचक्ष पुराणं च कथं तेभ्य. प्रभञ्जनः ॥२
आचक्ष्व विस्तरेणेदं पर कौतूहलं हि नः ।
इति सञ्चोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३

शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत् कालं यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ।
सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥५
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम् ।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥६
विबुधा ईजिरे तत्र सहस्रं प्रतिवत्सरान् ।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।
कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥७

श्री शुकदेवजी ने कहा—तपश्चर्या के ही धन वाले उन ऋषियों ने सूतजी से फिर कहा कि यह सत्र कहाँ पर हुआ जो कि अद्भुत कर्म करने वाले उन ऋषियों ने किया था? ॥ १ ॥ इस सत्र को कितने समय तक और किस प्रकार से किया था और प्रभञ्जन (वायु) ने उनको किस तरह यह पुराण कहा, यह सब आप कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें, क्योंकि हम सबको इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है। इस तरह से ऋषियों के द्वारा पूछे गये सूतजी यह शुभ वचन बोले ॥ २–३ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो! आप लोग श्रवण करें, मैं बतलाता हूँ, जहाँ पर उन परम धीर ऋषियों ने इस उत्तम सत्र का यजन किया था, जिस प्रकार से और जितने समय तक किया था ॥ ४ ॥ पहिले जहाँ पर इस विश्व के सृजन करने वालों ने विश्व का सृजन करते हुए एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इस परम पवित्र सत्र का यजन किया था ॥ ५ ॥ जिस स्थान पर तपोगृह का पति ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुआ जिस स्थान पर इला का पत्नीत्व हुआ और महान् तेज वाले मृत्यु ने जहाँ पर शामित्र (पशु बाँधने का स्थान) किया था उन महात्माओं के सत्र में देवों ने एक सहस्र प्रति वत्सर वहाँ यजन किया था। जहाँ पर धर्म चक्र के भ्रमण करते हुए नेमि विशीर्ण हो गई थी इस कर्म के कारण यह मुनियों के द्वारा परम पूजित यह स्थान 'नैमिष'—इस नाम से विख्यात हुआ है ॥ ६–७ ॥

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र तत: सौम्योऽभवत् सुत ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठः समभवद्वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धत्या सुता यत्र शतमुत्तमतेजस ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयो ॥१०
अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशर ।
पराभवो वसिष्ठस्य यस्मिन् जातेऽभ्यवर्तत ॥११
तत्र ते ईजिरे सत्र नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः ॥१२
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥१४

जिस स्थान पर बड़े बड़े सिद्धों तथा चारणो के द्वारा सेवित परम पवित्र गोमती है वहाँ पर रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया जोकि परम सौम्य हुआ ॥८॥ जहाँ पर महात्मा वसिष्ठ के अरुन्धती से अत्युत्तम तेज वाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमे शक्ति नाम वाला सबमे बड़ा पुत्र था ॥ ९ ॥ उस वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा कल्माषपाद नामक राजा को शाप दिया गया था और जिस स्थान मे विश्वामित्र और वसिष्ठ का पारस्परिक वैर हो गया था ॥ १० ॥ जहाँ पर दृश्यमान न होती हुई मे पराशर मुनि हुए जिनके उत्पन्न होने पर भी वसिष्ठजी का पराभव हुआ था ॥ ११ ॥ वहाँ पर नैमिष नामक स्थान मे ब्रह्मवादी उन ऋषियो ने सत्र का यजन किया था क्योंकि वह सत्र उन्होने नैमिष नाम वाले स्थान मे किया था अतएव तभी से वे सत्र नैमिषेय इस नाम से कहे गये हैं ॥१२॥ उन धीमान् ऋषियों का वह सत्र बारह वर्ष पर्यन्त हुआ जबकि विक्रमशील पुरुरवा राजा इस भू-मण्डल का शासन करता था ॥ १३ ॥ पुरुरवा राजा को समुद्र के अठारह द्वीपो को अपने अधिकार मे रखते हुए भी रत्नो के लोभ की अधिकता होने के कारण सन्तोष नही हुआ था, ऐसा हमने सुना है ॥ १४ ॥

उर्वशी चक्रमे य च देवहूतिप्रणोदिता ।
आजहार च तत्सत्र स्वर्वेश्यासहमङ्गतः ॥१५
तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेया प्रचक्रिरे ।
य गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ।
तदुल्बं पर्वते न्यस्त हिरण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६
हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ।
विश्वभर्ता स्वयं देवो भावयन् लोकभावनम् ॥१७
बृहस्पतिस्ततस्तेषामिततेजसाम ।
ऐल पुरुरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ॥१८
स दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ।
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुं प्रचक्रमे ॥१९
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ।
निजघ्नुश्चापि सक्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
ततो निशान्ते राजानं मुनयो दैवनोदिताः ॥२०
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेयं ततस्तस्य पुत्रञ्चक्रुर्नृपं भुवि ॥२१

देवहूति के द्वारा प्रेरित की हुई उर्वशी उसके समीप में गई और उस स्वर्ग की वेश्या के साथ में सङ्गति करने वाले अपने उस सत्र का आहरण कर लिया था ॥१५॥ उस राजा के होने के समय में नैमिषेय ऋषियों ने इस सत्र को किया था, जिस उद्दीप्त तेज वाले को अग्नि से गङ्गा ने गर्भ में प्रसूत किया था, वह गर्भ पर्वत पर रख दिया गया, जोकि सुवर्ण ही गया था ॥१६॥ लोकों की भावना को हृदय में विचारते हुए देव विश्वकर्मा ने स्वयं महात्माओं के उस यज्ञवाट को उससे हिरण्मय कर दिया था ॥१७॥ इसके अनन्तर अपरिमित तेज के धारण करने वाले उनमें बृहस्पति हुए। एक बार शिकार करते हुए पुरूरवा ऐल वहाँ पर उस देश में पहुँच गया था ॥१८॥ उसने उस यज्ञ-वाट को हिरण्मय देखकर बहुत अधिक आश्चर्य किया और लालच के कारण ज्ञान-[हीन होक]र उसे ग्रहण करने की इच्छा की ॥१९॥ इसके अनन्तर नैमिषेय

ऋषियों ने उस राजा पर अत्यन्त क्रोध किया और दैव से प्रेरित उन म-
र्षियों ने विशेष क्रोधित होकर प्रातःकाल में कुशा रूपी वज्रों से उस राजा
रन भी किया था ॥२०॥ दाम के वज्रों से विशेष रूप से पिसे हुए उस
अपने शरीर का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् भूमि पर उर्वशी के
र उसके पुत्र को राजा बना दिया गया ॥२१॥

नहुषस्य महात्मान पितर य प्रचक्षते ।
स तेषु वर्तते सम्यग धर्मशीलो महीपतिः ।
आयुरारोग्यमत्युग्र तस्मिन् स नरसत्तम. ॥२२
सान्त्वयित्वा च राजानं तता ब्रह्मविदा वरा' ।
सत्रमारेभिरे वर्त्तुं यथावद्धर्मभूतये ॥२३
बभूव सत्र तत्तेषा बह्वाश्चर्य महात्मनाम् ।
विश्वं सिसृक्षमाणाना पुरा विश्वसृजामिव ॥२४
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यमरीचिकैः ।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्ट सूर्यवैश्वानरप्रभैः ॥२५
पितृदेवाप्सर सिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः ।
सम्भारैस्तु शुभैर्जुष्ट तैरेवेन्द्रसदो यथा ॥२६
स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्मभि ।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि ॥२७
(आराधयितु मिच्छन्तस्ता कर्मान्तरेष्वथ ।
जगु सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८

जिस महान् आत्मा वाले को नहुष का पिता कहते हैं, वह धर्मशील राजा उन सबके साथ बहुत ही अच्छा बरताव करता था। वह एक परमश्रेष्ठ नृप था, इसलिये उसमें अत्युग्र आरोग्य और आयु सभी कुछ था ॥२२॥ ब्रह्मवादियों में परमश्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उस राजा को सान्त्वना करके यथारीति धर्म की विभूति की वृद्धि के लिये अपने सत्र के करने का आरम्भ कर दिया ॥२३॥ पहिले समय में इस विश्व की सृष्टि करने की इच्छा वाले विश्व सृष्टाओं की भाँति उन महान् आत्मा वाले ऋषियों का वह सत्र अत्यन्त आश्चर्य से पूर्ण

ना या ॥२४॥ प्यारे सखा वैखानसों के द्वारा बालखिल्यो के, मरीचियों के और सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले अन्य अनेक मुनियो के द्वारा उस सत्र का सेवन किया गया था ॥२५॥ पितर, देव, अप्सरागण, सिद्ध गन्धर्व उरग और चारणों के द्वारा अनेकानेक शुभ सम्भारों से युक्त होकर इन्द्रदेव के निवास-स्थान (स्वर्ग) की भाँति इस सत्र का सेवन किया गया था ॥२६॥ स्तोत्र सत्र ग्रहो से देवताओ का तथा पित्र्य-कर्मों के द्वारा पितृगण का और अन्य समस्त गन्धर्व आदि का उनकी जाति एवं स्वभाव के अनुसार विधि विधान के साथ वहाँ अर्चन किया था ॥२७॥ (इसके अनन्तर अन्य कर्मों मे आराधना की इच्छा करते हुए गन्धर्वों ने साम का गायन किया और अप्सरागणो ने वहाँ नृत्य किया ॥२८॥)

व्याजह्रुर्मुनयो वाच चित्राक्षरपदा शुभाम् ।
मन्त्रादितत्त्वविद्वासो जगदुश्च परस्परम् ॥२६
वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नु प्रतिवादिन ।
ऋषयस्तत्र विद्वास साङ्ख्यार्थन्यायकोविदा ॥३०
न तत्र दुरित किंचिद्दधुर्ब्रह्मराक्षसा ।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः ॥३१
प्रायश्चित्त दुरिष्ट वा न तत्र समजायत ।
शक्तिप्रज्ञा क्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठित ॥३२
एव वितेनिरे सत्र द्वादशाब्द मनीषिण ।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक् पृथक् ।
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्वानियुतदक्षिणान् ॥३३
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ।
पप्रच्छुरमितात्मान भवद्भिर्वर्यदत्त द्विजाः ।
प्रणोदितश्च वशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभु ॥३४
शिष्य स्वयम्भुवो देव सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यै. समन्वित ॥३५

मन्त्र आदि के तत्त्व के ज्ञाता परम विद्वान् मुनिगण अति विचित्र पदों

ालि वाली शुभ कल्याणकारिणी वाणी का उच्चारण करने लगे और परस्पर ा बोलने लगे ॥२९॥ वहाँ पर सांख्य दर्शन के अर्थ तथा न्याय-दर्शन-शास्त्र ह अर्थ के जानने वाले परम विद्वान् कुछ ऋषि लोग वितण्डायुक्त वचन बोलते ुए अपने प्रतिवादियों पर वाक्प्रहार करने लगे ॥३०॥ वहाँ उस दीर्घ सत्र में महाराक्षसों ने कोई दुरित (पाप) कर्म नहीं किया था। दैत्य लोगों ने भी ग्रज्ञ का हनन करने का कोई कर्म नहीं किया और वहाँ यज्ञीय वस्तुओं का हरण रने वाले असुर भी नहीं थे ॥३१॥ वहाँ उस समय कोई भी अनभीष्ट एवं प्रायश्चित्त के योग्य कर्म नहीं हुआ था। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के सद्योगों के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह से की गई विधि का अनुष्ठान हो रहा था ॥३२॥ परम धीर भृगु आदि मनीषी ऋषियों ने इस प्रकार से वहाँ पृथक्-पृथक् एवं तिष्टोम किये और बारह वर्ष पर्यन्त उस सत्र को करते रहे और सभी पृष्ठगमनों को अपूर्व दक्षिणा वाले किया था ॥३३॥ यज्ञ समाप्त करने वाले उन सब ने अमित आत्मा वाले महान् स्वामी वायु से ही पूछा और वायुदेव ने कहा— हे ब्राह्मणो! यदि आप लोगों ने मुझे ही यह कथन करने के लिये प्रेरित किया है तो सुनो—ऐसा प्रभु वायुदेव ने उनसे कहा ॥३४॥ वे स्वयम्भू के शिष्य, सब को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले, अपने ही वश में रहने वाले देव हैं, जो आठ अणिमादि ऐश्वर्यों से युक्त हैं ॥३५॥

तिर्यग्योन्यादिभिर्धर्मैः सर्वलोकान्बिभर्ति यः ।
सप्तस्कन्धादिकं शश्वन् प्लवते योजनाद्बहिः ॥३६
विषये नियता यस्य संस्थिता सप्तका गणाः ।
व्यूहाश्च याणां भूतानां कुर्वन् यश्च महाबलः ।
तेजसश्चाप्युपध्यानन्दधातीमं शरीरिणम् ॥३७
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः ।
प्रेर्यमाणाः शरीराणां कुर्वते यास्तु धारणम् ॥३८
आकाशयोनिर्हि गुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः ।
तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययं भावो मनीषिभिः ॥३९
तत्राभिमानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मकः ।

वातारणिं समाख्यातः शब्दशास्त्र विशारदः ॥४०
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ।
पुराणज्ञः सुमनस पुराणाश्रययुक्तया ॥४१

जो तिर्यग्योनि आदि धर्मों से समस्त लोकों का भरण करते हैं और श्रेष्ठ जो निरन्तर योजन से सम स्कन्ध आदि का प्लवन करते हैं ॥३६॥ जिसके विषय में नियत सप्तकगण सस्थित रहते हैं और जो महान् बल वाला तीन भूतों के व्यूहों को करता हुआ तेज के उपष्टम्भ को खाता है और इस शरीर को धारण करता है ॥३७॥ प्राणाद्या पाच वृत्तियाँ होती हैं और जो इन्द्रियों की वृत्तियों से प्रेर्यमाण होती हुई शरीरों को धारण करती हैं ॥३८॥ आकाश-योनि वाला गुण, शब्द और स्पर्श से समन्वित होता है। मनीषियों के द्वारा यह भाव तैजस प्रकृति वाला भी कहा गया है ॥३९॥ मान वाला भगवान् वायु-देव अत्यधिक क्रिया के स्वरूप वाला होता है। यह शब्द शास्त्र के पण्डित तथा पुराणों के ज्ञाता ने पुराणों के आश्रय से युक्त परम मधुर वाणी के द्वारा अच्छे मन वाले समस्त मुनियों को परमाह्लाद से पूर्ण करते हुए वातारणि का वर्णन किया ॥४०॥४१॥

॥ प्रजापति सृष्टि कथन ॥

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसहारविसृष्टये नम ॥१
प्रजापतीन् लोकनमस्कृता स्तथा स्वयम्भुरुद्रप्रभृतीन् महेश्वरान् ।
भृगु मरीचि परमेष्ठिन मनु रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ॥२
वसिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्द्दमान् रुचि विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरस प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलह च भावत. ॥३
तथैव चुक्रोधनमेकविंशति प्रजा विवृद्धयार्पितकार्यशासनम् ।
पुरातनानप्यपराश्च शाश्वतास्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ॥४
तथैव चान्यानपि धैर्यशोभिनो मुनीन् बृहस्पत्युशन. पुरोगमान् ।
तप.शुभाचारकृपीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ॥५

प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमां सुरेश देवर्पिगणैरलकृताम् ।
शुभामतुल्यामनघामृपिप्रियां प्रजापतीनामपि चोल्वणांचिपाम् ॥६
तपोभृता ब्रह्मदिनादिकालिकी प्रभूतमाविष्कृतपौरुपश्रियम् ।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परा पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥७

सूतजी ने कहा—समस्त देवों मे परम श्रेष्ठ, अपरिमित बुद्धि के तेज वाले, सहस्रों सूर्यों के अनल के तुल्य वर्चस वाले, उत्तम वीर्य के कर्म करने वाले महेश्वर भगवान के लिये नमस्कार है और तीनों लोकों के संहार की वेगृष्टि करने वालो के लिये नमस्कार है ॥१॥ समस्त लोको के वन्दनीय प्रजापतियों को तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) और रुद्र प्रभृति महान् ईश्वरों को एवं भृगु, मरीचि, परमेष्ठी और रज तथा तम के धर्म वाले मनु को और कश्यप को भी नमस्कार है ॥२॥ वशिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य और कर्दम को और रुचि, विवस्वान् तथा क्रतु एवं आंगिरस मुनि तथा प्रजापति को नत-मस्तक से प्रणाम करके पुलह को भाव सहित नमस्कार है ॥३॥ उसी भाँति प्रजा की विशेष वृद्धि के लिये कार्य-शासन को अर्पित कर देने वाले इक्कीस प्रजेश धन को नमस्कार है और दूसरे पुरातनों को, नित्य निवास करने वालों को तथा गणों के सहित अवस्थित अन्यों को नमस्कार है ॥४॥ इसी प्रकार से धैर्य की शोभा वाले बृहस्पति एव उशना जिनके अग्रेसर है, ऐसे अन्य मुनियों को, दया से युक्त तपश्चर्या एवं शुभ आचार वाले ऋषियों को प्रणाम करके कलियुग के पापों के नाश करने वाली प्रजापति की सृष्टि को कहता हूँ ॥५॥ यह प्रजापति की सृष्टि सर्वोत्तम है और सुरेश तथा देवर्षियों के समूह से अलंकृत है। यह सृष्टि परम शुभ, अनुपम, निष्पाप और ऋषियों को अति प्रिय है एवं अत्यन्त तीव्र कान्ति वाले प्रजापतियों की भी प्यारी है ॥६॥ जो तपस्वी लोग है,उनकी भी प्रिय है। ब्रह्मा के दिन से भी अधिक काल वाली है। यह सृष्टि ऐसी है, जिसने अत्यधिक पुरुषार्थ की श्री का आविष्कार किया है तथा श्रुति एवं स्मृति मे प्रसृत एवं उदाहृत है। यह परे से भी परे है और वायु के द्वारा प्रकीर्तित है ॥७॥

समासयन्त्रैर्नियतैर्यथातथं विशब्दनेनापि मन.प्रहर्षिणीम् ।
यस्याञ्च ब्रह्मा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥८

यत्तत् स्मृत कारणमप्रमेय ब्रह्म प्रधान प्रकृतिप्रसूति ।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षु क्षेत्र तथैवामृतमक्षरञ्च ॥९
शुक्र तप सत्त्वमतिप्रकाश तद्वचष्टि नित्य पुरुष द्वितीयम् ।
तमप्रमेय पुरुषेण युक्त स्वयम्भुवा लोकपितामहेन ॥१०
उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकात् कालस्य योगान्नियमावधेश्च ।
क्षेत्रज्ञयुक्तान् नियतान्विकारान् लोकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून् ।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥११
देवासुराद्रिद्रुमसागराणा मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम् ।
पिशाचयक्षोरगराक्षसाना ताराग्र हार्क्कर्क्षनिशाचराणाम् ॥१२
मासर्त्तु सवत्सररात्र्यहाना दिक्कालयोगादियुगायनानाम् ।
वनौषधीनामपि वीरुधाञ्च जलौकसामप्सरसा पशूनाम् ॥१३
विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमाना यत्सूक्ष्मग यद्भुवि यद्वियत्स्थम् ।
यत् स्थावर यत्र यदस्ति किञ्चित् सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्ति ।१४

यथातथ अर्थात् समुचित रूप से नियत समास बन्धो के द्वारा बिना ध्वनि के भी मन को परम प्रहर्ष देने वाली है। जिससे प्रधान की प्रथम प्रवृत्ति और ईश्वरवादिता बद्ध हो रही है ॥८॥ जो ब्रह्मा का अविषय कारण कहा गया है, वह ब्रह्म तथा प्रकृति की प्रसूति प्रधान है। गुहा की योनि वाला आत्मा, चक्षु, क्षेत्र, अमृत और अक्षर, शुक्र, तप और अति प्रकाश वाला सत्व एव वह पृथक् नित्य द्वितीय पुरुष को, पुरुष के द्वारा अप्रमेय लोकों के पितामह स्वयम्भू से युक्त उस पुरुष को, उत्पादक होने से, रजोगुण के अतिरेक से, काल के योग से और नियम की अवधि से लोक की सन्तान की विशेष वृद्धि के हेतु स्वरूप क्षेत्रज्ञ से युक्त नियत विकारों को महेश्वर के सङ्कल्प मात्र से आठ प्रकृति की अवस्था को उत्पन्न किया ॥९॥१०॥११॥ देव, असुर, अद्रि, द्रुम सागरों की—मनु, प्रजा, ईश, ऋषि, पितृगण और द्विजो की—पिशाच, राक्षस, उरग और यक्षो की—तारा, ग्रह, अर्क, ऋक्ष और निशाचरो की—मास, ऋतु, सम्वत्सर, रात्रि और दिवसों की—दिशा, काल, योगादि, युग और अयनों की—वन की ओषधियो की—वीरुधो की—जल मे घर वालो की—

अप्सराओं को—पशुओं को—विद्युत, सरित (नदी), मेघ और विहगमों की स्थिति म जो सूक्ष्म गमन करने वाला है, जो भूमि म है और जो नभ मे स्थित है तथा जो स्थावर है, जहाँ भी जो कुछ है उन सब की गति विभक्ति ही है ॥१२।१३॥१४॥

छन्दांसि वेदा सऋचो यजू षि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञ ।
आजीव्यमेषा यदभीप्सितञ्च देवस्य तस्यैव च वै प्रजापते ॥१५
वैवस्वतस्यास्य मनो पुरस्तात् सम्भू निरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।
येषामिद पुण्यकृता प्रसूत्या लोकत्रय लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधीनामापूरितञ्चोपरिभूमिनञ्च ॥१६
रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वास क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभ ।।१७
मन्वन्तराणा परिवर्त्तनानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च सत्रवृद्धियया युगादिष्वपि चेतदत्र ॥१८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्रक्रमशो निबद्धा ।
कल्पस्य सख्या भुवनस्य सख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य सख्या ।१६
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजाना धर्मात्मना स्वर्गनिवासिना वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्क्षेण तेषामपि च प्रमाणम् ॥२०
आत्यन्तिक प्राकृतिकश्च याश्च नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतु ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च समारणनि परा च ॥२१
प्रवृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुन प्रवृत्ति ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात् समस्तमाविष्कृतधीधृतिः प ।
विप्रा ऋषिभ्य समुदाहृत यथातथ तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२२

छन्द, वेद, ऋचाओं के सहित यजु, साम और सोम तथा यज्ञ इन सबका आजीव्य और जो भी इनका अभीप्सित है, वह सब उसी प्रजापति द्वारा निश्चित रूप से होता है ॥१५॥ पहिले इस वैवस्वत मनु की सम्भूति कही गई है और उसका प्रसव पर्यान्त भी कहा गया है। ये तीनों लोक जो कि उन के द्वारा वन्दनीय सुरेश, देवर्षि, मनु आदिकों की प्रसूति से अर्थात् परम पुण्य

शालियो के जन्म से समस्त तीनो लोक परिपूरित हैं और भूषित भी है ॥१६॥ इस मनुष्य लोक मे रुद्र के शाप से दक्ष का पुनर्जन्म अथवा भूमण्डल में निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिशाप लाभ हुआ ॥१७॥ मन्वन्तरो का परिवर्तन युगो में उनकी सम्भूति (उत्पत्ति) और विश्लथन तथा युगादि मे ऋषित्व और आर्ष की सम्प्रवृद्धि हुई वैसी ही यहाँ पर भी हुई ॥१८॥ जिन व्यासदेव ने द्वापर में वेदों का विस्तार किया, वे यहाँ पर भी क्रमश निरुद्ध हैं । कल्प की सख्या है, भुवन की सख्या है और ब्रह्मा के दिन की भी सख्या होती है ॥१९॥ जीवों की जो अण्डज हैं, उद्भिज हैं, स्वेदज हैं और जरायुज है, धर्मात्मा हैं या स्वर्ग के निवास करने वाले जीव हैं और जो यातना सहने के लिये यातना स्थान (नरक) में पड़े हुए हैं, तर्क से उन सबका भी प्रमाण है ॥२०॥ आत्यन्तिक, प्राकृतिक और नैमित्तिक जो यह प्रतिसर्ग का हेतु है तथा बन्ध और विशेष कर मोक्ष इनमे यहाँ पर परा, ससार की गति बताई गई है ॥२१॥ प्रकृति मे, अवस्थित कारणो मे जो स्थिति होती है, अथवा जो प्रवृत्ति होती है, हे विप्रो ! वह शास्त्र की युक्ति से अपनी बुद्धि के प्रयत्न से समस्त धैर्य और बुद्धि को आविष्कृत करने वाले ऋषियों के लिये जो भली भाँति समझा कर कहा गया है, अब आप लोग कहे जाने वाले उस सबको श्रवण करो ॥२२।

।। हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति ।।

ऋषयस्तु तत श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिन ।
प्रत्यूचुस्ते तत. सर्वे सूत पर्याकुलेक्षणा ॥१
भवान् वै वशकुशलो व्यासात् प्रत्यक्षदर्शवान् ।
तस्मात्त्व भवन कृत्स्न लोकस्यामुष्य वर्णय । २
यस्य यस्यान्वया ये ये तास्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषा पूर्वविसृष्टि च विचित्रा ता प्रजापते ॥३
असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा लोमहर्षण. ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तम ॥४

पृष्टा चैता कथा दिव्या श्लक्ष्णा पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रा बह्वर्था श्रुतिसम्मताम् ॥५
यश्चेमाधारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषत ॥६
शुचि पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ।
स्ववंशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥७

नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने यह सुनकर इसके अनन्तर पर्याकुल नेत्रों वाले उन सबने सूतजी से कहा ॥ १ ॥ महा महर्षि व्यास जी के प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण से आप निश्चय ही बड़े कुशल महापुरुष हैं, इसलिये आप इस लोक का सम्पूर्ण भवन का हमारे सामने वर्णन करें ॥ २ ॥ जिस जिसके जो जो अन्वय (वंश) हैं और उनकी प्रजापति की विचित्र पूर्वकालीन ऋषियों की सृष्टि को तथा अन्वयों को हम जानना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर महात्मा लोमहर्षणजी, जो कि सत्पुरुषों में परमश्रेष्ठ हैं उसे विस्तार से तथा आनुपूर्वी से कहने लगे ॥ ४ ॥ लोमहर्षण जी ने कहा—मुझ से पूछी गयी यह कथा अत्यन्त दिव्य-मधुर और पापों के नाश करने वाली है और अब मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा सर्वथा श्रुति (वेद) से सम्मत, गहरे अर्थ से परिपूर्ण और अति विचित्र है । जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण करेगा अथवा कई बार श्रवण करेगा और ब्राह्मणों को श्रवण करायेगा तथा विशेष रूप से यतियों को सुनायेगा और देवायतनों में, पर्व दिनों में पवित्र तथा समाहित होकर श्रवण करायेगा वह इस पुराण के अनुकीर्त्तन करने से दीर्घ आयु को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और अपने वंश को धारण करके स्वर्गलोक में जाकर अन्त में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५—६—७ ॥

विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमानं निबोधध्वं सर्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥८
धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ।
कीर्त्तनं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यकारिणाम् ॥९

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥१०
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि भारतं वेदसम्मितम् ॥११
प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः ॥१२
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्तिता मया ।
वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥१४

उनके विस्तार के अङ्ग को जिन शब्दों में जैसा भी मैंने सुना है वह अब मेरे द्वारा कीर्तन किया जा रहा है आप उसे समझ लेवें, यह सबकी कीर्ति का बढ़ाने वाला है ॥ ८ ॥ परम पुण्यकारी और स्थिर कीर्ति वाले सबकी यह कीर्तन धन यश के बढ़ाने वाला है, शत्रुओं का नाशक, स्वर्ग प्रदान कराने वाला और आयु की वृद्धि कराने वाला है ॥ ९ ॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं, पुराण में सर्ग प्रतिसर्ग वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँचों होते हैं तभी वह पूर्ण लक्षण सम्पन्न पुराण कहा जाता है ॥ १० ॥ कल्पों के भी जो कल्प है और शुचियों का भी जो नियत शुचि है ऐसा वेद से सम्मत यह भारत पुराण मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ प्रबोध-प्रलय स्थिति और उत्पत्ति ये प्रक्रिया प्रथम पाद है। कथन के योग्य वस्तु का परिग्रहण-उपोद्घात-अनुषङ्ग और उपसंहार होता है। यह धर्म से युक्त या धर्म देने वाला यश दाता, आयु वर्द्धक और सब प्रकार के पापों का नाशक होता है ॥१२—१३॥ इस प्रकार से मैंने संक्षेप में चार पादों को बतला दिया है पुनः इनको क्रमानुसार विस्तार के साथ कहूँगा ॥ १४ ॥

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥१५

महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्स्रोतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम् ।
असंशयाद् प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥१६
अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥१७
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥१९
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥२०
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥२१
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥२२

इस हिरण्यगर्भ पुरुष और ईश्वर के लिये—अनन्त रूप और प्रथम स्वरूप वाले के लिये - विविधार्थों से युक्त और प्रजाओं के लिए—लोकेश, स्वयम्भू ब्रह्मा जी के लिये नमस्कार करके ॥ १५ ॥ मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ इस भूत सर्ग को बिना किसी संशय के कहता हूँ जिसके आदि में महत् है, अन्त में विशेष है, वैरूप्य से युक्त है और लक्षण के सहित है तथा पाँच प्रमाण वाला है, षट्स्रोत युत है एवं पुरुष से अधिष्ठित है और वन्दित है ॥ १६ ॥ और जो इसका अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष उसे प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥ १७ ॥ अब उस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वह अव्यक्त गन्ध वर्ण और रस से रहित है तथा शब्द और स्पर्श से भी हीन होता है। वह अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य और अपनी ही आत्मा में अर्थात् स्वरूप में अवस्थित है ॥ १८ ॥ यह अव्यक्त इस जगत् का योनि, महद्भूत, सनातन, पर और ब्रह्म है। समस्त

प्राणियों का विग्रह ऐसा अव्यक्त हुआ था ॥ १६ ॥ जिसका न आदि है और न अन्त ही है ऐसा अन्तजन्त, अजसूक्ष्म, त्रिगुण, प्रभवान्यय, असाम्प्रत और अविज्ञेय अर्थात् न जानने के योग्य अव्यक्त ब्रह्म के आगे आया ॥ २० ॥ उसकी आत्मा से अर्थात् स्वरूप से यह सब अन्धकारमय व्याप्त था। उस समय सृजन के काल में गुण साम्य अर्थात् गुणों की समष्टि में और तमोमय गुण भाव में क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुण मात्र से बाध्यमान महान् प्रादुर्भूत हुआ अर्थात् उत्पन्न हुआ ॥ २१—२२ ॥

सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृत ।
सत्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकम् ।
मनो महांश्च विज्ञेयो मन स्तत्कारण स्मृतम् ॥२३
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।
धर्मादीनान्तु रूपाणि लोकतत्वार्थहेतव ।
महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमान सिसृक्षया ॥२४
मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धि ख्यातिरीश्वर ।
प्रज्ञा चिति स्मृति संवित् विपुर चोच्यते बुधैः ॥२५
मनुते सर्वभूताना यस्मा च्चेष्टाफल विभुः ।
सौक्ष्मत्वेन वित्रुद्धाना तेन तन्मन उच्यते ॥२६
तत्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणत ।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति तत स्मृत ॥२७
बिभर्ति मान मनुते विभागं मन्यतेऽपि च ।
पुरुषो भोगसम्बन्धात् तेन चासौ मति स्मृत ॥२८

अव्यक्त और सूक्ष्म महत् से समावृत वह सत्व के उद्रेक वाला महान् आगे हुआ जो केवल सत्व का प्रकाश करने वाला था। वह महान् मन ही समझना चाहिये क्योंकि मन ही उसका कारण कहा गया है ॥ २३ ॥ वह क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित महान् लिङ्गमात्र उत्पन्न हुआ। धर्म आदि के रूप तो लोक तत्वार्थ के हेतु हैं। सृजन करने की इच्छा से प्रेरित किया हुआ वह महान् सृष्टि को करता है ॥ २४ ॥ विद्वानों के द्वारा यह महान् मन, मति, ब्रह्मा,

पुर्बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संवित और विपुर कहा जाता है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मता से विशेष बढ़े हुए समस्त भूतों की चेष्टा के फल को यह विभु अवबोधित करता है इसी कारण से यह मन कहा जाता है ॥ २६ ॥ यह समस्त अन्य तत्वों के पहिले उत्पन्न हुआ है और परिमाण मे महान् अर्थात् बड़ा है तथा शेष अन्य गुणों से भी बड़ा है इसीलिये इसे महान् कहा गया है ॥ २७ ॥ मान को धारण करता है और विभाग को समझता है तथा भोग के सम्बन्ध से पुरुष भी मानता है इसलिये यह 'मति' इस नाम से कहा गया है ॥ २८ ॥

बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च भावाना सलिलाश्रयात् ।
यस्माद्बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ॥२६
आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान् देहाननुग्रहे ।
तत्वाभावाश्च नियता स्तेन पूरिति चोच्यते ॥३०
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वभावान् हिताहितान् ।
यस्मादवबोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते ॥३१
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मान् सवर्त्तते ततः ।
भोगश्च ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृत ॥३२
ख्यायते तद्गुणैर्वापि नामादिभिरनेकशः ।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्याभिधीयते ॥३३
साक्षात् सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।
तस्ताज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥३४
ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च ।
चिनोति यस्माद्भोगार्थांस्तेनासौ चितिरुच्यते ॥३५

बृहत् का भाव होने से और बृंहणत्व के कारण से तथा भावों के सलिलाश्रय होने से यह भावों को बृंहित करता है इसीलिये इसे ब्रह्म कहा जाता है ॥ २६ ॥ इसी कारण से कि यह अनुग्रहों के द्वारा समस्त देहों का तथा नियत तत्वभावों का आपूरण किया करता है इसका नाम 'पु'—यह कहा जाता है ॥ ३० ॥ इसमें पुरुष हित और अहित सभी भावों को जानता है और जिससे ज्ञान प्राप्त किया करता है इसलिये इसका नाम "बुद्धि"—यह कहा

जाता है ॥ ३१ ॥ ख्याति और प्रत्युपभोग जिससे होते हैं तथा ज्ञान की निष्ठा होने से भोग होता है इसीलिये यह 'ख्याति' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ उसके गुणों के द्वारा अनेक नामादि से यह ख्यात होता है इसीलिये इस महत् की 'ख्याति' यह संज्ञा कही जाती है ॥ ३३ ॥ यह सभी कुछ को साक्षात् रूप से जानता है इसीलिये इस महात्मा का 'ईश्वर' नाम होता है। और इससे समस्त प्रज्ञों की उत्पत्ति हुई है अतएव वह 'प्रज्ञ'—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३४ ॥ ज्ञान आदि के रूप और क्रतु कर्म के फल को तथा भोगार्थों को जो चयन करता है इसीलिये वह 'चिति'—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३५ ॥

वर्त्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।
स्मरत सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।
तस्माद्विदेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥३७
विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्वं तस्मिश्च विद्यते ।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरैः ॥३८
ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याहु भगवान् ज्ञानसन्निधि ।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः ॥३९
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्य च तथेश्वर ।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥४०
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स क स्मृत ।
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१
पर्यायवाचकैः शब्देस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेव सद्भावचिन्तकैः ॥४२

वर्त्तमान, भूत और अनागत समस्त कार्यों का स्मरण इसके द्वारा किया जाता है इसलिये यह 'स्मृति'—इस नाम वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ करता है इससे 'माहात्म्य' कहा जाता है और पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता होने से इसका नाम 'संवित्' कहा जाता है ॥ ३७ ॥ यह सभी में

विद्यमान रहता है और सभी कुछ इसमें विद्यमान है इसीलिये श्रेष्ठ बुद्धि वालों के द्वारा यह महान् 'सविद' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञान होने से इसे 'ज्ञान' यह कहा जाता है और ज्ञान की अच्छी निधि होने के कारण 'भगवान्' कहा जाता है। समस्त द्वन्द्वों के विपरीभाव होने के कारण बुधों के द्वारा इसका नाम 'त्रिपुर'—यह कहा जाता है ॥ ३६ ॥ लोकों का सबसे बड़ा ईश होने के कारणवश ही इस महत् का नाम 'ईश्वर'—यह हुआ है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा'—यह कहा गया है और भूतरव भाव इसमें रहने से इसे 'भव'—यह कहा जाता है ॥ ४० ॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विशेष ज्ञान होने में और एकत्व होने से उसे 'क'—यह कहा जाता है। क्योंकि वह पुरी में अनुशयन किया करता है अतएव उसका नाम 'पुरुष'—यह कहा जाता है। वह किसी के द्वारा उत्पादित नहीं हुआ है और पूर्ववर्त्ती है इसीलिये 'स्वयम्भू'—इस नाम वाला है ॥४१॥ तत्त्वभाव के ज्ञाता तथा सद्भाव के चिन्तन करने वालों के द्वारा पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक द्योतक तत्त्व आर्ष और उत्तमम्—इन शब्दों से व्याख्या की गई है ॥ ४२ ॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥४३
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः ।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्त्वराजसतामसः ॥४४
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
महता चावृतः सर्गो भूतादिविकृतस्तु सः ॥४५
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥४६
आकाशं शुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम् ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुनः ॥४७
शब्दमात्रन्तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ॥४८
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणोमतः ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४९

सृजन करने की इच्छा से जब इस महान् को प्रेरणा दी जाती है तो यह इस जगत् की सृष्टि किया करता है। उसकी सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो प्रकार की वृत्ति कही गई हैं। मानसिक कर्म का नाम सङ्कल्प और लगातार श्रम से कार्य करने को अध्यवसाय कहते हैं ॥ ४३ ॥ धर्म आदि के रूप लोक के तत्वार्थ के हेतु होते हैं। वह सात्विक राजस और तामस प्रकार से तीन गुणों वाला समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस त्रिगुण स्वरूप से जब रजोगुण का उद्रेक होता है तो उससे अहङ्कार हुआ है। वह सर्ग महत् से आवृत है और भूतादि से विकृत स्वरूप वाला होता है ॥ ४५ ॥ तमोगुण के उद्रेक वाले उस अहङ्कार से भूतों की तन्मात्राओं का सर्ग होता है। वह भूतादि वाला उसका तामस स्वरूप है । ४६ ॥ उससे शब्द लक्षण वाला आकाश शुषिर उद्रिक्त हुआ। शब्द मात्र आकाश को फिर भूतादि ने आवृत कर लिया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर शब्द मात्र आकाश को स्पर्श मात्र सृजन किया। विकृत रूप वाले होते हुये भूतादि ने शब्द मात्र का सृजन किया ॥ ४८ ॥ फिर बल वाला वायु उत्पन्न होता है जिसका एक मात्र गुण स्पर्श ही कहा गया है। शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र वायु को समावृत कर लिया था ॥ ४९ ॥

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ।
आपो रसात् विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥५०
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः ।
रसमात्रस्तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत् ॥५१
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः ।
अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥५२
भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् ।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्वोद्रिक्तात्तु सात्विकात् ।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते ॥५३
बुद्धिन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्द्देवा वैकारिका दश ।
एकादश मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥५४

श्रोत्र त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥५५
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यश्च कर्म च ॥५६

जल केवल रस मात्र होता है जो कि रूप मात्राओं से आवृत हुआ था। जल ने रसों का विकार करते हुये गन्धमात्रा का सृजन किया ॥ ५० ॥ उससे सङ्घात की उत्पत्ति होती है जिसका गुण गन्ध होता है। रस मात्रा वाले जल ने गन्ध मात्रा वाले को समावृत कर लिया था ॥ ५१ ॥ उस उसमे जो तन्मात्रा है उसमे उसकी तन्मानता कही गयी है। अविशेष वाचक होने से तब ये अविशेष कहे गये हैं। अशान्त, घोर और मूढ होने से फिर अविशेष कहे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार परस्पर मे यह भूत तन्मात्र का सर्ग जनना चाहिये। वैकारिक अर्थात् विकारयुक्त अहङ्कार से और सत्व के उद्रेक वाले सात्विक से यह वैकारिक सर्ग एक साथ सम्प्रवृत्त होता है ॥ ५३ ॥ पाँच बुद्धीन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानार्जन करने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच साधक कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् केवल कर्म करके ज्ञानार्जन करने वाली इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इनके दश के दश ही अधिष्ठाता देव होते हैं जो वैकारिक कहे जाते हैं। उन दश उपर्युक्त इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है। वहाँ वैकारिक देव होते हैं ॥५४। अब उन समस्त उक्त इन्द्रियों के विषय मे बतलाते हैं। श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और पाँचवी इन्द्रिय नासिका है। ये सब शब्दादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होती हैं इसीलिये बुद्धीन्द्रिय कहा जाता है ॥ ५५ ॥ दोनो चरण, पायु अर्थात् गुदा-उपस्थ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय दोनो, हाथ और दशवी वाक् ये इन्द्रियाँ इस तरह हैं। इनका क्रम से कर्मगति-विसर्ग अर्थात् मल का त्याग, आनन्द अर्थात् रमण सुख, शिल्प अर्थात् दस्तकारी और वाक्य कथन होता है ॥५६॥

आकाशं शब्दमात्रश्च स्पर्शमात्रं समाविशेत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्द स्पर्शात्मकोऽभवत् ॥५७
रूपन्तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥५८

सशब्दस्पर्शरूपाश्च रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ॥५९
सशब्दस्पर्शरूपेषु गन्धस्तेषु समाविशन् ।
संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमि स्थूलभूतेषु दृश्यते ॥६०
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृता. ।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ।
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृता. ॥६२
गुण पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषा यावच्च यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥६३
उपलभ्य शुचेर्गन्ध केचिद्वायोरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तद्विद्यादेषा वायोश्च संश्रयात ॥६४

शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रा वाले वायु मे समावेश करता है । अतएव वायु स्पर्श और शब्द इन दो गुणो वाला हो गया ॥ ५७ ॥ शब्द और स्पर्श ये दोनो गुण उसी प्रकार से रूप मे समावेश करते हैं । इसलिये अग्नि शब्द-स्पर्श और रूप इन तीन गुणो वाला हो गया ॥ ५८ ॥ इसी रीति से शब्द-स्पर्श और रूप रस तन्मात्रा वाले जल मे समाविष्ट हो गये । इसलिये जल शब्द, स्पर्श, रूप और रस इन चार गुणो वाला हो गया ॥ ५९ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस इनमे गन्ध का समावेश हो गया । किन्तु मही को केवल गन्ध से ही निर्धारित किया करते हैं । वस्तुत यह भूमि पाँच गुणो वाली स्थूल भूतो मे दिखलाई देती है ॥ ६० ॥ शान्त घोर और मूढ हैं अतएव ये विशेष कहे गये हैं । ये परस्पर मे अनुप्रवेश करने से परस्पर को धारण किया करते हैं ॥६१॥ लोकालोक घन से आवृत यह सब भूमि के अन्दर हैं । विशेष इन्द्रियो के द्वारा ग्रहण करने योग्य है नियत होने से वे कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ पूर्व पूर्व के गुण उत्तर से उत्तर को प्राप्त होते हैं । उनका जितना और जो है वह उतना ही गुण कहा गया है ॥ ६३ ॥ कुछ लोग वायु के गन्ध को प्राप्त कर निपुणता के

अभाव से उसे वायु का ही गुण मान लेते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। इसे पृथिवी का ही समझना चाहिये और वायु मे तो केवल उसका सश्रय हो जाता है ॥ ६४ ॥

एते सप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक् पृथक् ।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ।
ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात् ॥६५
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६६
एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् ।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकं च यत् ।
तत्तस्मिन् कार्यकरण संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा ॥६७
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञित ।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥६८
आदिकर्त्ता च भूताना ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ।
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञितः ॥६९
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च ।
भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु ॥७०
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्वं तन्महात्मनः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च जराय्वस्थीनि पर्वताः ॥७१

ये सात महान् वीर्य वाले हैं और पृथक् पृथक् अनेक भाँति के होते हैं। पूर्णरूप से न मिलकर प्रजा की सृष्टि करने मे समर्थ नहीं हुए ये सब महान् आत्मा वाले अन्योन्य के अर्थात् एक दूसरे के सश्रय से मिलकर पुरुष के अधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक वे सब अण्ड को उत्पादित किया करते हैं ॥६५-६६॥ एक ही काल मे वह जल के बुदबुदे की भाँति समुत्पन्न हुआ और विशेषों से अण्ड के स्वरूप में हुआ। फिर वह और उदक बृहत् हुआ और उसमें उस समय ब्रह्मा

की कार्य करणता ससिद्ध हुई ॥६७॥ प्राकृत अण्ड के विबुद्ध होने पर क्षेत्रज्ञ ब्रह्म सज्ञा वाला हुआ। वही सर्वप्रथम शरीरधारी है और वही पुरुष'—इस नाम से कहा जाता है ॥६८॥ भूतो का अर्थात् प्राणियो का आदिकर्त्ता अर्थात् सर्वप्रथम सृजन करने वाला पहिले ब्रह्मा हुए। वह हिरण्यगर्भ इसमें आगे चार मुखो वाला प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ। और सर्ग, प्रति-सर्ग मे क्षेत्रज्ञ ब्रह्म सज्ञा वाला होता है ॥६९। इन्द्रियों के साथ सृजन किये जाते हैं और प्रत्याहार मे त्याग देते हैं तथा फिर असमाहार सन्धियो में देहो को धारण कर लेते हैं। ॥७०॥ उस महान् आत्मा को उल्वता हिरण्मय मेरु की है समुद्र गर्भ का जल है और जरादि अस्थियाँ पर्वत है ॥७१॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सम वै।
सप्तद्वीपा च पृथ्वीय समुद्रैः सह सप्तभि ॥७२
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः।
अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिद जगत् ॥७३
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना।
लोकालोक च यत् किंचिच्चाण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥७४
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्ड समावृतम्।
आपो दशगुणा ह्येवन्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥७५
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥७६
आकाशेन वृतो वायुः ख च भूतादिना वृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान्।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥७७
एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
प्रसर्गकाले स्थित्या च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥७८

उस अण्ड मे ये सातों लोक अन्तर्भूत है अर्थात् उस के अन्दर रहते हैं। सात द्वीप और सातों समुद्रो के सहित यह भूमण्डल, बडे विशाल पर्वत, सहस्रो की संख्या वाली नदियाँ—ये सब उसी के अन्तर्भाग में हैं। ये सब लोक और

यह सम्पूर्ण जगत् तथा समस्त विश्व उसके ही अन्दर होते हैं ॥७२-७३॥ चन्द्रमा और सूर्य समस्त नक्षत्रों के साथ तथा सम्पूर्ण ग्रहों के सहित उसमें हैं और वायु के साथ लोकालोक जो कुछ भी है उसी अण्ड मे समर्पित है ॥७४॥ यह अण्ड बाहिर से दश गुने जल से समावृत है और फिर जल से दश गुने तेज से इसी प्रकार बाहिर से आवृत है ॥७५॥ इसी भाँति तेज जितना है उससे दश गुना वायु से आवृत होता है और वायु से दश गुना उसके बाद आकाश से आवृत होता है ॥७६॥ वायु से आकाश से आवृत है और नभ भूतादि से आवृत है। भूतादि सब महान् से तथा यह महत् अव्यक्त से आवृत होता है। इस प्रकार से यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत होता है ॥ ७॥ इन सब को अन्योन्य को आवृत करके आठ प्रकृतियाँ स्थित होती हैं। प्रसर्ग के काल मे ये स्थित होकर परस्पर में ग्रसती हैं ॥७८॥

एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ॥७६
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।
अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ॥८०
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः ।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ॥८१
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम् ।
पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ॥८२

इस रीति से परस्पर मे उत्पन्न होती हुई परस्पर में ही ये धारण किया करती हैं। विकार वालों में विकार का आधार-आधेय भाव होता है ॥७६॥ यहाँ इस अव्यक्त को क्षेत्र बताया गया है, ब्रह्मा इसका क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही प्राकृत-सर्ग होता है जो कि क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित होता है। यह पहिले अबुद्धि पूर्व वाला था और जिस तरह अचानक बिजली चमक कर दिखलाई देया करती है उसी तरह यह प्रादुर्भूत हुआ ॥८०॥ इस हिरण्यगर्भ के जन्म को तत्त्व बुद्धि पूर्वक ठीक-ठीक जो जानता है वह आयु वाला-कीर्ति वाला-धन्य

और प्रजा वाला होता है ॥८१॥ जो मानव निवृत्ति की ही कामना रखत
वह भी शुद्ध आत्मा वाला अच्छी गति को प्राप्त करता है। पुराण के नि
श्रवण करने से सुख और क्षेम की प्राप्ति होती है ॥८२॥

॥ सृष्टि रचना और दैवी शक्तियाँ ॥

यद्धि सृष्टेस्तु सख्यात मया कालान्तरन्द्विजा: ।
एतत् कालान्तर ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥१
रात्रिरत्वेतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नश ।
अहस्तस्य तु या सृष्टि प्रलयो रात्रिरुच्यते ॥२
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ।
उपचार प्रक्रियते लोकाना हितकाम्यया ॥३
प्रजा प्रजानाम्पतय ऋषयो मुनिभि सह ।
ऋषीन् सनत्कुमाराद्यान् ब्रह्मसायुज्यगै सह ॥४
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।
तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह ॥५
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमत ।
अहरन्ते प्रलीयन्ते राव्यन्ते विश्वसभव ॥६
स्वात्मन्यवस्थिते सत्वे विकारे प्रतिसहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥७

श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! यह मैंने जो सृष्टि के का
ान्तर की गणना की है यह कालान्तर परमेश्वर का दिन समझना चाहिए ॥
परमेश्वर की रात्रि भी इतनी ही जाननी चाहिए उसका जो दिन होता है
सृष्टि का काल होता है और जो रात्रि होती है वह प्रलय कहा जाता है।
उसका दिन तो होता है किन्तु रात्रि नहीं होती है—यह धारणा लोकों के
की कामना से उपचार किया जाता है ॥३॥ प्रजा प्रजाओं के पति—ऋषि
मुनियों के सहित—सनत्कुमारादि नाम वाले ब्रह्म सायुज्य को जाने वाल
सहित एकादश इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के सब अर्थ अर्थात् विषय—पंचमहा
पाँच तन्मात्रा, इन्द्रियों का समुदाय और मन के साथ बुद्धि ये सब परमेश्

दिन के समय में रहा करते हैं और उस धीमान् परमेश्वर के दिन के अन्त समय में ये सब प्रलीन हो जाते हैं फिर जब रात्रि का अवसान होता है तो इस विश्व की उत्पत्ति हो जाती है ॥४-५-६॥ अपनी आत्मा में सत्व के अवस्थित होने पर और विकार प्रतिसहृत हो जाने पर प्रधान और पुरुष दोनों साधर्म्य से अवस्थित रहा करते हैं ॥७॥

तम सत्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनोद्रिक्तौ प्रभूतौ च तौ तथा च परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥८
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम् ॥९
उपास्य रजनी कृत्स्ना परा माहेश्वरी तदा ।
अहर्मुखे प्रवृत्ते च परः प्रकृतिसम्भवः ॥१०
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।
प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः ॥११
प्रधानात् क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्तत ।
रजः प्रवर्त्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् ॥१२
गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिता ।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
आश्रिता परमा गुह्या सर्वात्मानः शरीरिणः ॥१३
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत ।
रजः प्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ॥१४

तमोगुण और सत्वगुण ये दोनों समत्व रूप में व्यवस्थित हैं। यहाँ पर ये दोनों उद्रेक वाले होते हैं और परस्पर में प्रभूत होते हैं। जब गुणों का साम्य हो अर्थात् दोनों गुण समान स्वरूप में स्थिति रखने वाले होते हैं तो सृष्टि का लय समझ लेना चाहिए। जब इनकी विषमता का भाव होता है तो उसे ही सृष्टि कहा जाता है ॥८॥ वस्तुतः स्पष्ट दर्शन में ये दो ही गुण आते हैं सत्वगुण और तमोगुण किन्तु तृतीय जो रजोगुण होता है वह जिस तरह तिलों में तैल

रहता है और दूध मे घृत रहा करता है किन्तु वह तैल और घृत स्पष्ट दिखलाई नही दिया करता है उसी तरह तमोगुण मे और सत्त्वगुण में रजोगुण अव्यक्त रूप से आश्रित होकर स्थित रहता है जो कि प्रत्यक्ष दिखाई नही देता है ॥९॥ महेश्वर प्रभु की परा सम्पूर्ण रजनी की उपासना करके तब दिन के आरम्भ प्रवृत्त हो जाने पर आगे प्रकृति का सम्भव (उत्पत्ति) हुआ। १०॥ महेश्वर ने अण्ड मे प्रवेश करके उग्र योग से प्रधान और पुरुष को क्षुब्ध कर दिया ॥११॥ उस समय जब प्रधान क्षोभ्यमाण हुआ तो उससे रजोगुण हुआ वहाँ पर बीजों मे जल के सदृश वह रजोगुण ही प्रवर्त्तक हो गया ॥१२॥ उस समय गुणो की विषमता को प्राप्त कर जो अण्ड मे अधिष्ठित थे वे प्रसूत होते हैं। क्षोभ को प्राप्त हुए गुणो से तीन देव समुत्पन्न हुए जो वहाँ आश्रित थे—परम गुह्य थे—सब की आत्मा स्वरूप थे और शरीर धारण करने वाले थे ॥१३॥ रजोगुण तो ब्रह्मा हैं—तमोगुण अग्नि है और सत्त्वगुण [illegible] उत्पन्न हुए। ब्रह्मा सृष्टा होने से रजोगुण के प्रकाशक व्यवस्थित हुए ॥[illegible]

तम प्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः।
सत्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ॥१५
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः ॥१६
परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम्।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविन ।
क्षण वियोगो न ह्येषाम् त्यजन्ति परस्परम् ॥१७
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महत॰ पर.।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्त्तते।
परश्च पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥१८
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमानः समन्तात्।
अनुप्रवर्त्तन्ति महान्त एव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात् ॥१९
प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्तते।
ईश्वराधिष्ठितात् पूर्वन्तस्मात्सदसदात्मकात्।

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुन युगपत्सम्बभूवतु ॥२०
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञित ।
ससिद्ध कार्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ॥२१

अग्नि तमोगुण का प्रकाश करने वाला है अत वह काल के स्वरूप से व्यवस्थित हुए। सत्त्वगुण के प्रकाशक विष्णु हैं अत उदासीनता की स्थिति में व्यवस्थित हुए हैं ॥१५॥ ये ही तीन वेद हैं, ये ही तीन अग्नियाँ हैं। ये परस्पर मे एक-दूसरे के आश्रित हैं और परस्पर म अनुव्रत वाले भी होते हैं ॥१६॥ ये तीनो परस्पर मे बरताव करते हैं और परस्पर मे धारण किया करते हैं। ये अन्योन्य मिथुन अर्थात् जोड़े वाले हैं और अन्योन्य के उपजीवी होते हैं। इनका आपस मे एक दूसरे से एक क्षण मात्र का भी वियोग नही होता है और ये एक दूसरे को आपस मे कभी त्याग नही करते हैं ॥१७॥ ईश्वर सबसे पर देव हैं और विष्णु महान् से भी पर हैं। ब्रह्मा तो रजोगुण के उद्रेक वाले हैं जो यहाँ सर्ग के लिये ही प्रवृत्त होते हैं। पुरुष को पर समझना चाहिए और प्रकृति परा कही गई है ॥१८॥ ईश्वर के द्वारा अधिष्ठित यह चारो ओर से उद्यम युक्त होता हुआ प्रवृत्त होता है। अपने विषय मे प्रिय होने के कारण चिर स्थित महान् ही फिर अनुप्रवृत्त किया करते हैं ॥१९॥ प्रधान गुणों की विषमता होने के कारण से सर्ग काल मे अर्थात् सृजन के समय मे प्रवृत्त होता है। पहिले ईश्वर से अधिष्ठित उस सदसदात्मक स ब्रह्मा और बुद्धि का जोड़ा एक ही समय मे उत्पन्न हुआ ॥२०॥ इस कारण से तम अव्यक्तमय और क्षेत्रज्ञ ब्रह्म सज्ञा वाला होता है तथा कार्य कारणो से ससिद्ध होता हुआ ब्रह्मा आगे हुआ ॥२१॥

तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्त सप्रकाशते ।
स वै शरीरी प्रथम कारणत्वे व्यवस्थित ॥२२
अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वित ।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः ॥२३
तस्येश्वरस्याप्रतिघ ज्ञान वैराग्यलक्षणम् ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिन ॥२४
अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति ।

वशीकृत त्वाद्वै गुण्यात् सुरेशत्वात्स्वभावत· ॥२५
चतुर्मु खस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत् ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्था स्वयम्भुव ॥२६
सत्त्व रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तम ।
सात्त्विक पुरुषत्वे च गुणवृत्ति स्वयम्भुव ॥२७
लोकान् सृजति ब्रह्मे ति कालत्वे संक्षिपत्यपि ।
पुरुषत्वे ह्य दासीनस्तिस्रोऽवस्था प्रजापते ॥२८

प्रथम धीमान् अव्यक्त तेज से भली भाँति प्रकाशित होता है । वह प्रथम शरीर धारण करने वाला है जो कि कारण रूप से व्यवस्थित हुआ है ॥२२॥ वह अनुपम धर्म और वैराग्य से समन्वित तथा अप्रतीघ ज्ञान एव ऐश्वर्य से अन्वित था ॥२३॥ उस ईश्वर का वैराग्य के लक्षण वाला अप्रतिघ ज्ञान था और अभिमान वाले उसको धर्म तथा ऐश्वर्य से की हुई ब्रह्मी बुद्धि उत्पन्न हुई ॥२४॥ इसके मन से जो भी वह चाहता है वही अव्यक्त स हो जाता है क्योंकि स्वभाव से वशीकृत त्रैगुण्य और सुरेशता थी ॥२५॥ चतुर्मु ख तो ब्रह्मत्व और कालत्व मे अन्तक हुआ । और सहस्र मूर्धा वाला पुरुष हुआ । इस प्रकार स्वयम्भू की तीन अवस्थाऐ हुई ॥२६॥ ब्रह्मत्व मे सत्त्व और रजोगुण की वृत्ति थी, कालत्व की अवस्था मे रजोगुण और तमोगुण की वृत्ति थी तथा पुरुषत्व की दशा मे स्वयम्भू की केवल सात्त्विका गुण वृत्ति थी ॥२७॥ वही स्वयम्भू ब्रह्मत्व के स्वरूप से लोकों का सृजन करता है और कालत्व की दशा में अवस्थित होकर संहार किया करता है तथा पुरुषत्व के स्वरूप वह उदासीन भाव से स्थित रहता है । ये प्रजापति की तीन अवस्थाऐ होती हैं ॥२८॥

ब्रह्मा कमलगर्भाभ कालो जात्याञ्जनप्रभ ।
पुरुष पुण्डरीकाक्षो रूप तत्परमात्मन· ॥२९
योगेश्वर शरीराणि करोति विकरोति च ।
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्ति स्वलीलया ॥३०
त्रिधा यद्वर्त्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यू ह प्रकीर्तित ॥३१

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चास्ति विषयं प्रति ।
तच्चास्य सतत भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥३२
ऋषि सर्वगतत्वाच्च शरीराद्यास्त्रय प्रभु ।
स्वामित्वमस्य तत्सर्व विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ॥३३
भगवान् भगसद्भावाद्रागो रागस्य शासनात् ।
परश्च तु प्रकृतत्वादवनादोमिति· स्मृतः ॥३४
सर्वज्ञ· सर्वविज्ञानात् सवः सर्व यतस्ततः ।
नराणामयन यस्मात्तेन नारायण· स्मृतः ॥३५

अपनी अवस्था के अनुसार उस परमात्मा के तीन प्रकार के रूप होते हैं। जब वही ब्रह्मा होता है तो उसका रूप कमल के गर्भ की आभा के समान हुआ करता है, काल का स्वरूप होता है उस समय अञ्जन के सदृश रूप होता है और जब पुरुष के स्वरूप मे होता है तब पुण्डरीकाक्ष अर्थात् कमल के तुल्य नेत्रों वाला होता है ॥२६॥ वह योग का स्वामी अपनी लीला मे अनेक आकृति-विविध क्रिया-प्रचुर रूप, नाम तथा वृत्ति वाला है तथा शरीरो को धारण करता है और त्याग किया करता है ॥३०॥ वह लोक मे तीन स्वरूपों से रहता है इसी लिये वह त्रिगुण अर्थात् तीन गुण वाला कहा जाता है। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से वह चतुर्व्यूह कहा गया है ॥३१॥ जो प्राप्त करता है—जो भी ग्रहण करता है और विषय के प्रति जो भी कुछ है वह सदा इसी का भाव होता है इसी कारण से यह आत्मा कहा जाया करता है। ३२॥ सब मे गत होने वाला है इसी कारण से ऋषि है, शरीर से भी आद्य होने से स्वय प्रभु है और सब मे प्रवेश होने से विष्णु कहा जाता है, समस्त वस्तु जात पर इसका स्वामित्व होता है ॥३३॥ भग नाम षट् ऐश्वर्य का होता है उसके सद्भाव होने से यही भगवान् इस नाम से कहा जाता है। राग के शासन करने से 'राग' कहते हैं, प्रकृत होने से पर तथा रक्षण करने से 'ओम्' यह नाम इसका कहा गया है ॥३४॥ समस्त प्रकार का विशेष ज्ञान होने से 'सर्वज्ञ'—यह नाम हुआ। उसके जहाँ-तहाँ सभी कुछ रहता है अतएव 'सर्व' यह नाम है। समस्त नरो का यह अयन अर्थात् आधार स्थान होता है इसी कारण से इस नारायण'—इस नाम से पुकारा गया ॥३५॥

त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्त्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ।
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥३६
आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः जापतिरत्त स्मृतः ॥३७
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥३८
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः ॥३९
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृत. ॥४०
इज्यत्वादुच्यते यज्ञ. कविर्विक्रान्तदर्शनात् ।
क्रमण. क्रमणीय त्वाद्वर्णकस्याभिपालनात् ॥४१
आदित्यसज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भ. स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥४२

अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके इस त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है। तीन तरह की दशा से ही लोकों का सृजन करता है, सहार करता है और वीक्षण किया करता है। वह पहिले चार मुखो वाला हिरण्यगर्भ के स्वरूप से प्रकट हुए ॥३६॥ सबके आदि मे होने से 'आदिदेव' तथा अजन्मा होने के कारण से 'अज' कहा गया है। समस्त प्रजाओ का पालन-पोषण करता है, अतएव 'प्रजापति' कहा गया है ॥३७॥ समस्त देवताओ मे सबसे बडा देव है, इसीलिये इसका 'महादेव' यह नाम पड गया है। समस्त लोकों का आवश्यक रूप से ईश होने के कारण से ही 'ईश्वर' इस नाम से यह पुकारा जाया करता है ॥३८॥ सबसे बृहत् होने से 'ब्रह्मा' तथा भूत होने के कारण से 'भूत' इस नाम से यह कहा जाता है। क्षेत्र के विशेष ज्ञान होने से 'क्षेत्रज्ञ' और क्योंकि यह सब मे गत होकर रहा करता है, इसलिये इसे 'विभु' इस नाम से

कहा गया है ॥३६॥ चूंकि यह पुर में अनुशयन किया करता है इसी कारण से इसे 'पुरुष' कहा गया है। किसी के द्वारा उत्पादित नहीं किया गया है और सबके पहिले होने वाला है, इससे इसका 'स्वयम्भू' यह नाम कहा गया है ॥४०॥ यह इज्य अर्थात् यजन करने के योग्य है इसीलिए इसका नाम यज्ञ' यह होता है। विक्रान्ति के देखने से 'कवि' नाम होता है। क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' तथा अभिपालन करने से वर्णक' ये नाम हुए है ॥४१॥ कपिल, आदित्य सज्ञा वाला अग्रज और अग्नि ये नाम कहे गये हैं। इसका गर्भ हिरण्य हुआ था और हिरण्य का ही गर्भ से जन्म लेने वाला है, इसलिये इस पुराण में उसे 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से कहा जाता है ॥४२॥

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजन्तु य ।
न शक्य परिसङ्ख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥४३
कल्पसङ्ख्यानिवृत्तेस्तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृत ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥४४
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानान्तावच्छेषा परास्तु ये ॥४५
यस्त्वय प्रर्वते कल्पो वाराहन्त निबोधत ।
प्रथम साम्प्रतस्तेषा कल्पोऽय वर्त्तते द्विजा. ॥४६
तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनव स्युश्चतुर्द्दश ।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुन ॥४७
तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्तत ।
पूर्ण युगसहस्र वै परिपाल्या नरेश्वरै ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषा शृणुत विस्तरम् ॥ ८
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
भविष्याणि भविष्यैश्च कल्प कल्पेन चैव हृ ॥४६
अतीतानि च कल्पानि सोदराणि सहान्वयै ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्क कार्या विजानता ॥५०

निवृत्त स्वयम्भू के वर्षों पहिले उत्पन्न होने वाला जो काल है, वह

सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है ॥४३॥ कल्प की सदृश के निवृत्त होने वाले ब्रह्मा को 'परार्ध' कहा जाता है। उसका उतना अन्य शेष-काल होता है, उसके अन्त में प्रतिसृजन किया जाता है ॥४४॥ करोड़ों-करोड़ों सहस्र जो अन्तर्भूत अतीत हुए हैं, अर्थात् अन्दर में रहने वाले गुजर चुके हैं वे उतने शेष पर कहे जाते हैं ॥४५॥ जो यह वर्तमान कल्प है, उसका नाम वाराह समझ लेना चाहिए। हे द्विजवृन्द ! उन अन्य समस्त कल्पों में यह इस समय बरतने वाला प्रथम ही कल्प है ॥४६॥ इस वाराह कल्प में स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं, जो कुछ तो अतीत हो चुके हैं, कुछ वर्तमान हैं और कुछ आगे होंगे ॥४७॥ उन सब के द्वारा चारों ओर यह भूमण्डल सात द्वीपों वाला है, जोकि पूरे एक सहस्र युग पर्यन्त नरवरों के द्वारा परिपालन करने के योग्य है। प्रजाओं के द्वारा और तप से युक्त है, उसका पूर्ण विस्तार मैं बतलाता हूँ, उसका आप लोग अब श्रवण करें ॥४८॥ एक मन्वन्तर के द्वारा सब ही अन्तर्गत होते हैं। जो आगे होंगे, वे आगे होने वालों के द्वारा और कल्प, कल्प के द्वारा अन्तगत होते हैं ॥४९॥ विशेष रूप से जानने वाले के द्वारा अन्वयों के सहित और सोदक जो कल्प व्यतीत हो गये हैं तथा उसी प्रकार से जो अनागत हैं अर्थात् अर्थात् आगे आने वाले हैं, उनसे तर्क करना चाहिए ॥५०॥

॥ सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग ॥

आपो ह्यग्ने समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
सान्तरालैकलीनेऽस्मान्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१
एकार्णवे तदा तस्मिन् न प्राज्ञायत किंचन ।
तदा स भगवान् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्य स सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्य लोकमुदीक्ष्य स ।
इम चोदाहरन्त्यत्र श्लोक नारायण प्रति ॥४
आपो नारा वै तनव इत्यपा नाम शुश्रुम ।
अप्सु शेते च तत्तस्मात्तेन नारायण स्मृत ॥५

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य स. ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्व सर्गकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अग्नि से जल हुए और पृथिवी तल में अग्नि के हो जाने पर तथा अन्तराल के सहित लीन होने पर स्थावर और जङ्गम नष्ट हो गये ॥१॥ उस समय उस एक अर्णव मे कुछ भी नही जाना गया था। तब सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र चरण वाला भगवान् ब्रह्मा तथा सहस्र मूर्धा वाला रुक्म (सुवर्ण) के समान वर्ण से युक्त, इन्द्रियो से अगोचर पुरुष जो 'नारायण' इस नाम से कहा जाता है, वह ब्रह्मा उस समय मे जल मे शयन करता था ॥२॥३॥ उस समय सत्व के उद्रेक होने से वह प्रबुद्ध हुए और उन्होने इस लोक को पूर्णतया शून्य देखा। यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥४॥ आप नार ये तनु हैं, ऐसा जलो का नाम सुनते हैं। क्योंकि जलो मे शयन किया करते हैं, इसी कारण से 'नारायण' यह नाम कहा गया है ॥५॥ एक युगो के सहस्र के तुल्य निशा का समय पर्यन्त उसने वहाँ उसी तरह उपासना की और फिर रात्रि के अन्त मे सर्ग (सृजन) के कारण होने से ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं ॥६॥ उस जल मे ब्रह्मा उस समय वायु होकर विचरण करता था, जैसे कोई खद्योत (जुगनू) वर्षा-काल की रात्रि मे इधर-उधर घूमा करता है ॥७॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
अकरोत् स तनुं त्वन्या कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥९
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः ।
किन्नु रूपं महत् कृत्वा उद्धरेयमहं महीम् ॥१०
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत् ।

अ.गृष्य सर्वभूताना वाङ्मय धर्मसज्ञितम् ॥११
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
नीलमेघप्रतीकाश मेघस्तनितनि स्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माण श्वेत तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्ध सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
पीनोन्नतकटीदेश सुश्लक्ष्ण शुभलक्षणम् ॥१४
रूपमास्थाय विपुल वाराहममित हरि ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५

इसके अनन्तर उस जल मे अन्तर्गत भूमि का ज्ञान प्राप्त करके भी भूमि के उद्धार के प्रति वह अनुमान से असमूढ था अर्थात् अनुमान के ज्ञान से युक्त था ॥८॥ इसके अनन्तर उसने अन्य तनु किया, जैसा कि पहिले कल्प आदि मे बनाया था और फिर उस महान् आत्मा ने मन से उस दिव्य रूप का चिन्तन किया था ॥९॥ उसने उस समय चारो ओर जल मे आप्लुत इस भूमि को देखकर विचार किया कि क्या मैं अपना महान् रूप बनाकर इस भूमि का उद्धार करूँ ? ॥१०॥ जल की क्रीडाओ मे अत्यन्त सुन्दर वाराह के रूप का स्मरण किया, जो कि समस्त प्राणियो के द्वारा धर्षित न करने के योग्य होता है तथा वाङ्मय और धर्म की सज्ञा वाला है ॥११॥ अब उस वाराह के रूप का विस्तृत वर्णन किया जाता है—वह वाराह जोकि भगवान् ने उस समय अपना रूप बनाया था दश योजन विस्तीर्ण अर्थात् लम्बा था, एक सौ योजन ऊँचा था, नीले मेघ के समान कान्ति वाला था और मेघ की घोर गर्जना के सदृश शब्द करने वाला था ॥१२॥ एक बहुत ही विशाल पर्वत के समान आकार वाला, श्वेत था और उसके अत्यन्त तीक्ष्ण तथा बहुत ही उग्र दाढ़े । बिजली एव अग्नि के तुल्य प्रकाश (चमक) वाले उसके नेत्र थे और सूर्य के समान तेज वाला था ॥१३॥ मोटे और चौडे कधो वाला था, सिंह के विक्रम से युक्त गमन के समान गमन करने वाला था । मोटे और ऊँचे [illegible] सुन्दर एव शुभ लक्षण वाले कटि देश से युक्त था ॥१४॥ ऐसे आकार-

प्रकार वाला अत्यन्त विशाल अपना अभिमत वाराह का रूप हरि भगवान् ने धारण कर पृथिवी के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था।१५।

स वेदवाद्य पद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुख. ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ॥१६
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वनो महान् ॥१७
सत्यधर्ममय. श्रीमान् धर्म्मविक्रमसंस्थितः ।
प्रायश्चित्तरतो घोरः पशुज नुर्महाकृति ॥१८
ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्ग. स्यानबीजो महौषधि ।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यसृक् सोमशोणित. ॥१९
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित. ॥२०
दक्षिणाहृदयो योगी महामत्रमयो विभु ।
उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यावर्त्तभूषण ॥२१
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन. ।
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रित. ।
भूत्वा यज्ञवाराहो वै अप स प्राविशत् प्रभु ॥२२

अब उस वाराह के स्वरूप में प्रभु के प्रवेश करने का विस्तृत शोभा समन्वित वर्णन किया जाता है—वह हरि का वाराह स्वरूप वेदवादियों का उपद्रष्टा था, क्रतु ही जिसका वक्षस्थल था और चिति के मुख वाला था। उस वाराह की जिह्वा साक्षात् अग्निदेव थे, दर्भ रोम रूप थे, ब्रह्म जिसका शीर्ष (मस्तक) था, महान् तप वाला था॥१६॥ दिन और रात्रि रूपी नेत्रों को धारण करने वाला, वेद और षट् वेदों के अंगो के आभरण वाला, घृत ही जिसकी नासिका थी और स्रुवा जिसका मुख था तथा सामवेद का गान ही उसकी महान् ध्वनि थी ॥१७॥ सत्य और धर्म से परिपूर्ण श्री से युक्त तथा धर्म रूपी विक्रम में संस्थिति करने वाला था। प्रायश्चित्त में अनुराग रखने

वाला, पशु की जानु वाला, परम घोर और महान् आकृति वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१८॥ ऊर्ध्व गात्र वाला तथा होम के हेतुस्थ वाला, स्थान के बीज वाला, महान् ओषधि स्वरूप था। वह जानने के योग्य अन्तरात्मा वाला, मन्त्र ही जिसके स्फिक् थे तथा धृत स्पृक् वाला और सोम के रक्त वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१९॥ वेद जिस वाराह के स्कन्ध थे, हवि जिसकी गन्ध थी और हव्य तथा कव्य ही उसके वेग थे जिनसे वह युक्त था। प्राग्वंश के काया वाला, द्युति वाला और विविध भाँति की दीक्षाओं से समन्वित स्वरूप वाला वह वाराह था ॥२०॥ दक्षिणा हृदय, योगी, महासत्रमय और विभु तथा उपाकर्म की दृष्टि से सुन्दर एवं प्रवर्ग्य जिसका भूषण था और भूषण वाला वाराह स्वरूप था ॥२१॥ अनेक छन्दों की गति के मार्ग वाला, गुह्य उपनिषदों के आसन वाला छाया रूपिणी अपनी पत्नी की सहायता से युक्त अत्युन्नत मणिशृङ्ग की भाँति होकर उस प्रभु यज्ञ वाराह ने जल में प्रवेश किया था ॥२२॥

उद्भिः सछादितामुर्वी स तामश्नन् प्रजापतिः ।
उपगम्योज्जहाराशु अपस्ताश्च स विन्यसत् ॥२३
सामुद्रीवें समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ ।
रसातलतले मग्ना रसातलतले गताम् ।
प्रभुर्ल्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम् ॥२४
तत स्वस्थानमानीय पृथिवी पृथिवीकरः ।
मुमोच पूर्वं मनसा धारयित्वा धराधर ॥२५
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थित ।
चरितत्वाच्च देवस्य न मही याति विप्लवम् ॥२६
ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगत. स्थापनेच्छया ।
पृथिव्या. प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।
पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्या सोऽचिनोद्गिरीन् ॥२७
प्राक् सर्वे दह्यमानास्तु तदा संवर्त्तकाग्निना ।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥२८

शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनापस्तु संहृताः ।
निषिक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रत्राचलोऽभवत् ।।२६

प्रजापति ने जलों से भली भांति ढकी हुई उस पृथ्वी को खोजते हुए वहाँ जाकर शीघ्र ही उसका उद्धार किया और उन जलों का विन्यास कर दिया ।।२३।। समुद्रों में सामुद्री तथा नदियों में नदी सम्बन्धी जलों का विन्यास किया । इसके अनन्तर रसातल में निमग्न तथा रसातल में गई हुई भूमि को प्रभु ने लोकों के हित के लिये अपनी दंष्ट्रा से (दाढ से) ऊपर लाकर उद्धार किया ।।२४।। इसके अनन्तर पृथ्वी की रचना करने वाले प्रभु उस पृथ्वी को अपने स्थान पर लाकर धरा के धारण करने के पहिले मन से धारण करके फिर त्याग किया था ।।२५।। उस जल के समूह के ऊपर स्थित पृथ्वी एक बडी विशाल नौका की तरह थी, किन्तु वह मही देव के द्वारा लाने के कारण से फिर विप्लव को प्राप्त नहीं होती है ।२६।। इसके उपरान्त देव ने भूमि को ऊपर लाकर जगत के स्थापन करने की इच्छा की और उसी इच्छा से कमल के समान नेत्रो वाले पृथ्वी प्रविभाग करने के लिये मन किया । पृथ्वी को समान करके उस पृथ्वी पर उस देव ने पर्वतों को चुन दिया ।।२७।। पहिले उस समय वे सब सवर्त्ताग्नि से दह्यमान थे और भूमि पर सब ओर से उस अग्नि के द्वारा वे सब पर्वत विशीर्ण हो गये थे ।।२८।। शैत्य से उस एकार्णव में वायु के द्वारा जल संहृत किये गये और जहाँ जहाँ पर वे निषिक्त थे, वहाँ-वहाँ पर अचल हो गये ।।२६।।

स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ।।३०
ततस्तेषु विशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ ।
विश्वकर्म्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ।।३१
ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पुनः सोऽथ प्रकल्पयत् ।
लोकान् प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं समर्ज्ज ह ।।३२
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।

ससर्ज सृष्टिन्तद्रूपा कल्पादिषु यथा पुरा ॥३३
तस्याभिध्यायत सर्ग तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रधानसमकाल वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥३४
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥३५

स्वच्छ और अचल होने से ये अचल कहे गये तथा पर्वों से पर्वत कहे गये हैं। अन्तर्भिशीर्ण होने से इनका नाम गिरि पड गया है। इनकी शिलाओं का चयन किये जाने से इनका नाम शिलोच्चय हुआ है ॥३०॥ इसके अनन्तर उन लोक-उदधि और पर्वतो के विशीर्ण हो जाने पर विश्वकर्मा बार बार कल्पादि मे विभाग करते हैं ॥३१॥ समुद्रो के सहित इस पृथ्वी को, सात द्वीपो को, समस्त पर्वतो को और भूमण्डल से आदि चार लोको को उसने पुनः प्रकल्पित किया था। इस तरह लोकों का प्रकल्पन करके फिर प्रजा के सर्ग को रचना की ॥३२॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन की इच्छा करने वाला होकर जिस प्रकार पहिले कल्पादि मे थी, उसी रूप वाली सृष्टि की रचना की थी ॥३३॥ सर्ग की करने की भावना से अभिध्यान् करते हुए उनके समक्ष मे उस समय बुद्धिपूर्वक एक ही समय मे प्रधान तथा तमोमय प्रादुर्भूत हुआ ॥३४॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध-संज्ञा वाला तथा महात्मा से पाँच पर्व वाली यह अविद्या प्रादुर्भूत हुई ॥३५॥

पञ्चधा चाश्रित सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
सर्वतस्तमसा चैव दीप कुम्भवदावृत ।
बहिरन्त. प्रकाशश्च शुद्धो नि सज्ञ एव च ॥३६
यस्मात्तो सवृता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिता ॥३७
मुख्यसर्गे तथाभूत ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो न्यासोऽभ्यमन्यत ॥३८
तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्य्यक् स्रोतोऽभ्यवर्त्तत ।
यस्मात्तिर्यग् व्यवर्त्तत तिर्य्यक्स्रोतस्ततः स्मृतम् ॥३९

तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुला स्मृता ।
उत्पथग्राहिणश्चापि ध्यानाद्ध्यानमानिन ॥४०
तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अहङ्कृता अहमना अष्टाविंशद्विधात्मका ॥४१
एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषा शक्तिविधा स्मृता ॥४२

ध्यान करते हुए अभिमानी का वह सर्ग पाँच प्रकार से आश्रित हुआ। वह सर्ग कुम्भ से दीप की भाँति सब ओर से तम से आवृत था। बाहिर और अन्दर शुद्ध प्रकाश था, जिसकी कोई सज्ञा नही थी ॥३६॥ जिससे उनके द्वारा बुद्धि सवृत थी और मुख्य कारण सवृत थे, उनसे वे सवृत आत्मा वाले नग मुख्य कहे गये हैं ॥३७॥ मुख्य सर्ग मे ब्रह्माजी ने उम प्रकार के असाधक को देखकर अपने मन मे बहुत ही अप्रसन्नता की और इसके अनन्तर उसने फिर ध्यान करने को मन मे माना ॥३८॥ इस प्रकार सर्ग करने के लिये उसके ध्यान करते हुए वहाँ पर तिर्यक् स्रोत हुआ। क्योंकि वह तिर्यक् व्यवहार करता है इसीलिये वह 'तिर्यक् स्रोत' इस नाम से कहा गया है ॥३६॥ उन सब मे तमोगुण की अधिकता होने से वे सब अधिक अज्ञान वाले कहे गये हैं। ध्यान के मानी के ध्यान से वे सभी उत्पथ के ग्रहण करने वाले भी थे ॥४०॥ तिर्यक् स्रोत वाले ईश्वर ने इस द्वितीय विश्व को देखा, जोकि कम म और मन मे अह भाव वाला तथा अट्ठाईस प्रकार के स्वरूप वाला है ॥४१॥ एकादश इन्द्रियों के प्रकार हैं तथा नौ उदय के प्रकार हैं, आठ तारक आदि के तथा उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं ॥४२॥

अत प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहि पुनः ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्त्तेत तिर्य्यक्स्रोता स उच्यते ॥४३
तिर्यक्स्रोताश्च दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अभिप्रायमथोद्भूत दृष्ट्वा सर्वन्तथाविधम् ।
तस्याभिध्यायतो नित्य सात्त्विक समवर्त्तत ॥४४
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्द्ध्वव्यवस्थित ।

यस्माद्व्यवर्त्ततोर्द्धन्तु ऊर्द्धस्रोतास्ततः स्मृतः ॥४५
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च सवृता ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥४६
तेन वा तादयो ज्ञेया सृष्टात्मानो व्यवस्थिता ।
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ॥४७
ऊर्द्धस्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्य सोऽभ्यमन्यत ।
ससर्ज्ज सर्गमन्य स साधकं प्रभुरीश्वरः ॥४८
अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतः सुसाधकम् ।
यस्मादर्वाक्व्यवर्त्तत ततोऽर्वाक्स्रोत उच्यते ॥४९
ते च प्रकाशबहुलास्तम सन्वरजोधिका ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥५०

इसलिए वे सब प्रकाश हैं और फिर बाहिर वे सब आवृत हैं। जिस कारण से उनकी तिर्यक् प्रवृत्ति होती है, इसीलिये यह सर्ग तिर्यक् स्रोत वाला कहा जाता है ॥४३। ईश्वर ने जोकि तिर्यक् स्रोत वाला है, इस द्वितीय विश्व को देखा और उस प्रकार वाले समस्त उद्भूत अभिप्राय को देखा। इस तरह नित्य ही सर्ग-रचना के ध्यान करने वाले के समक्ष सात्विक हुआ ॥४४॥ यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला था और ऊर्ध्व की ओर ही व्यवस्थित भी था। यह ऊर्ध्व की ओर प्रवृत्त था, इसी कारण से इसका नाम ऊर्ध्व स्रोता कहा गया है ॥४५॥ वे सब सुख और प्रीति की प्रचुरता वाले थे, बाहिर और अन्दर संवृत थे, बाहिर और अन्तर्भाग में प्रकाशमय थे। ये सब ऊर्ध्व स्रोतोद्भव कहे गये हैं ॥४६॥ इनसे तात आदि जानने चाहिए, जोकि सृष्ट स्वरूप वाले व्यवस्थित हैं। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला है अतः यह इसी नाम से कहा भी गया है ॥४७॥ इन ऊर्ध्व स्रोतों में देवों के सृष्ट होने पर वह प्रभु उस समय बहुत ही प्रीति वाले हुए अर्थात् ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उन्होंने अन्य सर्ग करने का मन में विचार किया और

ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्ग की सृष्टि की ॥४८॥ इसके अनन्तर अभिध्यान करते हुए जब सत्य का अभिध्यायी वे हुए तब उसका अव्यक्त से सुसाधक अर्वाक् स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ । वह अर्वाक् की ओर बरताव करता है, इसी कारण से वह अर्वाक् स्रोत इस नाम से कहा जाता है ॥४६॥ और बहुल प्रकाश वाले वे होते हैं, जिनमें तम, सत्व और रजोगुण अधिक होता है । इससे वे पुनः-पुनः करने वाले तथा अधिक दुःख वाले होते हैं ॥५०॥

प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ॥५१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्म्मिणः ।
इत्येष तेजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्रोताः प्रकीर्तितः ॥५२
पञ्चमोऽनुग्रह सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थित ।
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च ।
विवृतं वर्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति तत्त्वतः ॥५३
भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ।
विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थित ॥५४
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु स ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥५५
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥५६
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृता ।
तिर्य्यक्स्रोताश्च यः सर्गस्तिर्य्यग्योनि स पञ्चमः ॥५७

बाहिर और अन्दर प्रकाशयुक्त हैं । वे मनुष्य और साधक हैं । तारकाद्य लक्षणों से वे आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ॥५१॥ सिद्धात्मा वे मनुष्य, जो गन्धर्वों के सहधर्मी होते हैं । यह तेजस सर्ग होता है और अर्वाक् स्रोता कहा गया है ॥५२॥ पाँचवाँ अनुग्रह सर्ग होता है और वह चार प्रकार से व्यवस्थित होता है । विपर्य्यय से, शक्ति से, तुष्टि से और चतुर्थ प्रकार में सिद्धि से व्यवस्थित है । वे विवृत और वर्तमान अर्थ को तत्त्वतः अर्थात् तात्त्विक रूप में

जानते हैं ॥५३॥ भूतादि का जो सर्ग होता है, वह छठवाँ सर्ग कहा जाता है। भूतादि विपर्य्यय से तथा अशक्ति से व्यवस्थित होता है ॥५४॥ प्रथम सर्ग महत् का होता है, जो वह महत् का ही सर्ग जानना चाहिए। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग होता है, वह भूत सर्ग कहा जाया करता है ॥५५॥ तृतीय सर्ग वैकारिक सर्ग होता है, जो इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाला ऐन्द्रिक ही कहा गया है। इतना यह प्राकृत सर्ग है, जो बुद्धिपूर्वक हुआ है ॥५६॥ चतुर्थ सर्ग मुख्य सर्ग होता है। स्थावर मुख्य कहे जाते हैं। तिर्यक् स्रोता जो सर्ग होता है, वह पाँचवाँ तिर्यग्योनि होता है ॥५७॥

तथोर्द्ध्वस्रोतसा षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः।
तथार्वाक्स्रोतसा सर्ग सप्तम स तु मानुषः ॥५८
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसस्तु स.।
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥५९
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवम स्मृतः।
प्राकृतास्तु त्रयः सर्गा कृतास्ते बुद्धिपूर्वकाः ॥६०
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तु ते।
विस्तरानुग्रह सर्ग कीर्त्यमान निबोधत ॥६१
चतुर्द्धावस्थित सोऽथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्धया तथैव च ॥६२
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तिता।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नश ॥६३
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृता.।
सर्गाः परस्परस्याथ प्रकारा बहवः स्मृताः ॥६४

इसी प्रकार से ऊर्ध्व स्रोत वालों का जो छठवाँ सर्ग होता है, वह 'देव-सर्ग' कहा गया है। इस प्रकार से अर्वाक् स्रोत वालों का सातवाँ सर्ग होता है और वह मनुष्य सर्ग कहा गया है ॥५७॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस है। ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन सर्ग प्राकृत सर्ग कहे हैं ॥५९॥ प्राकृत और वैकृत कौमार नवम कहा गया है। प्राकृत सर्ग तो

तीन हैं, जोकि वे बुद्धिपूर्वक किये गये हैं ॥६०॥ ब्रह्मा के वे छै सर्ग बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होने है। विस्तरानुग्रह सर्ग अब कहा जाता है,उसे जान लो ॥६१॥ यह सर्ग समस्त प्राणियो मे पूर्वरूप से चार प्रकार से व्यवस्थित हुआ है। विपर्यय, शक्ति, तुष्टि और उसी भांति सिद्धि से व्यवस्था की गई है ॥६२॥ स्थावरो मे तो विपर्यास होता है। तिर्यग्योनियो मे शक्तिता होती है। मनुष्य सिद्धात्मा होते हैं, अर्थात् मनुष्यो मे सिद्धि होती है और देवो मे तुष्टि होती है ॥६३॥ ये सब प्राकृत हैं और वैकृत नौ कहे गये हैं। ये परस्पर के सर्ग हैं और इनके बहुत से प्रकार बताये गये हैं ॥६४॥

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनञ्च सनक विद्वांस च सनातनम् ॥६५
विज्ञानेन निवृत्तास्ते वैवर्तेन महौजस. ।
संबुद्धाश्चैव नानात्वादपविद्धाश्रयोऽपि ते ।
असृष्ट्वैव प्रजासर्ग प्रतिसर्ग गताः पुन. ॥६६
तदा तेषु व्यतीतेषु तदान्यान् साधकांश्च तान् ।
मानसानसृजद्ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः ।
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत ॥६७
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
स्वर्गं दिवः समुद्राश्च नदान् शैलान् वनस्पतीन् ॥६८
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्ताः सन्धिरात्र्यहा. ॥६९
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थानाभिमानिन सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ॥७०
वक्त्रायस्य ब्राह्मणाः सप्रसूताः तद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे. ।
वैश्याश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्याश्च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रत संप्रसूता. ।७१
नारायण: परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ॥७२
एष व कथित. पादः समासान्न तु विस्तरात् ।
अनेनाद्येन पादेन पुराणं सम्प्रकीर्तितम् ॥७३

सबसे आगे अर्थात् पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही समान मानसों का सृजन किया अर्थात् मन से समुत्पन्न होने वालों की रचना की। उन मानसों मे सनन्दन, सनक और विद्वान् सनातन हैं। वे महान् ओज वाले वैवर्त्त विशेष ज्ञान होने से निवृत्त हो गये अर्थात् निवृत्त मार्ग के अनुगामी बन गये। वे सबुद्ध होते हुए तीनो ही इस नानात्व स्वरूप सृजन से अपविद्ध हो गये। प्रजा की सृष्टि को न करके ही वे फिर प्रतिसर्ग को चले गये ॥६६॥ उस समय इन सनकादि के चले जाने पर ब्रह्माजी ने तब फिर स्थानाभिमानी अन्य मानस साधकों का सृजन किया। अब भूत से लेकर सम्प्लवावस्था वालों के नामो को जान लो ॥६७॥ जल, अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, दिशा, स्वर्ग, दिव, समुद्र, नद, शैल, वनस्पति, औषधियो की आत्मा तथा बीरुध और वृक्षो की आत्मा, लव, काष्ठ, कला मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिवस, अर्ध मास मास, अयन, शब्द, युग ये सब स्थानाभिमानी हैं,अत वे स्थान के नाम वाले कहे गये हैं ॥६८-६९-७०॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, उसके वक्ष स्थल से क्षत्रिय उद्भूत हुए ऊरुओ से वैश्यो की उत्पत्ति हुई और पैरो से शूद्र वर्ण वाले उत्पन्न हुए। इस तरह ये सभी वर्ण ब्रह्माजी के शरीर के विभिन्न भागों से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७१॥ नारायण अव्यक्त से परे है और अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। उस अण्ड से ब्रह्माजी ने जन्म ग्रहण किया और फिर उन ब्रह्माजी ने स्वयं इन समस्त लोकों की रचना की है ॥७२॥ यह पाद सक्षेप से कह दिया गया है। इसमे विस्तार नही किया है। इस आद्य पाद पुराण का भली भाँति कीर्तन किया गया है ॥७३॥

॥ वर्तमान कल्प में मानुषी सृष्टि ॥

इत्येष प्रथम पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्तितः ।
श्रुत्वा तु सहृष्टमना काश्यपेय सनातन ॥१
साम्बोध्य सूत वचसा प्रपच्छायोत्तरा कथाम् ।
अत.प्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसन्धि प्रचक्ष्व न ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयो. ।
मन्वन्तरयोरन्तरं यच्च प्रतिसन्धिर्यतस्तयो ।

एतद्वेदितुमिच्छाम अत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥३
अत वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसन्धिश्च यस्तयोः ।
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयोः ॥४
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रताः ।
यश्चायं वर्त्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ॥५
अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥६
प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसंधिं च तत्र वै ।
अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनाल्लोकात् पुनः पुनः ॥७

इस प्रकार यह प्रथम पाद प्रक्रिया के लिये ही कहा गया है। इसका श्रवण करके सनातन काश्यपेय बहुत ही मन में प्रसन्न हुए ॥१॥ इसके अनन्तर वाणी से सूतजी का सम्बोधन करके उन्होंने इससे आगे की कथा पूछी—उन्होंने कहा—हे बलाहा ! इससे आगे आप हमको प्रति सन्धि का वर्णन कर समझावें ॥२॥ जो कल्प व्यतीत हो गया और इस समय वर्त्तमान है इन दोनों कल्पों की जो प्रति सन्धि है उसे हम जानना चाहते हैं क्योंकि आप अत्यन्त कुशल हैं आप सभी कुछ जानते हैं। यह हमें सुनाइये ॥ ३ ॥ लोमहर्षणजी ने कहा—मैं अब आपको समतीत कल्प और वर्त्तमान कल्प इन दोनों की जो प्रति सन्धि होती है उसे बतलाता हूँ ॥४॥ हे सुव्रत वालो ! जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह कल्प होता है वही बतलाता हूँ। वर्त्तमान समय के कल्प का शुभ नाम वाराह है ॥५॥ इस कल्प से पहिले जो सनातन कल्प व्यतीत हुआ है उस कल्प की और इस कल्प की मध्यावस्था को जान लो ॥६॥ पूर्व कल्प के प्रत्याहृत हो जाने पर वहाँ प्रति सन्धि होती है और बार बार जनलोक से अन्य कल्प हुआ प्रवृत्त होता है ॥७॥

व्युच्छिन्नात् प्रतिसन्धेस्तु कल्पात् कल्पः परस्परम् ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः कल्पान्ते सर्वशस्तदा ।
तस्मात् कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसन्धिर्निगद्यते ॥८
मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च सन्धयः ।

परस्परा प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगै सह ॥९
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पा समासत ।
तेषा परार्द्धकल्पाना पूर्वो ह्यस्मात्तु य पर ।
आसीत् कल्पो व्यतीतो वै परार्द्धेन परस्तु स ॥१०
अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धाद्गुणीकृता ।
प्रथम साम्प्रतस्तेषा कल्पोऽयं वर्तते द्विजा ॥११
यस्मिन् पूर्वं परार्द्धे तु द्वितीये पर उच्यते ।
एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्तत स्मृत ॥१२
अस्मात् कल्पात्तु य पूर्व कल्पोऽतीत सनातन ।
चतुर्युगसहस्रान्ते सहो मन्वन्तरै पुरा ॥१३
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते ।
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥१४

प्रति सन्धि के व्युच्छिन्न होने से परस्पर में कल्प से कल्प के अन्त में समस्त क्रियाएँ उस समय सभी ओर से व्युच्छिन्न हो जाया करती हैं। इसी से कल्प से कल्प की प्रतिसन्धि कही जाती है ॥८॥ कल्प की भाँति ही मन्वन्तर और युगों के नाम वालों की सन्धियाँ भी उच्छिन्न हुआ करती हैं और वे सब परस्पर में मन्वन्तर और युगों के साथ प्रवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥ जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे गये हैं अब उन कल्पों के परार्द्ध स्वरूपों में इनसे जो पहिला था और जो पर था इनमें परार्द्ध से जो कल्प व्यतीत हो गया वह पर था ॥१०॥ हे द्विजो! अपरार्द्ध से गुणी कृत अन्य जो कल्प भविष्य में होंगे उनमें इस समय रहने वाला यह प्रथम कल्प है जो अब वर्तमान में चल रहा है ॥११॥ जिस द्वितीय परार्द्ध में पूर्व पर कहा जाता है इतना ही स्थिति का काल प्रत्याहार कहा गया है ॥१२॥ इस वर्तमान कल्प से जो पहिला सनातन कल्प व्यतीत हो गया है वह पहिले मन्वन्तरों के साथ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों के एक सहस्र बार हो जाने पर अन्त में समाप्त हुआ है ॥१३॥ उस समय कल्प के क्षीण हो जाने पर दाह का काल उपस्थित हुआ और उसमें अर्थात् कल्प में उस समय देवता लोग जो थे वे विमानों में स्थित रहते थे ॥१४॥

नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये ।
अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥१५
मन्वन्तरे तथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्याद्विनवतिस्तथा ।
अष्टाधिका सप्तशता सहस्राणा स्मृता पुरा ॥१६
वैमानिकाना देवाना कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।
एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृता ॥१७
अथ मन्वन्तरेष्वासश्चतुर्दशसु वै दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥१८
तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन् काले तु ये सुरा ।
मन्वन्तरेषु ये ह्यासन् देवलोके दिवौकसः ॥१९
ते तैं सयोजकैः सार्द्धं प्राप्ते सङ्कलने तथा ।
तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वं प्राप्ते ह्याभूतसप्लवे ॥२०
ततस्तेऽव श्यमावित्वाद्बुद्धा पर्यायमात्मनः
त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावत ।
महर्लोकाय सविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२

और जो नक्षत्र, ग्रह और तारा थे तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह थे वे सब सुकृतात्माओं की अठ्ठाईस करोड ही सख्या थी ॥ १५ ॥ इसी प्रकार एक मन्वन्तर मे तथा चौदह मन्वन्तरो में तीन सौ करोड थे और पहिले अठ्ठानवें करोड सात सौ सहस्र कहे गये हैं ॥ १६ ॥ कल्प के व्यतीत हो जाने पर विमानो में सस्थित देवताओ मे जो हुये वे एक एक कल्प मे विमानो में बैठने वाले देवता कहे गये हैं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिव मे चौदह मन्वन्तरों मे इसी भाँति देवता, पितर, मुनि लोग और मनुगण थे ॥ १८ ॥ और उनके अनुगामी जो मनु पुत्र थे और इसी प्रकार वर्णों तथा आश्रमो मे रहने वालो के द्वारा वन्दित हुये जो उस समय मे सुरगण थे और मन्वन्तरो में जो दिव मे रहने

वाले देवलोक मे थे वे सब सङ्कुलन के प्राप्त होने पर उन सयोजकों के साथ भूत सम्प्लव के प्राप्त होने के समय मे तुल्यनिष्ठा वाले थे ॥ १९–२० ॥ इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य के निवासी देवो ने अवश्यम्भावी होने से अपनी पारी को जानकर उस उपप्लव के प्राप्त होने पर उत्सुकता और विषाद न रखते हुये भाव से स्थानों का त्याग करके फिर महर्लोक के लिये सविग्न होते हुये उन्होंने अपनी बुद्धि धारण की ॥ २१—२२ ॥

ते युक्ता उपपद्यन्ते महसिस्थं शरीरकं ।
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ॥२३
तं. कल्प वासिभि सार्द्धं महानासादितस्तु यै ।
ब्राह्मणे क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनै ॥२४
मत्वा तुते महर्ल्लोकं देवसङ्घाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दध्रिरे मतिम् ॥२५
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ।
तं कल्पवासिभि सार्द्धं महानासादितस्तु यै ॥२६
दशकृत्व इवावृत्या तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तप ।
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुन ।
एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिन ॥२७
एव देवयुगानान्तु सहस्राणि परस्परात् ।
गतानि ब्रह्मलोके वै अपरावर्तिनी गतिम् ॥२८

वे सब अधिक विशुद्धि वाले और मानसी सिद्धि मे आस्थित होते हुए महर्लोक मे स्थित शरीरो से युक्त होकर उपपन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और उनके भक्त दूसरे लोग हैं उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने महान् को प्राप्त कर लिया था ॥ २४ ॥ वे चौदह देव सङ्घ महर्लोक को मानकर फिर उन्होने जन-लोक के लिये उद्वेग के साथ अपना विचार किया ॥२५॥ विशुद्धि की प्रचुरता वाले वे सब मानसी सिद्धि मे आस्थित हो गये और उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने महान् को प्राप्त किया था ॥ २६ ॥ आवृत्ति से दस बार की तरह उससे स्वर्लोक और तपलोक को जाते हैं वहाँ दस कल्प पर्यंत

रहकर फिर वे सत्य लोक को जाते हैं। इसी क्रम के योग्य से कल्प निवासी जाते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार से देव युगों के सहस्र अर्थात् सहस्रों देवयुग परस्पर से व्यतीत हुये फिर ब्रह्मलोक की अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥

आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।
भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ॥२९
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ताः प्रसङ्गमात् ।
आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३०
अवश्यम्भाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।
नानात्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविनः ॥३१
स्वल्पतो बुद्धिपूर्वं यथा भवति जाग्रतः ।
तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥३२
प्रत्याहारे तु भेदाना येषां भिन्नाभिसूष्मणाम् ।
तैः सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ॥३३
नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३४
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरञ्जनाः ।
प्रकृतौ कारणातीताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३५

वहाँ वे आधिपत्य के बिना वैभव में उन्हीं के समान रूप और विषय में ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं ॥ २९ ॥ वहाँ पर सुन्दर सङ्ग होने से बड़ी ही प्रीति से युक्त होकर वे रहते हैं। ब्रह्मा के आनन्द को प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त किये जाते हैं ॥ ३० ॥ वे स्वयं अवश्यम्भावी प्राकृत अर्थ से ही नानात्व से अभिसम्बद्ध होते हुये उस समय उस काल में होने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ *जिस प्रकार जाग्रत स्वल्प से बुद्धिपूर्वक होता है उस काल में होने* वाला उनका वैसा ही ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ भिन्न अभिसूपा जिनके भेदों के प्रत्याहार में ही उनके साथ कार्य और करण प्रतिसृष्टि किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ अपने अधिकारों के विनाश हो जाने वाले, अपने धर्म से स्थित रहने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले उनके नानात्व के दर्शन से वे तुल्य

लक्षण वाले, निरञ्जन, शुद्ध आत्मा वाले सिद्ध प्रकृति में कारण से अतीत रहने वाले अपनी आत्मा मे ही व्यवस्थित होत हैं ॥ ३४—३५ ॥

प्रख्यापयित्वा ह्यात्मान प्रकृतिस्तेपु सर्वश ।
पुरुपाव्यवहृतत्वेन प्रतीता न प्रवर्त्तते ॥३६
प्रवर्तिते पुन सर्गे तेपा वा कारण पुन ।
सयोगे प्राकृते तेपा युक्तान तत्त्वदर्शिनाम् ॥३७
अनापवर्गिणा तेपामपुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभाव पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्चिपामिव ॥३८
ततस्तेपु गतेपूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु ।
तैं सार्द्धं ये महर्ल्लोकात्तदा नासादिता जना ।
तच्छिष्टाश्चेह तिष्ठन्ति कल्पाद्देहमुपासते ॥३९
गन्धर्वाद्या पिशाचान्ता मानुपा ब्राह्मणादय. ।
पशव पक्षिणश्चैव स्थावरा ससरीसृपा ॥४०
तिष्ठत्सु तेपु तत्काल पृथिवीतलवासिपु ।
सहस्र यत्तु रश्मीना सूर्यस्येह विभासते ।
ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायते रवि ॥४१
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रीन् लोकान् प्रदहन्त्युत ।
जङ्गम स्थावर चैव नदी सर्वाश्च पर्वतान् ।
पूर्वं शुष्का ह्यावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्च प्रधूपिता ॥४२

उनमें सब ओर से प्रकृति अपने आपको प्रख्यापित करके पुरुप के साथ अव्यवहृत होने से प्रतीत होकर प्रवृत्त नही होती है ॥ ३६ ॥ उनका फिर सर्ग प्रवर्त्तित होने पर अथवा तत्वदर्शी युक्त उनके प्राकृत सयोग मे पुन कारण होता है ॥ ३७ ॥ यहाँ पर पुन मार्गगामी न होने वाले उन अपवर्ग वालो का पुनर्जन्म में शान्त होने वाली अग्नि की ज्वालाओ के समान अभाव होता है अर्थात् अपवर्ग वालों की पुन उत्पत्ति नही होती है ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर अच्छी एव महान् आत्मा वाले उनके त्रैलोक्य से ऊपर जाने पर उनके साथ जो महर्लोक में उस समय यहाँ जन आसादित नही हुए हैं। उनसे शेष से रहते

गले यहाँ रहते हैं और कल्प से देह को धारण किया करते हैं । ३६ ।। गन्धर्वों से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त मानुष और ब्राह्मण प्रभृति पशु पक्षीगण सरीसृपों के सहित स्थावर उस समय उन पृथिवी तल मे निवास करने वालों के रहने पर यहाँ पर सूर्य की एक सहस्र किरणों की विभासमानता होती है। वे फिर सात रश्मियाँ होकर उनमे से एक एक रवि हो जाता है ।। ४०—४१ ।। क्रम से वे उद्दीप्यमान होकर इन तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं जिनमे चर प्राणी अर्थात् जङ्गम सृष्टि स्थावर अर्थात् अचर सृष्टि—नदी और पर्वत ये सभी प्रदग्ध हो जाते हैं। पहिले वे वृष्टि के न होने शुष्क हो जाते हैं और फिर उन तीव्रतम सूर्यों से प्रधूपित अर्थात् प्रनष्ट किये जाते हैं ।। ४२ ।।

तदा ते विविशु सर्वे निर्दग्धा. सूर्यरश्मिभि ।
जङ्गमा स्थावरा सर्वे धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।।४३
दग्धदेहास्ततस्ते वै गता पापयुगात्यये ।
योन्या तया ह्यनिर्मुक्ता शुभपापानुगन्धया ।।४४
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपा जने जना ।
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ।।४५
उषित्वा रजनी तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
पुन सर्गे भवन्तीह ब्रह्मणो मानसीप्रजा ।।४६
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषु सूर्यस्तु रश्मिभि ।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विशीर्णेष्वालयेषु च ।।४७
समुद्राश्चैव मेघाश्च आप सर्वाश्च पार्थिवा ।
ब्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिता ।।४८
आगतागतिकं तद्वै यदा तु सलिलं बहु ।
सछाद्येमो स्थिता भूमिमर्णवाख्या तदा च सा ।।४९

उस समय वे सब जङ्गम और स्थावर चाहे वे धर्मात्मा हों या अधर्म-स्वरूप वाले हों, विशेष रूप मे सूर्य की किरणों से जले हुये होते हुए विवश हो जाया करते हैं ।। ४३ ।। दग्ध देहों वाले वे वहाँ से फिर पाप-युग के अत्यय

मे चले जाते हैं और शुभ तथा पाप के अनुबन्ध वाली उस योनि से निर्मुक्त नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे मनुष्य जन लोक मे तुल्य रूप वाले होते हैं। उस समय वे सब प्रचुर विशुद्धि वाले होते हुये मानसी सिद्धि मे आस्थित हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥ वहाँ पर अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की एक रात निवास कर फिर यहाँ सर्ग मे ब्रह्मा की मानसी अर्थात् मन मे उद्भव वाली प्रजा होते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य-वासियो के इस जन-लोक मे प्रवृत्त होने पर और सात प्रखरतर सूर्यों के द्वारा उन लोकों के दग्ध हो जाने पर उन परम विशीर्ण घरो मे वृष्टि से समस्त भूमण्डल के प्लावित हो जाने पर सब समुद्र मेघ और पार्थिव जल सदाश्रित होते हुये सलिल नाम वाले एकार्णवता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४७-४८ ॥ आया हुआ और बिना गति वाला वह सलिल जब अत्यधिक मात्रा मे हो जाता है तब वह इस संस्थित भूमि को ढककर वह अर्णव नाम वाली हो जाती है ॥ ४९ ॥

आभाति यस्मात्ताभान्ति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।
सर्वत समनुप्लाव्य तासाश्चाम्भो विभाव्यते ॥५०
तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वीं समन्तत ।
धातुस्तनोतिविस्तारे तेनाम्भस्तनव स्मृता ॥५१
अरमित्येष शीघ्रन्तु निपात कविभि स्मृत ।
एकार्णवे भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नरा ॥५२
तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
राजन्या वर्तमानायान्तावत्तत् सलिलात्मना ॥५३
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्तत ॥५४
येनैवाधिष्ठित हीद ब्रह्मा स पुरुष प्रभु ।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तुमिच्छति ॥५५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥५६

जिसके कारण से व्याप्त दीप्तियो से जो भासमान होते हैं वे भी उस

समय भासित नहीं होते हैं । सब ओर से भली भाँति प्लावन कर अर्थात् निमग्न करके उस समय केवल उनके जल ही विभावित होता था ॥५०॥ क्योंकि यह जल पूर्णतया विस्तार वाला होता है और इस समस्त पृथ्वी को सब ओर से घेर लेता है । विधाता के विस्तार के फैलाने पर वे इससे जल के तनु कहे गये हैं ॥५१॥ नर – यह कवियों के द्वारा शीघ्र निपात कहा गया है । एकार्णव में जल ही होते हैं और इसमें वे नर शीघ्र नहीं होते हैं । ५२। ब्रह्माजी के दिन के सचित होने पर उस एक सहस्र युग के अन्त में तब तक केवल जल के स्वरूप से ही इस पृथ्वी के वर्त्तमान रहने पर इसके पश्चात् उस जल के पृथ्वी तल में रहने वाली अग्नि में नष्ट हो जाने पर चारों ओर निरालोक अर्थात् प्रकाश से हीन अन्धकार छाया हुआ था और वात प्रशान्त हो गया था ऐसे समय में जिसके द्वारा यह अधिष्ठित था वह ब्रह्मा पर पुरुष प्रभु था और उसने फिर इस लोक के विभाग करने की इच्छा की अथवा इच्छा करता है ॥५३-५४-५५॥ उस एक अर्णव अर्थात् समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर उस समय वह ब्रह्मा सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाला हो जाता है ॥५६॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥५७
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥५८
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः ।
आपूर्य नाभिं तत्रास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥५९
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥६०
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ॥६१
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजाः ।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुनः ॥६२

स वै नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये समवर्त्तत ॥६३

सहस्र शीर्षों वाला हेम के तुल्य देदीप्यमान वर्ण वाला, समस्त इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् परे वह पुरुष ब्रह्मा नारायण—इस नाम वाला उस समय में जल में शयन करता था ॥५७॥ सत्त्व की अधिकता के होने से वह प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत हुआ और उसने चेतना युक्त होकर इस लोक को शून्य देखा। यहाँ पर उस नारायण के प्रति इस निम्न श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥५८॥ आप अर्थात् जल नार-इस नाम वाले सत् हैं यही जलों के नाम को सुनते हैं। वहाँ पर नाभि को आपूरित कर वह होता है इसलिये 'नारायण' यह कहा गया है ॥५९॥ सहस्र शीर्ष (मस्तक) वाला, अच्छे मन वाला, सहस्र चरणों वाला, सहस्र नेत्रों वाला, सहस्र मुख वाला, सहस्र को भोग करने वाला, सहस्र बाहुओं वाला प्रथम प्रजापति है जो त्रयीपथ में पुरुष कहा जाता है ॥६०॥ सूर्य के तुल्य वर्ण वाला, भुवन की रक्षा करने वाला, एक ही प्रथम तुराषाट्, हिरण्यगर्भ महात्मा और पुरुष है जो उस तम से पर पढ़ा जाता है ॥६१॥ वही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाओं का सृजन करता था और जब कल्प का अन्त होता तो उस समय में काल होकर फिर उस सृष्टि का ग्रसन कर लेता था ॥६२॥ वही नारायण नाम वाला सत्त्वगुण से उद्रिक्त होता हुआ समुद्र में शयन करता है तथा वह इस प्रकार अपने स्वरूप को तीन रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में बरताव किया करता है ॥६३॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षन्ते च त्रिभिस्तु तान् ।
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥६४
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ॥६५
चतुर्विधाः प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मया रात्र्या महार्णवे ।
पश्यन्ति [illegible] महर्लोकात् सुप्तं कालं महर्षयः ॥६६
भृग्वादयो यथा मम कल्पे ह्यस्मिन् महर्षयः ।
गतो विवर्त्तमानैस्तैर्महान् पारगत परः ॥६७

गत्यर्थाद् ऋषयो धातोर्नामनिर्वृत्तिरादिन ।
तस्मादृषिपरत्वेन महास्तस्मान्महर्षयः ॥६८
महर्लोकस्थितैर्दृष्ट कालः सुप्तस्तदा च तै ।
सत्याद्या सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षय. ॥६९
एव ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रश ।
दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्त काल महर्षय ॥७०

इन तीन रूपों से उन लोकों का सृजन करता है, ग्रसन करता है और इनका वीक्षण करता है। जब एकार्णव में स्थावर और जङ्गम लोक के नष्ट हो जाने पर इस लोक ग्रसन का कार्य भी नहीं किया करता है किन्तु प्रत्येक कार्य के स्वरूप भिन्न हैं ॥६४॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों की चौकड़ी के एक सहस्र संख्या समाप्त हो जाती हैं तब उसके अन्त में सब ओर जल से आवृत होने पर प्रकाश रहित अर्थात् अन्धकारमय सागर में नारायण नाम वाले ब्रह्मा शयन करते हुए चारों प्रकार की प्रजा का ग्रास करके ब्राह्मी रात्रि में महार्णव में स्थित रहते हैं और महर्षिगण महर्लोक से उस सुप्तकाल को देखते हैं ॥६५-६६॥ इस कल्प में भृगु आदि सात महर्षि कहे गए हैं। उनके द्वारा विशेष रूप से वहाँ उपस्थित होकर वह पर महान् चारों ओर से परिगत होगया ॥६७॥ गति के अर्थ वाली धातु से 'ऋषि'—इस नाम की निर्वृत्ति होती है। उससे महान् यह भी ऋषि परत्व है अतएव महर्षय, ऐसा कहा गया है ॥६८॥ महर्लोक में स्थित उनके द्वारा उस समय काल सुप्त होता हुआ देखा गया। अतीत कल्प में सत्य आद्य ये सात महर्षि थे ॥६९॥ इस प्रकार से सहस्रों ही ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली रात्रियाँ व्यतीत हो जाने पर उसी प्रकार से उस समय अन्य महर्षियों ने भी काल को सोया हुआ देखा ॥७०॥

कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् सन्ध्याश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते ॥७१
स स्रष्टा सर्वभूताना कल्पादिषु पुन. पुन ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिद जगत् ॥७२
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तित कल्पयोर्द्वयो ।

साम्प्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ।।७३
कीर्त्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ।
साम्प्रत ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेत निबोधत ।।७४

कल्प के आदि में ब्रह्मा ने बहुत सी चौदह संस्थाओं की कल्पना की थी इसीलिये वह काल ऐसा कहा जाता है ।।७१।। कल्पों के आदि कालों में समस्त प्राणियों का सृजन करने वाला वह महादेव बार-बार व्यक्त और अव्यक्त होता है और उसी का यह समस्त जगत् है ।।७२।। यही दोनों कल्पों की प्रतिसन्धि होती है जो आपके समक्ष में वर्णित करदी गई है । अब के समय वाले और व्यतीत हुए इन दोनों के मध्य में जो प्रागवस्था हुई थी वह सक्षेप से वर्णन करदी गई है जो जैसी कल्प कल्प में थी । अब आपके सामने इस कल्प का वर्णन करता हूँ उसे आप लोग श्रवण करें या समझ लेवें ।।७३ ७४।।

।। मानव सभ्यता का आरम्भ ।।

तुल्य युगसहस्रस्य नैश कालमुपास्य स ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्व सर्गकारणात् ।।१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।२
जलेन समनुव्याप्ते सर्वत पृथिवीतले ।
अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ।।३
निशायामिव खद्योत प्रावृट्काले ततस्तत ।
तदाकाशे चरन् सोऽथ वीक्ष्यमाण स्वयम्भुव ।।४
प्रतिष्ठाया ह्युपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभु ।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तर्गता महीम् ।।५
अनुमानात्तु सम्बुद्धो भूमेरुद्धरण प्रति ।
चकारान्या तनुश्चैव पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ।।६
स तु रूप वराहस्य कृत्वाऽप प्राविशत् प्रभु ।
अद्भि सञ्छादितामुर्वी समीक्ष्याथ प्रजापतिः ।।७

श्री सूतजी ने कहा—यह एक सहस्र युगों के तुल्य रात्रि के समय की

उपासना कर फिर रात्रि के अन्त मे सर्ग करने के कारण मे ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥१॥ उस जल मे वायु के स्वरूप मे होकर विचरण करता था क्योकि उस समय स्थावर और जङ्गम सब के नष्ट हो जाने पर वहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार था ॥२॥ समस्त यह पृथ्वीतल चारो ओर से जल से ही समनुव्याप्त हो रहा था और वहाँ समस्त प्राणी विभाग रहित होते हुए सुस्थित थे ॥३॥ जिस तरह वर्षा ऋतु मे रात्रि के समय मे खद्योत इधर से उधर विचरण करता हुआ दिखाई दे जाता है इस तरह वह भी उस समय आकाश मे इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता था ॥४॥ उस समय प्रभु ने पुन प्रतिष्ठा के उपाय की खोज करते हुए उस जल के अन्दर गई हुई भूमि का ज्ञान प्राप्त किया ॥५॥ उस समय अनुमान से भली भाँति ज्ञान प्राप्त करने ने भूमण्डल के उद्धार करने के कार्य की ओर पूर्ण चेतना प्राप्त की और पहिले कल्प आदि में धारण किया हुआ शरीर का स्मरण किया ॥६॥ उस समय प्रजापति ने जल द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित इस भूमि को देखकर उन्होने तब वाराह का स्वरूप धारण कर जल के अन्दर प्रवेश किया था ॥७॥

उद्धृत्योर्वमिथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसत् ।
सामुद्रीस्तु समुद्रेपु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्या सोऽचिनोद्गिरीन् ॥८
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा सवर्त्तकाग्निना ।
तेनाग्निना प्रलीनास्त पर्वता भुवि सर्वश ॥९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु सहृता. ।
निषक्ता यत्र यत्रासस्तत्रतत्राऽचलोऽभवत् ॥१०
स्कन्नाचलत्वादचला पवभि. पर्वता स्मृता ।
गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चया ॥११
ततस्तु ता समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्ज्जलात् प्रभु ।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुनः ॥१२
सम सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेपु सप्तसु ।
विपमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् ॥१३

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसका समुद्रों में और जो नदियों से सम्बद्ध था उसका नदियों में विन्यास किया। जो पृथ्वी से समन्वित था उसे पृथ्वी में ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को चुन दिया था ॥८॥ पहिले सर्ग में उस समय संवर्त्ताग्नि के द्वारा चारों ओर से दाह के होने से भूमि में उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव में वायु के द्वारा संहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहाँ-वहाँ वह अचल हो गये थे ॥१०॥ ये स्वस्थ होकर अचल होने से 'अचल' और इनमें 'पर्वों' के होने के कारण से ये 'पर्वत' कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से 'गिरि' और शिलाओं के बहुत से चयन होने के कारण से इन्हें 'शिलोच्चय' कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को अन्तर्जल से उद्धृत करके पुनः उसे अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपों में सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप में थे उनको समान बनाकर पर्वतों को शिलाओं से चुन दिया था ॥१३॥ उन द्वीपों में चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त में समवस्थित थे। सर्ग के आदि में वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूराद्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ॥१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१७

स्वर्ग दिश समुद्राश्च नदी सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनां तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवा काष्ठा. कलाश्चैव मुहूर्त सन्धिरात्र्यहम् ।
अर्द्ध मासाश्च मासाश्च अयमाब्दयुगानि च ॥१९
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मान स सृष्ट्वा वै युगावस्था विनिर्ममे ॥२०
कृत.त्रेता द्वापर च कलि चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजा ॥२१

सात द्वीप और समुद्र म योग्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर मे अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सवप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहो के साथ भू इस नाम वाले चार लोको का निर्माण किया और इनके सब आर से स्थानो की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प मे ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियो का सृजन किया । जैसे—जल, अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष और उसी प्रकार से दिव इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पवत समस्त ओषधियो के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और वीरुधो के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला मुहूर्त सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक पृथक् स्थानो के अभिमानी अर्थात् उनम रहने वाले उन्होने स्थानो के स्वरूपो का सृजन कर फिर युगो की अवस्था का निर्माण किया था ॥१६ २०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारो युगो का सृजन कर कल्प के आदि काल म उनने सवप्रथम कृत युग मे प्रजाओ की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्य पूर्वकाल प्रजास्तु ना ।
तस्मिन् सवर्तमाने त कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोक जनलोक समाश्रिता ।
प्रवर्तन्ति पुन सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुन सर्गस्य कारणात् ।

ततस्ताः सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि ॥२४
धर्म्मार्थकाममोक्षाणामिह ताः साधकाः स्मृताः ।
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ॥२५
ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्ति हि ।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ॥२६
ये सर्गा द्वेपयुक्तेन कर्मणा ते दिव गता ।
आवर्त्तमाना इह ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥२७
स्वकर्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तथात्मिका ।
सभवन्ति जनाल्लोकात् कर्मसशयबन्धनात् ॥२८

इसके पूर्व समय में जो मैंने तुम्हारे सामने प्रजा का वर्णन किया था वह समस्त प्रजा उस कल्प के सवर्त्यमान होने पर उसी समय अग्नि से दग्ध हो गई थी ॥२२॥ जो तप लोक मे प्राप्त नही हुई और इस जनलोक मे ही समाश्रित रही वे ही पुन: सर्ग मे प्रवृत्त होते हैं और वे बीज के लिये ही रहा करते हैं ॥२३॥ फिर सर्ग के होने के लिये वे वहाँ बीज के लिये ही स्थित रहे इसके पश्चात् वे सृज्यमान होकर सन्तान के लिये होते हैं ॥२४॥ यहाँ पर वे सब देव, पितर, ऋषि और मनुष्य धर्मार्थ काम और मोक्ष के लिये साधक कहे गये हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् वे तप से युक्त होकर समस्त स्थानो को भर देते हैं। वे ब्रह्मा के सिद्ध आत्मा वाले मानस सृष्टि के रूप मे होते हैं ॥२६॥ जो सर्ग द्वेष से युक्त होकर कर्म के द्वारा दिव को प्राप्त हो जाते हैं वे यहाँ पर युग-युग मे आवर्त्तमान होते हुए जन्म धारण किया करते हैं ॥२७॥ अपने किये हुए कर्मों के शेष रहे हुए फलों के द्वारा जो उस स्वरूप मे प्रसिद्ध होते हैं वे कर्मों के सशययुक्त बन्धन के कारण से जनलोक से यहाँ आकर जन्म लिया करते हैं ॥२८॥

आशयः कारण तत्र बोद्धव्य कर्मणा तु सः ।
तैः कर्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोकाः शुभाशुभैः ॥२९
गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु ।
देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्ते परस्परम् ॥३०

तेषा ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे ।
तान्येते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुन- पुन ॥३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३२
कल्पेष्वासन् व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च ।
तान्येवानागते काले प्रायश' प्रतिपेदिरे ॥३३
तस्मात् नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे ।
पुन पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपत ॥३४

कर्मों का कारण आशय ही समझना चाहिए । उन शुभ और अशुभ कर्मों से मनुष्य यहाँ जन्म लिया करते हैं ॥२६॥ वे यहाँ देव स आदि लेकर स्थावर पर्यन्त नाना भाँति की योनियो मे परस्पर में उत्पन्न होते हुए अनक प्रकार के शरीरो को धारण किया करते हैं ॥३०॥ सृष्टि होने के पहिले उनके जो-जो भी कर्म थे उन्ही कर्मों के अनुसार यहाँ बार-बार सृज्यमान होते हुए फलो को भोगा करते हैं ॥३१॥ उनके हिंसा तथा अहिंसा वाले, मृदु तथा क्रूरता से भरे हुए, धर्म से युक्त तथा पूर्ण अधर्म से भरे हुए और सत्य एव असत्य जैसे भी पहिले कर्म होते हैं उनकी वैसी ही भावनाएं होती हैं और वैसा ही यहाँ भोगते हैं क्योकि उनका स्वभाव भी वैसा हो।होता है कि फिर उन्हें वही अच्छा भी लगा करता है चाहे वह ठीक हो अथवा नही ॥३२॥ बीत हुए कल्पो मे जैसे भी उनके नाम और स्वरूप होते हैं वैसे ही वे आने वाले समय मे भी प्राय. प्राप्त किया करते हैं ॥३३। इसी कारण से व उन्ही नाम और रूपो की प्राप्ति करते हैं क्योकि कल्पो म वे बार-बार जन्म नाम और रूप स ही लिया करते हैं ॥३४॥

ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै ।
प्रजास्ता ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥-'
मिथुनाना सहस्रन्तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा ।
जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ता सुचेतस ॥३६
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनाना ससर्ज ह ।

ते सर्वे रजसोद्रिक्ता शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिण ॥३७
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुत पुन ।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृता ॥३८
पद्भ्या सहस्रमन्यत्तु मिथुनाना ससर्ज ह ।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे नि श्रीका ह्यल्पतेजस ॥३९
ततो वै हर्षमानास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिन ।
अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमु ॥४०
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ।
मासे मासेर्त्तव यद्यत्तदाशासीद्धि योपिताम् ॥४१
तस्मात्तदा न सुपुवु सेवितैरपि मैथुनै ।
आयुपोऽन्त प्रसूयन्त मिथुनान्येव त मकृत् ॥४२

इसके अनन्तर सग के अवष्टब्ध हो जाने पर सृजन की पूण इच्छ रखने वाले ब्रह्माजी के जो सत्य के अभिध्यान करने वाले थे, उस समय उन्हो मुख से सहस्रो प्रजा के मिथुन उत्पन्न किये, वे मनुष्य सत्त्व के उद्रेक से अन्वित वाले होते हैं ॥३५ ३६॥ उन्होने सहस्रो मिथुनो को अपन वक्ष स्थल उत्पन्न किया वे सभी रजोगुण के उद्रेक वाले थे जो शुष्मी होते हुए भी अशुष्म थे ॥३७॥ अन्य सहस्रो द्वन्द्वो को ब्रह्माजी ने अपने उरुओ से उत्पन्न किया जो कि रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक वाले थे और वे ईहा के स्वभाव वा कहे गये हैं ॥३८॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सहस्रो जोडों को अपने चरणो उत्पन्न किया था जो कि सभी तमोगुण के उद्रेक वाले थे और श्रीरहित ए तेज स शून्य थे ॥३९॥ इसके अनन्तर अपने अपने द्वन्द्वो के रूप मे उत्पन्न हो वाल वे सभी प्राणी परम प्रसन्न हुए और अन्योन्य काम वासना में लिप्त होक मैथुन मे प्रवृत्त हो गय ॥ ४० ॥ तभी स लेकर इस कल्प में मिथुन उत्पत्ति कही जाती है। प्रत्येक मास में स्त्रियो को जो ऋतु धर्म होता था वह उ समय उसी ब्रह्मा की आज्ञा थी ॥४१॥ इस लिय उस आर्तव काल में मैथुन सेवन करने वालों न भी स्त्रियो के साथ शयन नहीं किया। आयु के अ त ···के एकबार मिथुनों का प्रसव करते हैं ॥४२॥

कुटका कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिताः ।
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनाना हि सम्भव. ॥४३
ध्याते तु मनसा तासा प्रजना जायते सकृत् ।
शब्दादि विषय: शुद्धः प्रत्येक पञ्चलक्षण: ॥४४
इत्येव मनसा पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापतेः ।
तस्यान्ववाये सम्भूतायैरिद पूरित जगत् ॥४५
सरित्सर समुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि ।
तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६
पृथ्वीरसोद्भव नाम आहार ह्याहरन्ति वै ।
ता प्रजा. कामचारिण्यो मानसो सिद्धिमास्यिताः ॥४७
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता निर्विशेषाः प्रजास्तु ता. ।
तुल्यमायु सुख रूप तासा तस्मिन् कृते युगे ॥४८
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता कल्पादौ तु कृते युगे ।
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ॥४९

कुटक और कुविक मरने की इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं । तभी से लेकर इस कल्प में मिथुनों का जन्म हुआ था ॥४३॥ मन से ध्यान करने पर उन प्रजाओं का एकबार पाँच लक्षणों वाला शुद्ध शब्दादि का विषय उत्पन्न होता है ॥४४॥ इसी प्रकार से प्रजापति की जो पूर्व सृष्टि पहिले हुई उसी अन्ववाय में उसकी यह समस्त प्रजा हुई है जिनसे यह समस्त जगत् परिपूरित हो रहा है ॥४५॥ वह प्रजापति की प्रजा सरित् सरोवर, समुद्र और पर्वतों का सेवन करती है । उस समय युग में वे सब अत्यन्त जल, शीत और उष्णता से रहित होते हुए सर्वत्र विचरण किया करते हैं ॥४६॥ वह समस्त प्रजा अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली मानसी सिद्धि में अवस्थित होती हुई पृथ्वी के रस से उत्पन्न आहार को ग्रहण करती है ॥४७॥ उस कृत युग में उन प्रजाओं मे धर्म तथा अधर्म कुछ भी नहीं थे । उस समय की वह प्रजा विशेषता रहित थी । उन सब की तुल्य आयु सुख और रूप था । कहीं भी कुछ भी आपस में अन्तर नहीं था ऐसा सतयुग का समस्त प्रजा थी ॥४८ । कल्प के आदि में कृत

युग मे उन प्रजाओं मे धर्म और अधर्म कुछ भी नही था। कृत युग मे वे स
अपने-अपने अधिकार के अनुसार यजन करते थे ॥४६॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणा दिव्यसख्यया ।
आद्य कृतयुग प्राहु. सन्ध्यानान्तु चतु: शतम् ॥५०
तत. सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि ।
न तासा प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वन्नापि च क्रमः ॥५१
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः ।
विशोकाः सत्त्ववहुला एकान्तसुखितप्रजाः ॥५२
ता वै निकामचारिण्यो नित्य मुदितमानसा ।
पशव पक्षिणश्चै व न तदासन् सरीसृपाः ॥५३
नोद्भिज्जा नारकाश्चै व ते ह्यधर्मप्रसूतयः ।
न मूलफलपुष्पञ्च नार्त्तवं ह्य् तवो न च ॥५४
सर्वकामसुख कालो नात्यर्थं ह्य ुष्णशीतता ।
मनोभिलषिताः कामास्तासा सर्वत्र सर्वदा ॥५५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्या वै ताभिध्याता रसोत्थिताः ।
वलवर्णकरी तासा सिद्धिः सा रोगनाशिनी ॥५६

दिव्य सख्या से चार हजार वर्ष का आद्य कृत-युग कहा गया है अ
चार सौ वर्ष सन्ध्याओं के कहे गये है ॥५०॥ उन सहस्रो प्रथित प्रजाओ
उनका कोई प्रतिघात नही होता है, न कोई द्वन्द्व होता है और न कोई प्र
होता है ॥५१॥ कृत युग मे प्रजा पर्वत और समुद्र मे सेवन करने वाली
तथा बिना निकेत और आश्रय वाली थी। उस समय उन प्रजाओ में शोक
अभाव था, सत्त्व की प्रचुरता थी और एकान्त सुख से युक्त थी ॥५२॥ इ
युग मे समस्त प्रजा स्वेच्छानुकूल आचरण करने वाली और नित्य ही प
प्रसन्न चित्त वाली थी। उस समय पशु, पक्षी और सरीसृप नही थे ॥५
अधर्म से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे नारकीय पुरुष और उद्भिज भी न
थे। न मूल था, न पुष्प थे और न फल ही थे तथा ऋतु का धर्म और ऋ
... नही थे ॥५४॥ कृत युग मे उस समय समस्त कामो मे सुख देने वा

काल था । उस समय न अधिक उष्णता थी और न शीतलता ही थी । उस समय उन कृतयुग की प्रजाओं के सभी काम मन के अभिलाषित ही सर्वत्र और सदा होते थे ॥५५॥ पृथिवी म उनके द्वारा ध्यान की हुई इससे उत्थित बल और वर्ण को करने वाली उनकी सिद्धि उठती थी जो समस्त रोगों के नाश करने वाली थी ॥५६॥

असंस्कार्यं शरीरैश्च प्रजास्ता स्थिरयौवना ।
तासा विशुद्धात् सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुना प्रजा ॥५७
सम जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ता समम् ।
तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टि सुख दम ॥५८
निर्विशेषा कृता सर्वा रूपायु शीलचेष्टितै ।
अबुद्धिपूर्वक वृत्त प्रजाना जायत स्वयम् ॥५९
अप्रवृत्ति कृतयुगे कर्मणो शुभपापयो ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन सङ्कर ॥६०
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्तयन्ति परस्परम् ।
तुल्यरूपायुष सर्वा अधमोत्तमवर्जिता ॥६१
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्त कृते युगे ।
नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबला ॥६२
लाभालाभौ न तास्वास्ता मित्रामित्रे प्रियाप्रिये ।
मनसा विषयस्तासानिरीहाणा प्रवर्तते ।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चव हि ॥६३

न संस्कार करने के योग्य शरीरो के द्वारा वह समस्त प्रजा स्थिर यौवन वाली थी । उनके विशुद्ध सङ्कल्प से मिथुन प्रजा उत्पन्न हुई ॥५७॥ उन सब का जन्म और रूप समान ही था और वे साथ ही मरते भी थे । उस समय सब में सत्य—लोभ का अभाव—क्षमा-तुष्टि-सुख और दम वत्तमान था । रूप, आयु, शील और चेष्टितों के द्वारा सब विशेषता से रहित कर दिये थे । प्रजाओं का वृत्त अबुद्धि के साथ स्वय होता है ॥५८॥ कृतयुग में पाप और शुभयुक्त कर्मों में प्रवृत्ति का अभाव रहता था । उस समय सतयुग में चारों वर्णों और चारो

आश्रमो की कोई भी व्यवस्था ही नही थी और न कृतयुग मे वर्ण सङ्करता ही थी ।।६०।। उस समय के लोग सब इच्छा और द्वेष से युक्त न होते हुए ही परस्पर मे बरताव किया करते थे । उस समय न तो कोई किसी से उत्तम था और न कोई अधम ही अर्थात् उत्तमाधम के होने का कोई अवसर ही नहीं था और सब समान वय और रूप वाले थे ।।६१।। कृतयुग मे प्राय सभी सुख से युक्त और शोक से रहित थे और इसी प्रकार का जीवन लेकर उत्पन्न होते हैं । वे नित्य ही प्रहृष्ट चित्त वाले, महान् सत्त्व से संयुत और महान् बल वाले थे ।।६२।। उस समय के व्यक्तियो के विचार मे कोई लाभ या कुछ अलाभ अर्थात् हानि है ऐसा होता ही नही था । उनमें न कोई किसी का मित्र था और न कोई शत्रु अर्थात् मित्रामित्र का भेद-भाव सर्वथा था ही नही । किसी का प्रिय और किसी का अप्रिय होने की भावना भी बिल्कुल नही थी । बिना ईहा वाले उनका विषय मन से प्रवृत्त होता है । वे अन्योन्य की कोई लिप्सा नही करते हैं और न किसी पर कोई अनुग्रह किया करते हैं ।।६३।।

ध्यान पर कृतयुगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते ।
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञ दान कलियुगे वरम् ।।६४
सत्त्व कृत रजस्त्रेता द्वापरन्तु रजस्तमो ।
कलौ तमस्तु विज्ञेय युगवृत्तवशेन तु ।।६५
काल कृते युगे त्वेष तस्य सख्यान्निबोधत ।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणा तत् कृत युगम् ।।६६
सन्ध्यांशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च सख्यया ।
तदा तासा बभूवायुर्न च क्लेशविपत्तय ।।६७
तत कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे हि गते तु वै ।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वश ।।६८
सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु ।
एव कृते तु नि शेषे सिद्धिस्त्वन्तर्दधे तदा ।।६९
तस्याश्च सिद्धौ भ्रष्टाया मानस्यामभवत्तत ।
सिद्धिरन्या युगे तस्मिंस्त्रेतायामन्तरे कृता ।।७०

कृतयुग में सबसे प्रधान ध्यान माना गया है और त्रेतायुग में ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व होता है। द्वापर युग में यज्ञ यागादि का सबसे अधिक गौरव माना जाता था और इस कलियुग में दान को सर्वश्रेष्ठता मानी गई है ॥६४॥ युगवृत्त की वशता के कारण से कृतयुग में सत्त्वगुण—त्रेता में रजोगुण—द्वापर में रजोगुण और तमोगुण तथा कलियुग में केवल तमोगुण का आधिपत्य रहता है। ६५॥ कृतयुग में जो काल होता है उसकी संख्या समझ लो। चार सहस्र वर्ष का वह कृतयुग होता है ॥६६॥ उसके सन्ध्या-सन्ध्यांश दिव्य आठ सौ वर्ष संख्या में होते हैं। उस समय उनकी आयु ऐसी ही होती थी कि उसमें कोई भी क्लेश तथा विपत्तियाँ नहीं होती थी ॥६ ॥ इसके अनन्तर उस कृतयुग के सन्ध्यांश के चले जाने पर एक पाद से अवशिष्ट युग-धर्म सभी ओर से होता है ॥६८॥ अन्तकाल में युग की सन्ध्या के भी व्यतीत हो जाने पर युग का एक पाद से सन्ध्या-धर्म अवस्थित रहता है । इस प्रकार से कृतयुग के निःशेष हो जाने पर उस समय सिद्धि अन्तर्हित हो जाती है ॥६९॥ तब उस मानसी सिद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर उस युग में त्रेता में अन्तर में की हुई अन्य सिद्धि होती है ॥७१॥

सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः।
अष्टौ ताः क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति सक्षयम् ॥७१
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः।
वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्धोद्भवः स्मृतः ॥७२
सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चांशतः।
कृतसन्ध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन् पादान् परस्परान्।
ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते तपः श्रुतबलायुषैः ॥७३
ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम्।
त्रेताया युगमन्यन्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ॥७४
तस्मिन् क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह।
कल्पादौ सम्प्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा ॥७५

ततस्तेनैव योगेन वर्तता मिथुने तदा ॥८२
तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छनाम् ।
अकाले ह्यार्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ॥८३
विपर्ययेण तासां तु तेन कालेन भाविना ।
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिता ॥८४

एक बार होने वाली ही उस वृष्टि से पृथ्वी तल के जल से परिपूर्णतया संयुक्त हो जाने पर उस समय उनके घरों में संस्थित वृक्षों का प्रादुर्भाव हो गया अर्थात् वृक्षादि खूब अच्छी तरह उत्पन्न हुए ॥७८॥ उनसे उन प्रजाओं का सभी प्रकार का उपभोग सम्पन्न हो जाता है । त्रेता युग के आरम्भ में प्रजा उन वृक्षों को बरताव में लाती हैं ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर अधिक काल उस त्रेतायुग का व्यतीत होने पर उन्हीं प्रजाओं के कुछ विपर्यय हो जाने से तब अचानक राग और लोभ के रूप वाला भाव उत्पन्न हो गया ॥८०॥ स्त्रियों के जीवितान्त में जो आर्त्तव होता है उस समय वह नहीं होता है तो फिर योग के बल से उनको फिर मास में अर्थात् प्रत्येक मास में वह ऋतु धर्म प्रवृत्त हुआ और फिर उसी योग से उस समय वे मिथुन में प्रवृत्त हुए हैं ॥८१—८२॥ उनको उस समय में ऋतु धर्म होने से उन स्त्रियों का उपगमन करें और प्रत्येक मास में ही करना चाहिए । अकाल में आर्त्तव की उत्पत्ति गर्भ की उत्पत्ति हुई ॥८३॥ उस समय में होने वाले उनके विपर्यय से उस समय सब गृह संस्थित वृक्ष नष्ट हो जाते हैं ॥८४॥

ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रान्ता व्याकुलेन्द्रिया ।
अभिध्यायन्ति ता सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥८५
प्रादुर्बभूवुस्तासां च वृक्षास्ते गृहसंस्थिता. ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ॥८६
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥८७
तेन ता वर्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य च ।
हृष्टतुष्टास्तया सिद्धया प्रजा वै विगतज्वरा ॥८८

पुन. कालातरेणैव पुनर्ल्लोभावृतास्तु ता ।
वृक्षास्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात् ॥८६
तासा तना पचारेण पुनर्ल्लोककृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षा क्वचित् क्वचित् ॥९०

तब उस समय उन वृक्षो के प्रनष्ट हो जाने पर वे बहुत ही भ्रान्त हुए उनकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुलित हो गई तब सत्य के अभिध्यायी उन्होंने उस सिद्धि का ध्यान किया ॥८५॥ फिर सिद्धि के ध्यान से वे सब गृह मे रहने वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हो गये थे। और वे वस्त्र फल तथा अनेक आभरणों का प्रसव किया करते हैं ॥८६॥ उन प्रजाओं के उन्ही वृक्षो मे गन्ध, वर्ण और रस से युक्त महान् वीर्य युक्त पुट-पुट में अमाक्षिक मधु उत्पन्न होता है ॥८७॥ त्रेतायुग के आरम्भ काल मे सभी प्रजा उसी का व्यवहार करते थे। इससे वे सब परम हृष्ट पुष्ट और उस सिद्धि से विगत ज्वर अर्थात् दु ख रहित हो गये ॥८८॥ फिर कुछ काल के पश्चात् ही लोभ से आवृत हुए उन वृक्षो का परिग्रहण करते हैं और बलपूर्वक उनका मधु अथवा माक्षिक भी ग्रहण करते हैं ॥ ८९ ॥ उनके उस लोभ कृत अपचार से फिर कही कही वे कल्प वृक्ष मधु के साथ ही साथ नष्ट हो गये थे ॥९०॥

तस्यामेवाल्पशिष्टाया सन्ध्याकालवशात्तदा ।
प्रावर्तत तदा तासा द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ॥९१
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ॥
द्वन्द्वैस्ता पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥९२
कृत्वा द्वन्द्व प्रतीकार निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ॥९३
यथायोग्य यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुन ।
मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च ।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वान शाश्वतोदकम् ॥९३
यथायोग यथाकाम समेषु विषमेषु च ।
आरब्धास्ते निवेशाय कर्तुं शीतोष्ण वारणम् ॥९५

ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।
ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैवान्तः पुराणि च ॥९६
तासामायामविष्कम्भान् सन्निवेशान्तराणि च ।
चक्रुस्तदा यथाप्राज्ञं प्रदेशः सज्ञितस्तु तैः ॥९७
अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यामः प्रादेश उच्यते ।
ताल: स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥९८
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशांगुल उच्यते ।
रत्निरंगुलपर्वाणि संख्यया त्वेकविंशतिः ॥९९

उस समय सन्ध्या-काल के कारण से जोकि सन्ध्या का थोडा-सा भाग ही शेप रह गया था उन प्रजाओं में द्वन्द्वों की उत्पत्ति हुई अर्थात् 'सुख-दुःख' आदि के जोडे उत्पन्न हो गये ॥९१॥ तब तो ये अति तीव्र शीत, वात, आतप के द्वन्द्वों से बहुत उत्पीडित हुए और वे परम पीडा मान होकर उन द्वन्द्वों से बचाव करने के लिये अपने आवरण करने लगे। ९२॥ सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का प्रतीकार करके वे सब घरों में निवास करने लगे जिससे शीतलता, उष्णतादि से पूर्ण बचाव हो जावे। इसके पूर्व वे सभी स्वेच्छाचारी थे और किसी भी घर का आश्रय लेकर नहीं रहते थे ॥९३॥ योग्यता और प्रीति के अनुसार फिर घरों में निवास करते हुए रहने लगे। मरुधन्वाओं में, नीचे स्थानों में, पर्वतों में और नदियों में जहाँ कि निरन्तर जल विद्यमान रहता है वे ऐसे दुर्गों को अर्थात् पूर्ण सुरक्षित स्थानों का आश्रय लेते थे ॥ ९४ ॥ जैसा भी योग हो और जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार समतल और विषमतल में उन्होंने शीत और उष्णता का वारण करने के लिये अपने घरों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था ॥९५॥ इसके पश्चात् खेटों तथा पुरों की स्थापना की थी और भाग के अनुसार ग्रामों की और अन्तःपुरों की स्थापना की गई थी ॥९६॥ उनके आयाम और विष्कम्भों को तथा अन्दर के सन्निवेशों का बुद्धि के अनुसार निर्माण किया और उस समय उन्हीं के द्वारा 'प्रदेश' यह संज्ञा रखी गई थी ॥९७॥ (प्रदेशिनी से अंगुष्ठ का व्याम 'प्रादेश' कहा जाता है। मध्यमा से 'ताल' और अनामिका से 'गोकर्ण' कहा गया है ॥ ९८ ॥ कनिष्ठिका से 'वितस्ति' जोकि द्वादशांगुल कहा

जाता है। अंगुलियों के पर्व जो संख्या में इक्कीस होते हैं 'रत्नि' कहे जाते हैं ॥९९॥

चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादंगुलानि तु ।
किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदंगुलम् ॥१००
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनुः सहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥१०१
अष्टौ धनुः सहस्राणि योजनं तैर्निरुच्यते ।
एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्ततः कृतः ॥१०२
चतुर्णामेव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम् ॥१०३
सौधोच्चवप्रप्राकारं सर्वतश्चातकावृतम् ।
तदेव स्वस्तिकद्वारं कुमारीपुरमेव च ॥१०४
श्रोतसीसह तद्द्वारं निखातं पुनरेव च ।
हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मताः ॥१०५
खेटानां नगराणाञ्च ग्रामाणाञ्चैव सर्वशः ।
त्रिविधानाञ्च दुर्गाणां पर्वतोदकधन्वनम् ॥१०६

चौबीस अंगुल का 'हस्त' होता है। दो रत्नियों का 'किष्कु' होता जोकि बयालीस अंगुल का होता है ॥१००॥ चार हस्त का धनु होता है और दो नालिका दण्ड होता है। दो सहस्र धनुओं का गव्यूति होता है ॥१०१॥ आठ सहस्र धनुओं का एक योजन कहा जाता है। इस योजन से ही सन्निवेश किया गया था ॥१०२। चार दुर्गों में तीन तो अपने से उत्थित थे और चौथा दुर्ग कृत्रिम था जिसकी विधि को मैं कहता हूँ ॥१०३॥ सब ओर से खातकों से आवृत ऊँचे प्राकार वाला सौध होता है। उसमें एक स्वस्तिक द्वार होता है और कुमारी पुर होता है ॥१०४॥ श्रोतसी के साथ वह द्वार निखात (खुदा हुआ) होता है। वह आठ हाथ, दस हाथ अथवा नौ हाथ का दूसरे मानते हैं ॥१०५॥ खेटों के, नगरों के और ग्रामों के सब ओर से और तीन प्रकार के दुर्गों के पर्वतोदक धन्व होता है ॥१०६॥

त्रिविधानाच दुर्गाणा विष्कम्भायाममेव च ।
योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ॥१०७
परमार्द्धार्द्धमायाम प्रागुदक्प्रवर पुरम् ।
छिन्नकर्ण विकर्णन्तु व्यञ्जन कृशसस्थितम् ॥१०८
वृत्त हीनञ्च दीर्घञ्च नगर न प्रशस्यते ।
चतुरस्रार्जव दिक्स्थ प्रशस्त वै पुर परम् ॥१०६
चतुर्विंशतिराद्यन्तु हस्तानष्टशत परम् ।
अत्र मध्य प्रशसति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥११०
अथ किष्कुशतान्यष्टो प्राहुर्मुख्यनिवेशनम् ।
नगरादर्धविष्कम्भं खेट ग्राम ततो बहि ॥१११॥
नगराद्योजन खेट खेटाद्ग्रामोऽर्द्धयोजनम् ।
द्विक्रोश परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनु ॥११२

तीनों प्रकार के दुर्गों का विष्कम्भ जितना आयाम होता है । योजनों के अष्ट भाग और अर्ध भाग आयत विष्कम्भ होता है ॥१०७॥ परमार्थ के अर्ध आयाम वाला पहिले उदक से प्रवर पुर, छिन्न कर्ण, विकर्ण, व्यंजन, कृश-सस्थित, वृत्त, हीन और दार्घ नगर प्रशस्त नहीं कहा जाता है । चारो ओर से सिधाई वाला दिशाओ मे स्थित पुर परम प्रशस्त होता है ॥१०८-१०६॥ जिसका आद्य चौबीस हाथ और पर आठ सौ तथा ह्रस्व और उत्कृष्ट से रहित मध्य भाग हो उसकी प्रशसा करते हैं ॥११०॥ इसके अनन्तर आठ सौ किष्कु का मुख्य निवेशन कहा गया है । नगर से आधा विष्कम्भ खेट होता है और उससे बाहिर ग्राम होता है ॥१११॥ नगर से एक योजन खेट और खेट से आधा योजन ग्राम होता है । दो कोश परम सीमा होती है और चार धनुष क्षेत्र की सीमा होती है ॥११२॥

विंशद्धनू पि विस्तीर्णो दिशा मार्गस्तु तै कृत ।
विंशद्धनुर्ग्राममार्ग सीमामार्गो दशैव तु ॥११३
धनू पि दश विस्तीर्ण श्रीमान् राजपथः स्मृत ।
नृवाजिरथनागानामसम्बाध सुसचर ॥११४

धनूंषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु तैं कृताः ।
गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः ॥११५
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदञ्च गृहान्तरम् ।
वृत्तिमार्गास्त्वर्द्ध पद प्राग्वंश पदिक स्मृत ॥११६
अवस्करं परीवाह पदमात्र समन्ततः ।
कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥११७
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।
तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुन. ॥११८
वृक्षाश्चैव गता. शाखा न ताश्चैव परागताः ।
अत उर्द्धगताश्चान्या एव तिर्य्यग्गताः पुरा ॥११९

बीस धनुष विस्तार वाला उन्होने दिशाओ का मार्ग बनाया, बीस धनुष का विस्तीर्ण ग्राम का मार्ग और दश धनुष विस्तार वाला सीमा का मार्ग बनाया था ॥११ ॥ दस धनुष विस्तार वाला शोभायुक्त राजपथ कहा गया है जोकि मनुष्य, अश्व, रथ, हस्ती आदि का बाधा-रहित सचार वाला होता है ॥११४॥ चार धनुष के विस्तार वाली ही शाखा रथ्या (गली) उन्होने बनाई इसी प्रकार से गृहरथ्या, उपरथ्या, द्विका और उपरथ्यका, घण्टापथ, चतुष्पाद, त्रिपद, गृहान्तर, वृत्तिमार्ग, अर्द्ध पद, प्राग्वश और पदिक कहा गया है ॥११५-११६॥ यह मात्र चारों ओर अवस्कर परीवाह उन स्थानो पर करने पर फिर घर किये ॥११७॥ जिस तरह वे पहिले गृह संस्थित वृक्ष थे पुन -पुनः चिन्तन कर वैसा ही करना आरम्भ कर दिया ॥११८॥ शाखाऐं और वृक्ष गये वैसे ही परागत नही हुए । इसलिये ऊपर की ओर गये हुए दूसरे थे इसी प्रकार से पहिले तिरछे जाने वाले थे ॥११९॥

वुद्धाऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गता· ।
तथा कृतास्तु तै शाखास्तस्माच्छालास्तु ता. स्मृताः ॥१२०
एव प्रसिद्धा शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च ।
तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ॥१२१
प्रसीदति मनस्तासु मन प्रसादयन्ति ताः ।

तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ॥१२२
कृत्वा द्वन्द्वोपघातास्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः ॥१२३
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ॥१२४
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
वृष्ट्या तदभवत्स्रोत खातानि निम्नगाः स्मृताः ॥१२५
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने ।
ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥१२६
अपाम्भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे ॥१२७
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ॥ २८

खूब समझ कर खोज करते हुए का वैसा ही न्याय है जैसा कि वृक्ष में रहने वाली शाखाएँ होती हैं। उनके द्वारा की हुई शाखाएँ है इससे वे शालायें कहलाई गई हैं ॥१२०॥ इस प्रकार से शाखाओं से शालाएँ और गृह प्रसिद्ध हुए। इसी से ये शालाएँ कहलाईं और उनमे यह शालत्व था ॥१२१॥ उनमें मन प्रसन्न होता है और ये मन को प्रसाद युक्त करती भी हैं। इसी से गृह और शालाएँ प्रसाद संज्ञा से युक्त हुए हैं ॥१२२॥ उन द्वन्द्वों के उपघातों को करके अर्थात् सुख-दुःखादि स्वरूप जो बहुत से संसार में द्वन्द्व (जोड़े) हैं उनका निवारण करके अर्थात् गृहादि का निर्माण करके बचाव करके अब जीविका के उपाय के विषय में चिन्तन किया अर्थात् रोजी कैसे चले, यह विचार किया। उस समय मधु के साथ कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर भूखी-प्यासी प्रजा विषाद में व्याकुल हो उठी ॥१२३॥ इसके अनन्तर उन प्रजाजनों को फिर त्रेता युग में वृत्ति की सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी इच्छा से जीविका और अर्थ के साधन करने वाली अन्य वृत्ति भी प्रादुर्भूत हुई ॥१२४॥ तब वृष्टि का जो जल था जो कि यहाँ पर निम्न स्थानों में चला गया था, वृष्टि से वह स्रोत हो

गया और जो श्वभ्र अर्थात् गहराई वाले गुढ़े हुए थे वे नदियाँ कहलाई ॥ ॥१२५। इस तरह द्वितीय वृष्टि के सर्जन मे नदियाँ प्रवृत्त हुई । जो जलो के परे छोटी थी और पृथ्वी तल मे प्राप्त हुई थी ॥१२६। भूमि और जल के सयोग से उनमे ओषधियाँ समुत्पन्न हुई वे ओषधियाँ फूल-मूल और फलो वाली उत्पन्न हुई थीं ॥१२७॥ जो हल से नही जोते गये हैं और बोये गये हैं ऐसे ग्राम के चौदह अरण्य थे जो कि ऋतु के पुष्प और फलो से युक्त वृक्षो को और गुल्मों को उत्पन्न करते थे ॥१२८॥

प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु ।
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥१२९
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥१३०
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्यन्तु यथाबलम् ॥१३१
सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याता प्राकृते मया ।
ब्रह्मणो मानवास्ते वै उत्पन्ना याजनादिह ॥१३२
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुखिनस्तदा ।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ॥१३३

त्रेता युग में जीविका के कार्य में औषध का प्रादुर्भाव हुआ । उस समय त्रेता युग मे प्रजा उस औषध से अब भी रोजी चलाती थी ॥१२९॥ त्रेता युग मे होने वाले अवश्यम्भावी अर्थ से फिर उन प्रजा-जनो मे सभी ओर से राग और लोभ पुनः हो गया था ॥१३०॥ इसके अनन्तर उन्होने नदी के क्षेत्रों को और पर्वतों का परिग्रहण किया और बल के अनुसार वृक्षो और गुल्मोषधियों को प्रसहन किया । झाडी के रूप मे रहने वाली ओषधि गुल्मोषधि कही जाती है ॥१३१॥ जो सिद्ध आत्मा वाले थे वे सब मैंने पहिले प्राकृत मे बता दिये अर्थात् उनकी भली-भाँति व्याख्या कर दी थी । यहाँ पर योजन से ब्रह्मा के द्वारा जो उत्पन्न हुए वे मानव थे ॥१३२॥ उस समय शान्त-शुष्मी कर्म करने वाले और दुःख मे युक्त इसके पश्चात् पुनः प्रवर्त्तमान होने हुए त्रेता युग में उत्पन्न हुए ॥१३३॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः ॥१३४
इतस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ॥१३५
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजस ।
एव विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् ॥१३६
तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषता तदा ।
प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्या सिकता यथा ॥१३७
अग्रसद्भूर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्प पत्रैश्च या' पुनः ॥१३८
ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः प्रजास्तदा ।
स्वयम्भुव प्रभुं जग्मु क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम् ॥१३९
वृत्त्यर्थमभि लिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वा तासा मनीषितम् ॥१४०

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और द्रोह करने वाले मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों से पूर्व जातियो मे भावित होते हुए उत्पन्न हुए ॥१३४॥ वहाँ से जो उनसे बलवान् थे—सत्य के स्वभाव वाले थे-हिंसा का कर्म न करने वाले थे—अपनी आत्मा जीत लेने वाले और वीत लोभ अर्थात् लोभ से रहित थे, वे उनमें निवास करते थे ॥१३५॥ उनसे अन्य अल्प तेज वाले प्रतिग्रहण करते हैं। इस प्रकार से आपस मे विप्रतिपन्न और प्रपन्नों मे रहते हैं ॥१३६॥ उन सबके उस दोष से वे सब ओषधियाँ उस समय मुट्ठियों मे सिकता की भाँति ह्रियमाण और प्रनष्ट हो गई ॥१३७॥ भूमि न सबको ग्रास कर लिया। युग के बल से चौदह जो ग्राम्य अरण्य थे वे पुष्पों से फल को और पत्रों मे पुष्प को ग्रहण करते हैं ॥ ॥१३८॥ इसके पश्चात् उन सभी के प्रनष्ट हो जाने पर उस समय सब प्रजाजन विभ्रान्त होते हुए, भूख से आविष्ट होते हुए प्रजापति प्रभु स्वयम्भू के पास आये ॥१३९॥ त्रेता युग के आदि में जीविका के लिये इच्छा करते हुए उनको देखकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनके बुद्धि स्थित विचार को जान लिया था ॥१४०॥

युक्त प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।
ग्रस्ता पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुह पुन. ॥१४१
कृत्वा वत्स सुमेरु तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।
दुग्धेय गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ॥१४२
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ता पुन ।
ओषध्य फलपाकान्ता सप्तसप्तदशास्तु ता: ॥१४३
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कारुपाश्च सतीनका ॥१४४
माषा मुग्दा मसूराश्च निष्पावा सकुलत्थका ।
आढक्यश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशा स्मृता ॥१४५
इत्येता ओषधीना तु ग्राम्याणा जातय स्मृता. ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१४६

प्रत्यक्ष दृष्ट दर्शन से युक्त बात का विचार कर ब्रह्मा जी ने यह जान लिया कि पृथिवी ने समस्त ओषधियो को ग्रस लिया है और उन्होंने पुन प्रति दोहन किया ॥१४१॥ ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था। इससे उस समय दोहन की हुई यह गौ ने पृथ्वी तल में बीजों को उत्पन्न किया और उन बीजो ने पुन वे ग्राम्यारण्य उत्पन्न किये और सात-सात दशा वाली ओषधियाँ जिनमे फलो का अन्त तक पाक होता था उत्पन्न हुई । व्रीहि–यव–गोधूम–अणु–तिल–उदार प्रियङ्गु–कारुप–सतीनक–माष (उर्द)–मुग्द (मूँग)–मसूर और कुलत्थ के सहित निष्पाव–आढका–चणक ये सात सात दशा वाले कहे गये हैं ये सब उत्पन्न हुए ॥१४२॥१४३॥१४४॥ ॥१४५॥ ये सब ग्राम्य ओषधियो की जातियाँ बतलाई गई हैं। और जो याज्ञिय ओषधियाँ हैं वे ग्राम्यारण्य चौदह हैं ॥ ४६॥

व्रीहय. सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका ॥१४७
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्त्तिला सगवेधुका: ।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये ॥१४८

ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
उत्पन्नाः प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु ॥१४६
अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वशः ।
वृक्षाः गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातयः ॥१५०
मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन् पुष्पैश्च जायते ।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा ॥१५१
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः ॥१५२
ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजाम् ॥१५३
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्या स्तु जज्ञिरे ।
संसिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासां स्वयम्भुवः ।
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ॥१५४

व्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, सातवीं प्रियङ्गु और आठवीं कुलत्थिका–श्यामाक, नीवार, जर्तिला, गवेधुका, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कट ये चौदह ओषधियाँ ग्राम्यारण्य नाम से कही गई हैं ॥ त्रेता युग के आदि में पहिले ये ही उत्पन्न हुई थीं ॥१४७॥१४८॥१४९॥ हल की फाल से जो भूमि नहीं जुती हुई है, उसमें होने वाली ये ओषधियाँ हैं और सब ओर ग्राम्यारण्य हैं जिनमें वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, विरुध और तृण की जाति वाली ओषधियाँ होती हैं ॥१५०॥ स्वयम्भू के द्वारा दुही हुई पृथ्वी ने जो बीज दिये उन सबके अङ्कुर उत्पन्न हुए और मूल फल और पुष्पों से युत हुए उत्पन्न होते हैं ॥१५१॥ अपनी ऋतु में फल और पुष्प प्रदान करने वाली ओषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुईं । जब ओषधियाँ प्रसृष्ट हो गईं तो फिर नहीं उगती हैं ॥१५२॥ इसके अनन्तर उन्होंने उन प्रजाजनों की वृत्ति के लिये उपाय किये और भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ने उनके कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देखा ॥१५३॥ तब से लेकर कृष्ट पच्या ओषधियाँ उत्पन्न हुईं । इसके अनन्तर उन प्रजा के जनों की जीविका के भली-भाँति सिद्ध हो जाने पर भगवान् स्वयम्भू के द्वारा परस्पर में जैसे आरम्भ की गई थी वह मर्यादा स्थापित हो गई ॥१५४॥

ये वै परिगृहीतारस्तासामा सन्विधात्मका ।
इतरेषा कृतत्राणा स्थापयामास क्षत्रियान् ॥१५५
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा ।
सत्य ब्रह्म यथा भूत ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ॥१५६
ये चान्येप्यबलास्तेषा वैश्यसत्कर्मसस्थिता ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्या प्रागतन्द्रिता ।
वैश्यानेव तु तानाहु कीनाशान् वृत्तिसाधकान् ॥१५७
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रता ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत् स. ॥१५८
तेषा कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभु. ।
सस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्वर्ण्यस्य सर्वश. ॥१५९
पुन प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्मास्तानपालयन् ।
वर्ण धर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ॥१६०
ब्रह्मा तमर्थं बुद्धा तु याथातथ्येन वै प्रभु ।
क्षत्रियाणा बल दण्ड युद्धमाजीवमादिशत् ॥१६१
याजनाध्यापन चैव तृतीय च परिग्रहम् ।
ब्राह्मणाना विभुस्तेषा कर्माण्येतान्यथादिशत् ॥१६२

उनके परिगृहीता विधात्मक थे। दूसरो का त्राण करने वाले क्षत्रियों की स्थापना की। उनका जो उपस्थान करते हैं वे यथाभूत सत्य ब्रह्म को बोलने वाले ब्राह्मण थे जो कि निर्भय रहा करते थे अर्थात् क्षत्रियो के सरक्षण में उन्हें किसी भी बाधा आदि का भय नहीं रहता था ॥१५६॥ उनमे जो भी अन्य बल रहित थे और वैश्य कर्मों मे सस्थित थे पहिले पृथ्वी मे अतन्द्रित का नाश कर देते थे। उन वृत्ति के साधक वैश्यो को कीनाश ही कहते हैं ॥१५७॥ शोच करते हुए—द्रव होते हुए जो परिचर्याओ मे निरत रहते हैं और जो तेज से हीन और अल्प वीर्य वाले हैं उन्हें वह 'शूद्र' इस नाम से बोलता था ॥१५८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने प्राकृत सस्थिति मे सब ओर से चतुर्वर्ण के अनुसार उनके कर्मों की और धर्मों की व्यवस्था कर दी थी ॥१५९॥ फिर उन प्रजा के जनों ने मोह से उन धर्मों का पालन न करते हुए वे वर्णो के, धर्मों के द्वारा जीविका

चलाते हुए परस्पर में विरोध करने वाले हो गये ॥१६०॥ प्रभु ब्रह्माजी ने उस अर्थ को भली भाँति ठीक ठीक समझ कर क्षत्रियों का जीविका बल दण्ड और युद्ध करना बतलाया था ॥१६१॥ यज्ञादि का यजन कराना वेद और शास्त्रों का पढ़ाना तथा दान ग्रहण करना ये तीन कर्म उन ब्राह्मणों के विभु श्री ब्रह्मा जी ने बनाये थे ॥१६२॥

पशुपाल्य च वाणिज्य कृषि चैव विशा ददौ ।
शिल्पाजीव भृतिञ्चैव शूद्राणा व्यदधात् प्रभु ॥१६३
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशा पुन ।
यजनाध्ययन दान सामान्यानि तु तेषु च ॥१६४
कर्माजीव ततो दत्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।
लोकान्तरेषु स्थानानि तेषा सिद्ध्याऽददत् प्रभु ॥१६५
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा सग्रामेष्वपलायिनाम् ॥१६६
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममुपजीविनाम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीना प्रतिचारेण तिष्ठताम् ॥१६७
स्थानान्येतानि वर्णाना व्यत्याचारवता स्वयम् ।
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ॥१६८
गृहस्थो ब्रह्मचारित्व वानप्रस्थ सभिक्षुकम् ।
आश्रमाश्चतुरो ह्येतान् पूर्वमास्थापयत् प्रभु ॥१६९

पशुओं का पालन करना व्यापार करना और कृषि का काम करना ये तीन कर्मों के करने की व्यवस्था ब्रह्माजी ने वैश्य के लिये की और यही आदेश दिया। प्रभु ने दस्तकारी के द्वारा रोजी कमाना नौकरी करना ये कर्म शूद्रों के करने के लिए बताये थे ॥१६३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के सामान्य कर्म ये यजन करना, स्वयं अध्ययन करना और स्वयं दान देना था। ये तीनों कर्म उन तीनों में समान रूप से होते थे ॥१६४॥ इस प्रकार से इन सबके कर्म और आजीविका की व्यवस्था करके और उन्हें परस्पर में यह देकर फिर प्रभु ने दूसरे लोकों में सिद्धि से उनके स्थानों को भी दिया था ॥१६५॥ जो परम

क्रियावान् ब्राह्मण थे उनके लिये प्राजापत्य कहा गया है।" जो सग्रामो में कभी पीठ दिखाकर शत्रु के समक्ष से भयोद्विग्न होकर पलायन नही किया करते थे, उन क्षत्रियों को इन्द्र सम्बन्धी स्थ न दिया गया था ॥१६६॥ अपने धर्म के अनुसार उपजीवन करने वाले वैश्यो के लिए दूसरे लोक में वायु का स्थ न दिया था। शूद्र प्रतिचार से सेवावृत्ति करते हुए यहाँ लोक में रहते थे उन शूद्रो की जाति वाले पुरुषों के लिए दूसरे लोक म गन्धर्वों का स्थान दिया था ॥१६७॥ विशेष रूप से अत्यन्त आचार के पालन करने वाले उन वर्णों के लिये स्वय ने स्थान देकर फिर उन वर्णो के स्थित लोगो में चार आश्रमों की स्थापना की थी ॥१६८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमो की पहिले ही स्थापना की थी ॥१६६॥

वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते ।
कृत कर्मा क्षिति प्राहुराश्रमस्थानवासिनः ॥१७०
ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः ।
निर्देशार्थं ततस्तेषा ब्रह्मा धर्मान् प्रभाषत ।
प्रस्थानानि च तेषा वै यमाश्च नियमाश्च ह ॥१७१
चातुर्वर्ण्यात्मक. पूर्व गृहस्थश्चाश्रमः स्मृत ।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ते ॥१७२
दाराग्निहोत्रोऽथातिथेय इज्याश्राद्धक्रियाः प्रजा ।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसग्रह ॥१७३
दण्डी च मेखली चैव ह्यध शायी तथा जटी ।
गुरुशुश्रूषण भैक्ष विद्यार्थं ब्रह्मचारिण ॥१७४
चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ।
उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्य वासिनाम् ॥१७५

जो भी कोई इस ससार मे वर्णों के कर्मों को नही करता है उसे आस्थान के निवास करने वाले 'कर्माक्षिति' क्यो कहते हैं ॥ १७० ॥ ब्रह्माजी इन आश्रमो का नाम से स्थापन किया था। इसके पश्चात् उनके निर्देश

लिये ब्रह्माजी ने स्वय उन धर्मों का बतलाया था, और प्रस्थान तथा उनके नियम और यम भी ब्रह्मा जी ने बनाये थे ॥ १७१ ॥ यह एक ही गृहस्थ का आश्रम ऐसा है जो चारो वर्णो के स्वरूप वाला पहिले कहा गया है। यह गृहस्थाश्रम अन्य तीनो आश्रमो की प्रतिष्ठा का उद्‌भव स्थान ही होता है। अब यहाँ क्रम के अनुसार ही इनका यम तथा नियमो के साथ वर्णन करता हूँ ॥ १७२ ॥ पत्नी का वैदिक विधि से ग्रहण करना अग्नियों की आहित रखना, घर मे समागत अतिथियो के लिये श्रद्धाभाव से अतिथि-सत्कार करना, यजन करना, श्राद्धादि की क्रिया का करना और प्रजा को जन्म देना अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना, ये ही सक्षेप से गृहस्थो के धर्मों का सग्रह किया है ॥ १७३ ॥ अब ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म बतलाया जाता है—दण्ड का धारण करना, मौञ्जी मेखला का पहिनना, भूमि मे शयन करना, शिर पर जटा धारण करना, गुरु की सेवा करना और भिक्षा करना, ये सब ब्रह्मचारी के धर्म होते हैं ॥ १७४ ॥ अरण्य मे निवास करने वालो के चीरपन और अजिन अर्थात् मृगचर्म वस्त्र होते हैं। धान्य, मूल, फल और ओषध, आहार दोनों समय सन्ध्योपासना करना और स्नान करना आदि धर्म होते हैं ॥ १७५ ॥

आसन्नमुसले भैक्षमस्तेय शौचमेव च ।
अप्रमादाऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ॥१७६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशम स्मृतम् ।
दशलक्षणिको ह्येष धर्म. प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥१७७
भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च ।
आचारशुद्धिनियम शौचञ्च प्रतिकर्म च ।
सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि ॥१७८
ध्यान समाधिर्मनसेन्द्रियाणा ससागरैर्भैक्षमथोपगम्य ।
मौनं पवित्रोपचितर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्ममिम वदन्ति ॥१७९
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्तो आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम् ।
सत्यार्जवन्तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ॥१८०
वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्त ये ।
न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ॥१८१

बहिः कर्माणि सर्वाणि प्रसिद्ध्यन्ति यदा न ।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान् ॥१८२

आतपमुसल व भिक्षा करना, चोरी न करना, शुद्धि रखना, प्रमाद न करना तथा स्त्री-गमन न करना प्राणियों में दया करना तथा क्षमा रखना, क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना और सत्य ये दश नियम एवं धर्म होते हैं। स्वयम्भू भगवान् ने यह दश लक्षण वाला धर्म बताया है ॥ १७६-१७७ ॥ भिक्षु अर्थात् स-यासी के पाँच सो यहाँ व्रत होते हैं और पाँच ही उपव्रत होते हैं। आचारो की शुद्धि नियम है और शौच का होना प्रतिकर्म होता है और सम्यक् दर्शन इस प्रकार से पाँच हो उपव्रत भी होते हैं ॥ १ ८ ॥ मन से इन्द्रियों का ध्यान समाधि, सागर के सहित भिक्षा प्राप्त करके मौन, पवित्र उपचितो में विमुक्ति प्राप्त करना यही पारिव्राज धर्म कहते हैं । १७९ ॥ ये सब आश्रम ब्रह्माजी ने स्वय ही कल्याण के लिये कहे हैं। सत्य, आर्जव, तप, क्षान्ति, याग इज्या और दम अङ्गो के सहित वेद, यज्ञ व्रत और नियम ये सब भावदोष के उपागत होने पर प्रदुष्ट के कभी सिद्ध नहीं होते हैं ॥ १८१ ॥ जिसका अन्तर्भाव प्रकृष्ट दोष से युक्त होता है उसके पराक्रम करते हुये भी बाहिर के समस्त कर्म कभी प्रसिद्ध नहीं होते हैं अर्थात् केवल दिखावे के कर्मों से कोई अभीष्ट सिद्धि नहीं होता है ॥ १८२ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ।
न तेन धर्मभाक् स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ॥१८३
एव देवा सपितर ऋषयो मनवस्तथा ।
तेषा स्थानममुष्मिस्तु सस्थितानां प्रचक्षते ॥१८४
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ।
स्मृत तु तेषा तत्स्थान तदेव गुरुवासिनाम् ॥१८५
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थान स्मृतन्तद्वै दिवौकसाम् ।
प्राजापत्य गृहस्थाना न्यासिना ब्रह्मण क्षय ।
योगिनाममृत स्थान नानाधीना न विद्यते ॥१८६
स्थानान्याश्रमिणा तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिताः ।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिता ॥१८७

ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविं स्मृत ॥१८८
तथैव पितृयाणानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा ।
यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिका ॥१८९

चाहे कोई अपनी कलुषित आत्मा में अपना सर्वस्व भी क्यों न दे देवे, उस दिये दान से वह कभी भी धर्म का भागी नहीं हो सकता है क्योंकि इस दान आदि के कर्म में भाव ही मुख्य कारण होता है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार से पितर-ऋषिगण और मनुवृन्द इस लोक में संस्थित होने वाले उनका स्थान बतलाया जाता है ॥ १८४ ॥ ऊर्द्धरेतस ऋषियों की संख्या अठ्ठासी हजार है उनका यह स्थान है, वही गुरुवासी सप्तर्षियों का स्थान है और वही दिवौकस अर्थात् देवताओं का स्थान कहा गया है। गृहस्थों का प्राजापत्य न्यास करने वालों का ब्रह्मा का क्षय और योगियों का अमृत स्थान है और जो नाना भी वाल हैं उनका कोई नहीं है ॥ १८५–१८६ ॥ जो अपने-अपने धर्म में व्यवस्थित रहते हैं उन्हीं आश्रमों में रहने वालों के स्थान होते हैं। ये चार मार्ग देवयान बनाये गये हैं ॥ १८७ ॥ भूमण्डल पर आद्य मन्वन्तर में लोकतन्त्र ब्रह्माजी के द्वारा देवयान के लिये मार्ग बनाये गये हैं और उनका द्वार रवि कहा गया है ॥१८८॥ उसी प्रकार से पितृयान वालों का द्वार चन्द्रमा कहा जाता है। इस प्रकार से उस समय में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग करने पर जब इसकी प्रजा वर्णाश्रम के स्वरूप वाली व्यवहार नहीं करती है ॥ १८९ ॥

ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्ये ऽसृजत् प्रजा ।
आत्मन. स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ॥१९०
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्य प्राप्ते क्रमेण तु ।
ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजा स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१९१
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ता प्रजा सोऽथासृजत् प्रभुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्त्तायाश्चैव साधिका ॥१९२
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।
युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिता प्रजा ॥१९३

उपस्थिने तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुवः ।
अभि दध्यौ प्रजा. सर्वा नानारूपास्तु मानसीः ॥१८४
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यञ्जनलोक समाश्रिता ।
कल्पऽतीते तु ते ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥१८५
ध्यायतस्तस्य ता सर्वा सम्भूत्यर्थमुपस्थिता ।
मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मता ॥१८६
ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविता ।
कुशलाकुशलप्रायै कर्मभिस्तै सदा प्रजाः ।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धा प्रजज्ञिरे ॥१८७
देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपै ।
वृक्षनारकिकीटत्वै स्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः ।
आधीनार्थं प्रजानाञ्च आत्मनो वै विनिर्ममे ॥१८८

इसके अनन्तर उन्होने त्रेता के मध्य मे अन्य मानसी प्रजा की सृष्टि की थी। जो अपने से, अपने शरीर से और अपनी आत्मा से तुल्य ही थे ॥१८०॥ उस आद्य त्रेता युग मे क्रम से मध्य को प्राप्त होने पर इसके अनन्तर अन्य यहाँ पर मानसी प्रजा के सृजन का उपक्रम किया था । १८१ ॥ इसके पश्चात् उस प्रभु ने सत्व और रजोगुण के उद्रेक वाली प्रजा का सृजन किया जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की तथा आजीविका की साधिका थी ॥ १८२ ॥ देव गण, पितृवृन्द, ऋषि समुदाय और मनुगण ये सब धर्म से युग के अनुरूप ही थे जिन्होने इस सम्पूर्ण प्रजा को विधित किया है ॥ १८३ ॥ उस समय मे स्वयम्भू के उस प्रजा धर्म मे उपस्थित होने पर वह नाना रूप वाली मानसी समस्त प्रजा ने अभिध्यान किया ॥ १८४ ॥ मैंने पहिले तुम से जो जनलोक मे आश्रित रहने वाली बताई थी कल्प के व्यतीत हो जाने पर वह देवाद्या प्रजा यहाँ थी ॥ १८५ ॥ सम्भूति के लिये उपस्थित उस समस्त प्रजा का ध्यान करते हुये उनके यहाँ मन्वन्तर के क्रम से प्रथम कनिष्ठ मे माने गये ॥ १८६ ॥ ख्याति से और सब अर्थों वाले उन-उन अनुबन्धो से भावित प्रजा सर्वदा उन कुशल और अकुशल कर्मों से तथा उन कर्मों के शेष फल से उपलब्ध होती हुई उत्पन्न

हुई ॥ १६७ ॥ देव, असुर, पितृत्व, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष, नारकिकीटत्व आदि भावों के द्वारा उपस्थित अपने आधीनता के लिये प्रजाओं का निर्माण किया ॥ १६८ ॥

॥ देव-सृष्टि वर्णन ॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजाः ॥
तच्छरीरसमुत्पन्नै कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्य स्तस्य धीमतः ॥१
ततो देवासुरपितॄन् मानवञ्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भास्येताश्च स्वात्मना समयूयुजत् ॥२
युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुवः ।
तमभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभून् प्रजापतेः ॥३
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मान स्ततोऽसुराः ॥४
यया सृष्टा सुरास्तन्वा ता तनु स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥५
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रियामिका ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुवः ॥६
दृष्ट्वा सुरास्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ।
अव्यक्ता सत्वबहुला ततस्ता सोऽभ्ययू युजत् ।
ततस्ता युञ्जतस्तस्य प्रियमासीत् प्रभोः किल ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उनके उन कारणों के साथ उनके शरीर से समुत्पन्न कार्यों से मानसी प्रजा को जन्माया। उस धीमान के गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितर और चौथा मानव की सृष्टि करने की इच्छा वाले ने अपनी आत्मा से इनको और जलों को सयोजित कर दिया था ॥ २ ॥ इसके बाद स्वयम्भू के जन्म दाता युक्तात्मा उनके उस सर्ग का अभिध्यान करते हुये प्रजापति का प्रयत्न हुआ ॥३। इसके अनन्तर उसकी जाँघ से पहिले असुर पुत्र उत्पन्न हुये। असु—यह प्राण

कहा गाया है। उनके जन्म देने वाले विप्र हैं। इससे असुर हुये ॥ ४ ॥ जिस शरीर से सुरों का सृजन किया था वह तनु उसने व्यपोहित कर दिया। उससे वह तनु अर्थात् शरीर अपविद्ध हो गया इससे तुरन्त ही रात्रि उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ वह विशेष तम वाली थी इससे वह तीन याम वाली रात्रि हुई। इससे स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात्रि में अन्धकार से एकदम आवृत्त हो गई थी ॥ ६ ॥ देवेश ने सुरों को देखकर अन्य तनु को प्राप्त किया जो कि अव्यक्त और सत्व की प्रचुरता वाली थी। इसके पश्चात् उसने उसको योजित कर दिया था। उसको योजित करने वाले प्रभु का वह बहुत ही प्रिय था ॥ ७ ॥

ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवता ।
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्त्तिता. ॥८
धातुर्द्दिवीति य. प्रोक्त क्रीडाया स विभाव्यते ।
तस्यान्तन्वान्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवताः ॥९
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्या मपद्यत ।
सत्वमात्रात्मिका देवस्ततोऽन्या सोऽभ्यपद्यत ॥१०
पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभुः ।
पितरो ह्यु पपक्षाभ्या राज्यह्लोरन्तरासृजत् ।
तस्मात्ते पितरो देवा. पुत्रत्वन्तन तेषु तत् ॥११
यया सृष्टास्तु पि।रस्तान्तनु स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या प्रजायत ॥१२
तस्मादहस्तु देवाना रात्रिर्या साऽसुरी स्मृता ।
तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी ॥१३
तस्माद्देवासुरा. सर्वे ऋषयो मनवस्तथा ।
ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥१४

दीव्यमान उनके मुख से फिर देवगण उत्पन्न हुये क्योंकि ये दीव्यमान होते हुये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिये ये देवता कहे गये थे ॥ ८ ॥ 'दिवु'—यह धातु जो कहा गया है वह क्रीडा के अर्थ में होता है। उस दीव्यमान तनु में देवता उत्पन्न हुये थे ॥ ९ ॥ फिर देवेश ने देवों का सृजन करके उसके पश्चात्

इसने अन्य शरीर धारण किया। उस देव ने सत्वमात्र के स्वरूप वाले अन्य शरीर को प्राप्त किया था ॥ १० ॥ उस प्रभु ने उन पुत्रों को पिता की भाँति मानते हुये पढ़ाया। ॥ उपपक्षों से पितर थे फिर प्रभु ने रात्रि और दिन के अन्तर भाग का सृजन किया था। इसी से वे देव पितर हुये क्योंकि उनमें उनका पुत्रत्व भाव था ॥ ११ ॥ जिस तनु से पितरों की सृष्टि की थी उस शरीर का उसने त्याग कर दिया। यह शरीर उससे अपविद्ध हो गया था फिर उससे तुरन्त ही सन्ध्या उत्पन्न हो गई थी ॥ १२ ॥ उसमें देवों का दिन हुआ जोकि असुरों की रात्रि कही गई है। उन दोनों के मध्य में जो पैत्री तनू था वह बहुत ही गौरव से पूर्ण था ॥ १३ ॥ उनसे सब देव, असुर ऋषि और मनु युक्त होते हुए ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर की उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽन्या स पुनर्ब्रह्मा तनु वै प्रत्यपद्यत ।
रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत् प्रभु ॥१५
रज प्रायात् तत माऽथ मानसानसृजत् सुतान् ।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजा ॥१६
दृष्ट्वा पुन प्रजाश्चापि स्वान्तनुन्ता मपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तत्र ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥१७
तस्माद्भवन्ति सहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भव प्रजा ।
इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना ॥१८
सद्यो राज्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।
ज्योत्स्ना स ध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मक स्वयम् ।
तमोमात्रात्मिका रात्रि सा वै तस्मात्त्रियामिका ॥१६
तस्माद्देवा दिव्यतत्त्वा दृष्टा सृष्टा मुखात्तु वै ।
यस्मात्तपा दिवा जन्म बलिनस्तन त दिवा ॥२०
तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभु ।
प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तन ते ॥२१

इसके अनन्तर उस ब्रह्मा ने फिर एक अन्य शरीर प्राप्त किया था। वह शरीर रजोगुण के स्वरूप वाला था और उस प्रभु ने मन से सृजन किया

था ।।१५।। इसके अनन्तर उस रजोगुण की बहुलता वाले उस शरीर से मानस पुत्रों का सृजन किया था । फिर उसके मन से मानस प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ उस अपनी मानस प्रजा देखकर उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया क्योंकि वह तनू उससे अपविद्ध होगया था फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गई थी ।।१७।। उससे ज्योत्स्ना के जन्म होने पर समस्त प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई । उस महापुरुष ने इस तरह इतने ये शरीर विशेष रूप से अपविद्ध किये थे ।।१८।। फिर तुरन्त ही रात्रि, दिन, सन्ध्या ज्योत्स्ना (चाँदनी) उत्पन्न हुए । ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिन सत्व मात्र स्वरूप वाले स्वयं ही थे। रात्रि तमो मात्र स्वरूप वाली थी और वह तीन याम (प्रहर) के स्वरूप वाली थी ।। १९ ।। इनसे दिव्य तत्व वाले देव परम हुए और मुख से सृष्ट हुए थे। क्योंकि उनका दिवा मे जन्म हुआ इसलिये वे दिवा के ही बलि-ग्रहण करने वाले हैं ।।२०।। जो असुर रात्रि मे शरीर की जाँघ से प्रभु ने उत्पन्न किये थे वे प्राणो से रात्रि के जन्म ग्रहण करने वाले हैं इसी से वे रात्रि मे असह्य होते हैं ।। २१ ।।

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह ।
पितृणा मानवानाञ्च अतीतानागतेषु वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषा निमित्तानि भवन्ति हि ॥२२

ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या सत्वार्याभासितानि वै ।
भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽय मनीषिभिः ।
व्याप्तिदीप्त्या निगदितः पुनश्चाह प्रजापतिः ॥२३

सोऽम्भास्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् ।
पितृश्च वासृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान् पुनः ॥२४
तामुत्सृज्य तनु कृत्स्नान्ततोऽन्यामसृजत् प्रभुः ।
मूर्ति रजस्तमः प्राया पुनरेवाभ्ययूयुजत् ॥२५
अन्धकारे क्षुधाविष्ट रततोऽन्या सृजते पुनः ।
तेन सृष्टाः क्षुधात्मानस्तेऽम्भास्यादानुमुद्यताः ॥२६
अम्भास्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च ।

राक्षमास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचरा. ॥२७
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भासि तेषा हृष्टाः परम्परम् ।
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका. क्रूरकर्मिणः ॥२८

ये ही भविष्य में होने वाले देवों के असुरों के साथ, पितरों के और *अतीत तथा अनागत मानवों के सबवो के मन्वन्तरो मे निमित्त होते हैं* ॥ २२ ॥ ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार आभासित हैं। जिस कारण से ये भा-युक्त होते हैं इसी से इनका 'भा' यह शब्द मनीषियो ने व्याप्ति और दीप्ति इन दोनो के कारण से कहा है और फिर प्रजापति ने भी कहा है ॥२३॥ उसने इन जलों को देखकर तथा देव, दानव, मानव और पितरों को देखकर उसने आत्मा से फिर अन्य देवो को सृजित किया ॥ २४ ॥ प्रभु ने उस अपने सम्पूर्ण शरीर को उत्सृष्ट करके फिर अन्य शरीर का सृजन किया और फिर रजोगुण और तमोगुण की बहुलता वाले शरीर को अभियोजित किया था ॥ २५ ॥ उस अन्धकार मे क्षुधा से आविष्ट होते हुए उसने फिर अन्य तनू का सृजन किया। उससे सृजित हुए क्षुधात्मा के अम्भो को लेने के लिये उद्यत हो गये थे ॥२६॥ हम इन जलो की रक्षा करते हैं इस प्रकार से कहे गये वे उनमे राक्षस कहलाये थे जोकि लोक मे क्रोधात्मा निशाचर थे ॥२७। जिन्होंने उनमें परस्पर में परम प्रसन्न होते हुए यह कहा कि हम इन जलो को क्षीण करते हैं। इस कर्म से यक्ष और क्रूर कर्म करने वाले गुह्यक हुए ॥ २८ ॥

रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ।
य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे सन्निरुच्यते ॥२९
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यंत धीमतः ।
शीतोष्णाच्चोच्छ्रिता ह्यूर्ध्वं तदारोहन्त त प्रभुम् ॥३०
हीना मच्छिरमो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिनाः ।
व्यालात्मानः स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहयः स्मृता. ॥३१
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिण. ।
तेषा पृथिव्या निलया सूर्याचन्द्रमसोरधः ॥३२
तस्य क्रोधोद्भवो योऽग्रायग्निगर्भस्सुदारुण. ।

स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकान् ॥३३
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥३४
भूतत्वात्ते स्मृता भूता पिशाचाः पिशिताशनात् ।
वयतो गास्तनस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ॥३५
ध्यायतीत्येष धातुर्वै यात्रार्थे परिपठ्यते ।
पिवतो जज्ञिरे गास्तु गधर्वास्तेन ते स्मृता ॥३६

यह धातु-रक्षण और पालन के अर्थ मे विभावित होता है । जो क्षिति धातु है वह क्षयण मे कही जाती है ॥२६॥ अप्रिय उसने उनको देखा धीमान् उसके केश विशीर्ण हो गये थे और शीत और उष्णता से ऊर्द्ध को उद्विग्न होते हुए उस प्रभु का आरोहण किया ॥ ३० ॥ मेरे शिर से हीन ह अपसर्पित हो गये इससे व्याल कहे गये और व्याल से हीनता होने के कारण अहि कहलाये गय हैं ॥३१॥ पन्नत्व होने से ये पन्नग कहे गये और सर्पण करने वाले होने के कारण सर्प कहलाये गये हैं । उनका सूर्य और चन्द्रमा अधोभाग मे पृथिवी मे निलय है ॥३२॥ उसके क्रोध से उत्पन्न होने वाला यह अग्नि गर्भ है वह बहुत ही सुदारुण है और वह सर्पों के साथ उत्पन्न विषात्मकों में आविष्ट हो गया ॥३३॥ इसके अनन्तर सर्पों को देखकर क्रोध क्रोधात्माओं का निर्माण किया वे कपिश वर्ण से उग्र मांस को खाने वाले भूत हुए ॥३४॥ भूतत्व होने से वे भूत कहे गये और पिशित (मांस) अशन (भोजन) करने से पिशाच कहलाये गये हैं । वय से गा और उ पश्चात् उस समय उसके गन्धर्व उत्पन्न हुये ॥३५॥ "ध्यायति"—यह धातु य के अर्थ मे परिपठित की जाती है । पीते हुए गा के उत्पन्न हुए थे इसलिये गन्धर्व कहे गये हैं ॥३६॥

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभु ।
तत स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वय सोऽसृजत् ॥३७
छान्दतस्तानि छन्दांसि वयसोऽपि वयांस्यपि ।
दृष्ट्वान् दृष्ट्वा तु देवो वैऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥३८

मुखतोऽजान् ससर्ज्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ॥३९
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतराश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ॥४०
ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ।
एवं पश्वोषधी. सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥४१
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्द्दभौ ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यारच निबोधत ॥४२
श्वापदा द्विखुरोहस्ती वानरः पक्षिपञ्चमाः ।
उन्दकाः पशव सृष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपा. ॥४३

इन आठ देव-योनियो की सृष्टि कर लेने पर उस प्रभु ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दता से वय से अन्य पशु-पक्षियों का सृजन किया ॥३७॥ छाग से उन छन्दो को वय से भी वयो को सृजा तथा देव ने शून्यों को देखकर पक्षियो के समुदाय का भी सृजन किया था ॥३८॥ मुख से अजो का उत्पन्न किया, वक्ष. स्थल से वय का सृजन किया तथा ब्रह्माजी ने उदर से और पार्श्वो से गा व सृजन किया था ॥३९॥ पैरों से घोड़ों को, मातङ्गों को, शरभों को, गवयों को मृगो को, उष्ट्रों को और अश्वतरों को तथा इनकी अन्य जाति वालों का निर्माण किया ॥४०॥ ओषधियाँ, फल और मूल उसके रोम से उत्पन्न हुए। इस तरह से पशु-औषधियों का सृजन करके उस प्रभु ने अध्वर में नियोजन किया था ॥४१॥ इससे आदि मे कल्प के त्रेतायुग मे मुख गो, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ—इनको ग्राम्य पशु कहते हैं। अब आगे अरण्य पशुओं को समझ लो ॥४२॥ श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी पञ्चम, उन्दक, पशु और सप्तम सरीसृपों सृजन किया ॥४३॥

गायत्रं वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥४४
छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म स्तोमं पञ्चदशन्तथा ।

बृहत्साममयोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥४५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोम पञ्चदशन्तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभ सर्वराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनू पि च ।
वयासि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभु ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्ग सृजतो हि प्रजापते ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टय पूर्व देवासुरपितॄन् प्रजा ।
तत सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र, वरुण, त्रिवृ सौम्य, रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञो को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखो मे जो प्रथम था उनसे उक्त प्राणियो की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रैष्टुभ, कर्म, स्तोम, पञ्चदश, बृहत्साम उक्थछन्दों को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम, जगती छन्दोस्तोम, पञ्चदश, वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश, अथर्वाण, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुभ और सर्वराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत, अशनि (वज्र), मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष और कल्प की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि मे सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रो अर्थात् शरीराङ्गो से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव, असुर, पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत, स्थावर और चरो का सृजन करते हैं ॥५०॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षासि वय पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्यय चैव यदिद स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषा ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्या प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुन पुन ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूताना धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहु कर्म च मानवा: ।
दैवमित्यपरे विप्रा स्वभाव दैवचिन्तका ॥५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावत: ।
न चैक न पृथग्भावमधिक न तयोर्विदु ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयु सत्त्वस्था समदर्शिन ।
नामरूपञ्च भूताना कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओ का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय व्यय स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया । इनमे जिन्होने जो कर्म पहिले सृष्टि मे प्राप्त किये थे वे पुन पुन सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१-५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओ से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतो में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वय किया था ॥५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव मे ही हुआ करती है । न तो ये दोनों एक ही हैं न ये दोनो पृथक् ही होते हैं और न उन दोनो मे कोई अधिक ही है । इस प्रकार से यह दोनो न एक ही हैं और न दो अलग अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण मे स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

पुरुष कर्मों म स्थित रहने वाले त्रिपथा को जीना करते हैं। महेश्वर उस भगवान ने आदि मे त्रिनिर्मित भूता के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च शब्दों से ही सृष्ट किये हैं ॥५७॥

ऋषीणा नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टय ।
शर्वर्यन्ते प्रसूताना तान्येवास्य ददाति सः ॥५८
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥५९
एवविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ।
शर्वयन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥६०
एव भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदास्य ता प्रजा सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमत ॥६१
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुमाङ्गिरसन्तथा ॥६२
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठ चैव मानसम् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता ।
तेषा ब्रह्मात्मकाना वै सर्वेषा ब्रह्मवादिनाम् ॥६३

ऋषियो के नामधेय अर्थात् नाम और देवो मे जो दृष्टियाँ हैं वे सब रात्रि के अन्त मे प्रसूत होने वालों के वही उनको करता है ॥५८॥ ऋतुओं के अनुसार जो ऋतुओं के चिह्न होते हैं और अनेक प्रकार के स्वरूप होते हैं जबकि उनका परिवर्तन हुआ करता है वे सब युगादिकों मे उस तरह के भाव वे वे ही दिखाई दिया करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार से अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस रीति से की हुई सृष्टियों मे रात्रि के अन्त मे मानसी सिद्धि का आश्रय करके दिखलाई दिया करते हैं ॥ ६० ॥ इस तरह से ब्रह्माजी ने चर और स्थावर भूतों की सृष्टि की किन्तु इनकी वह सृजन की हुई समस्त प्रजा जब वृद्धि प्राप्त करती हुई नहीं हुई तो धीमान् ब्रह्मा ने अपनी ही आत्मा के सदृश अन्य मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके नाम भृगु पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, आङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ये होते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी

और ब्रह्मा मक अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप वाले ही थे जिनको कि पुराण में निश्चित रूप से 'नव ब्रह्मा' ऐसा ही कहा गया है ॥६१–६२–६३॥

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्र रोषात्मसमभवम् ।
सकल्प चैव धर्म च पूर्वेषामपि पूर्वज ॥६४
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मन समान् ।
सनन्दन सनक विद्वास च सनातनम् ॥६५
सनत्कुमार च विभु सनक च सनन्दनम् ।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातना ॥६६
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सरा ।
तेष्वेव निरपेक्ष्येषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥६७
हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।
तस्य रोषात्समुत्पन्न पुरुषोऽर्कसमद्युति ।
अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसाज्वलनोपम ॥६८
सर्व तेजोमय जातमादित्यसमतेजसम् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९
एवमुक्त्वा द्विधाभूत पृथक् स्त्री पुरुष पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥७०

इसके उपरान्त पूर्व में होने वालो मे भी सबसे पहिले जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा ने रोषात्म सम्भव रुद्र का सृजन किया और सकल्प तथा धर्म का सृजन किया था ॥६४॥ पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही तुल्य मानस सनक के सहित सनन्दन परम विद्वान् सनातन और विभु सनत्कुमार का सृजन किया था किन्तु वे लोकों के सृजन कर्म मे निरपेक्ष होने के कारण प्रवृत्त ही नहीं हुए थे ॥ ६५–६६ ॥ वे सबके सब ज्ञानोदय हो जाने वाले, वीतराग अर्थात् परम वैराग्य मे परिपूर्ण रहने वाले और मत्सरता मे रहित थे। इस प्रकार से लोक वृत्त के अनुकरण मे बिल्कुल ही अपेक्षा न रखने वाले उनके होने पर ब्रह्माजी चिन्तित हुए ॥ ६७ ॥ उस समय लोक सृजन एव बराबर उनके वर्धन के अपने कार्य मे असफल रहने हुए हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ने मन मे बहुत ही चिन्ता की

थी। उस चिन्तन काल मे उनके रोष से समुत्पन्न सूर्य के समान द्युति वाला, अर्धनारीश्वर पुरुष सामने हुआ जो इतना तेज युक्त था जैसे कि साक्षात् अग्नि ही हो ॥६८॥ वह आदित्य के समान तेज वाला समस्त तेज से पूर्ण उत्पन्न हुआ और अपने आपका विभाजन करो यह कहकर वहीं पर ही अन्तर्हित हो गया ॥ ६॥ इस प्रकार कहकर पुरुष और स्त्री पृथक् पृथक् होकर दो रूपो में ईश्वर ने अपने आपके अर्ध भाग को एकादश प्रकार से जन्म दिया अर्थात् उत्पन्न किया था ॥७०॥

तेनोक्तास्ते महात्मान सर्व एव महात्मना ।
जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिण ॥७१
लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिता ।
विश्व विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥७२
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्तत ।
रोदनाद्द्रावणच्चैव रुद्रा नाम्नेति विश्रुता ॥७३
यैर्हि व्याप्तमिद सर्व त्रैलोक्य सचराचरम् ।
तेषामनुचरा लोके सर्वलोकपरायणा ॥७४
नैकनागा युनवना विक्रान्ताश्च गणेश्वरा ।
तत्र या सा महाभागा शकरस्यार्द्धकायिनी ॥७५
प्रागुक्ता तु मया तुभ्य स्त्री स्वयभोर्मुखोद्गता ।
कायार्द्ध दक्षिणन्तस्या शुक्ल वाम तथाऽसितम् ॥७६
आत्मान विभजस्वेति प्रोक्ता देवी स्वयभुवा ।
सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजा ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्व सुसमाहिता ॥७७

उन महान् आत्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सभी महात्मा जोकि हित के चाहने वाले थे जगत् की बहुलता को करने की भावना मे अधिकार वाले हुए ॥ ७१ ॥ आप सब अतन्द्रित होते हुए लोक के वृतान्त के लिये पूर्ण प्रयत्न करो अर्थात् विश्व की रचना करने मे आलस्य का त्याग कर पूरा पूरा यत्न करो। लोक की स्थापना और विश्व का हित करना ही तुम्हारा पूर्ण

कर्त्तव्य है ॥ ७२ ॥ जब ब्रह्माजी ने लोक की रचना एवं स्थापना तथा विश्व के हित के कार्यों की निर्मिति के लिये उनसे कहा तो वे सब ओर से रुदन करने लगे और एकदम द्रवीभूत हो गये। अतएव रोदन करने से तथा उनके द्रावण होने से उनका नाम संसार में 'रुद्र'—यह प्रसिद्ध हो गया था ॥७३॥ जिनके द्वारा यह समस्त चर और अचर स्वरूप वाला त्रैलोक्य व्याप्त हो गया था वे भगवान् रुद्र थे। उनके अनुचर लोक में समस्त लोक कार्यों में परायण हुए ॥ ७४ ॥ वे गणेश्वर अनेक नागों के बल के तुल्य बल वाले और परम विक्रम से युक्त थे। और वहाँ पर भगवान् शङ्कर के अर्ध शरीर वाली जो वह परम महान् भाग वाली थी ॥७५॥ पहिले मैंने तुमसे स्वयम्भू के मुख से उत्पन्न हुई स्त्री के विषय में बतलाया था। उसका दक्षिण काया का अर्ध भाग शुक्ल तथा वाम अर्ध भाग असित था ॥ ७६ ॥ हे द्विज वृन्द! आत्मा का विभाजन करो इस प्रकार से भगवान् स्वयम्भू के द्वारा कही गई वह शुक्ल और कृष्ण दो प्रकार की हो गई थी। अब उनके नाम मैं बतलाता हूँ उन्हें तुम लोग सावधान होकर श्रवण करो ॥ ७७ ॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मी सरस्वती।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला ॥७८
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः।
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ॥७९
विश्वरूपमथार्याया पृथग्देहविभावनात्।
शृणु सङ्क्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्वशः ॥८०
प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ॥८१

द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ॥८२
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला।
बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ॥८३
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी।

अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ॥८४
एकानसा दैत्यहनी माया महिषमर्दिनी ।
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका ॥८५
देवीनामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ।
भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः ॥८६

उनके नाम—स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा हैं जो लोक में 'गौरी'–इस नाम से विश्रुत हुई हैं ॥७८–७९॥ अब इस आर्या का जो विश्व रूप है जिसका पृथक् देह की विभावना से प्राकट्य हुआ है, उसका पूरा हाल यहाँ आनुपूर्वी के अनुसार संक्षेप में श्रवण करो ॥८०॥ प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती भूतनायिका ये उसके नाम होते हैं ॥८१॥ अब द्वापर के अन्त तक विकारों में जो उसके नाम हैं उनका श्रवण करो—गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्ण पिङ्गला, बर्हिर्ध्वजा, शूलधरा, परम ब्रह्मचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, एक वाससी, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानसा, दैत्यहनी, माया, महिषमर्दनी, अमोघा, विन्ध्य निलया, विक्रान्ता, गण नायिका ये देवियों के क्रम के अनुसार विकार रहित नाम हैं। तुमको भद्रकाली के नामों को तत्त्व रूप से बतला दिया गया है ॥८२–८३–८४–८५–८६॥

ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभव. ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि पुरे वापि गृहेऽपि वा ॥८७
रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वापि स्थलेऽपि वा ।
व्याघ्रकुम्भीरचोरेभ्यो भूतस्थाने विशेषत: ।
आधिष्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्त्तयेत् ॥८८
अर्भकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभि सदा ।
अभ्यर्दिनानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥८९
महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते ।

नाम्या देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥९०
साऽसृजद् व्यवसायन्तु धर्मं भूतसुखावहम् ।
सङ्कल्पञ्चैव कल्पादौ जज्ञिरेऽव्यक्तयोनित ॥९१

जो पुरुष उन नामों का पाठ करते हैं उनका अरण्य में, प्रान्तर में, पुर में तथा घर में भी कहीं भी कभी कोई पराभव नहीं होता है ॥८७॥ यह सर्वत्र रक्षाकारक है और जल में अथवा स्थल में भी इससे रक्षा होती है। व्याघ्र, कुम्भीर और चोरों से विशेष रूप से भूतस्थान में तथा समस्त आधियों में देवी के शुभ नामों का कीर्तन करना चाहिए ॥८८॥ अभक ग्रह और भूतों से तथा सर्वदा पूतना मातृकाओं से जो बालक अभ्यर्दित होते हैं अर्थात् सताये हुए होते हैं, उनकी इस देवी की नामावली से रक्षा करनी चाहिए ॥८९॥ महादेवी के पुर में प्रज्ञा और श्री य दोनो प्रकीर्तित होती हैं। इन दोनों से देवी के सहस्र नाम होते हैं जिनसे यह समस्त जगत् व्याप्त हो रहा है ॥९०॥ उस देवी ने व्यवसाय का सृजन किया तथा सबको सुख प्रदान करने वाले धर्म और सङ्कल्प को कल्प के आदि में अव्यक्त योनि से उत्पन्न किया ॥९१॥

मानसश्च रुचिर्नाम विज्ञेयो ब्रह्मण सुत ।
प्राणात् स्वादसृजद्दक्ष-चक्षुर्भ्याञ्च मरीचिकम् ॥९२
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषि सलिलजन्मन ।
शिरसोऽङ्गिरसञ्चैव श्रोत्रादत्रिन्तथैव च ॥९३
पुलस्त्यञ्च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलह पुन ।
समानज वसिष्ठन्तु अपा नान्निर्ममे क्रतुम् ॥९४
अभिमानात्मक भद्र निर्ममे नीललोहितम् ।
इत्येते ब्रह्मण पुत्रा प्रागजा द्वादश स्मृता ॥९५
इत्येते मानसा पुत्रा विज्ञेया ब्रह्मण सुता ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न चैते ब्रह्मवादिन ॥९६
गृहमेधिन पुराणास्ते धर्मस्तै प्राक् प्रवर्त्तित ।
द्वादशैते प्रवर्त्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजा ॥९७
ऋभु सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नो पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ ॥९८

ब्रह्मा का मानस पुत्र रुचि–इस नाम वाला जानना चाहिए। अपने प्राण से ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया और चक्षुओं से मरीचि को जन्म दिया था। ।।९२।। भृगु हृदय से उत्पन्न हुए अर्थात् सलिल से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के हृदय से भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। शिर से अङ्गिरस की तथा श्रोत्र से अत्रि ऋषि का जन्म हुआ था।।९३।। उदान से पुलस्त्य को, ध्यान से पुलह को, समान से वसिष्ठ को अपान से क्रतु को और अभिमान के स्वरूप वाले नील लोहित भद्र को निर्मित किया था। ये बारह प्राण से जन्म लेने वाले ब्रह्मा के पुत्र कहलाये थे।।९५।। ये ब्रह्मा के पुत्र मानस जानने चाहिए और जो भृगु आदि का सृजन किया था वे ब्रह्मवादी नहीं थे।।९६।। वे सब पुराण गृहमेधी अर्थात् पुराने गृहस्थ थे जिन्होंने प्रथम धर्म को प्रवृत्त किया था। ये बारह रुद्र के साथ प्रजा के सृजन में प्रवृत्त होते हैं।।९७।। ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ऊर्ध्वरेता थे। ये उनसे पहिले प्राचीन समय में उत्पन्न हुए थे और ये दोनों सभी के पूर्वज थे।।९८।।

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाधकौ।
वैराजे तावुभौ लोके तेज सक्षिप्य चास्थितौ।।९९
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि।
प्रजाधर्मञ्च कामञ्च वर्त्तयेता महौजसा।।१००
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते।
तस्मात्सनत्कुमारोयमिति नामास्य कीर्तितम्।।१०१
तेषा द्वादश ते वशा दिव्या देवगुणान्विता।
क्रियावन्त प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता.।।१०२
इत्येष करणोद्भूतो लोकान् सष्ट्व स्वयभुव।
महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृते स्वयम्।।१०३
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृत।।१०४
पुरैश्च विविधाकारैः प्रीतैर्जनपदैस्तथा।
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम्।।१०५

वैराज नामक प्रथम कल्प के व्यतीत होने पर लोकों के साधक वे दोनों लोक में तेज का सक्षेप करके आस्थित रहे थे ॥ ९९ ॥ योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा मे आत्मा को आरोप करके महान् ओज से प्रजा धर्म और काम को बरतते थे ॥ १०० ॥ ज्यो ही यहाँ उत्पन्न हुये वैसे ही कुमार यह कहे जाते हैं। इसी कारण से यह सनत्कुमार हैं—इस प्रकार से इनका नाम कीर्तित हुआ है ॥ १०१ ॥ उनके वे देव गुणो से युक्त दिव्य द्वादश वंश हुए जो महर्षियो से अलङ्कृत क्रिया वाले और प्रजा वाले थे ॥ १०२ ॥ यह करण से उद्भूत स्वयम्भू के लोकों का सृजन करने के लिये महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक स्वय प्रकृति का विकार है ॥ १०३ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा के आलोक (प्रकाश) वाला, ग्रहो और नक्षत्रो से विभूषित तथा नदियो, समुद्रो और पर्वतो से समावृत—अनेक प्रकार के आकार वाले, पुरो से एव प्रीतियुक्त जनपदो से आवृत ऐसे उस अव्यक्त ब्रह्म-वन मे ब्रह्मा शर्वरी (रात्रि) को बिताते हैं ॥१०४—१०५ ॥

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥१०६

महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवास्तथा ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०७

आजीवः सर्वभूतानामय वृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मबल चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥१०८

अव्यक्त कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
इत्येषोऽनुग्रह- सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु य· ॥१०९

मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रैकाले समवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिन- ॥११०

सर्गाः परस्परस्याथ कारणं ते बुधैः स्मृताः ।
दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्तिनान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥१११

द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्र स्तुवन्ति खन्नाभि वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिश श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमि,
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूत प्रसूति ॥११२
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणा सम्प्रसूता यद्वक्षस्त क्षत्रिया. पूर्वभागे ।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्रा,
सर्वे वर्णा गात्रत सम्प्रसूताः ॥११३
महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोका कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्थित हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला, बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर कोटर वाला, महाभूतों की प्रशाखाओं वाला, विशेषों के दो पत्तों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित, सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बल होता है ॥ १०६—१०७—१०८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सद् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १०९ ॥ मुख्य आदि छै सर्ग वैकृत और बुद्धिपूर्वक होते हैं। वे अभिमान वाले ब्रह्मा के त्रैकाल में होते थे ॥ ११० ॥ विद्वानों ने उन सर्गों को ही पर स्वर के कारण कहा है। सुन्दर पर्वों वाले, सयुग और शाखाओं से युक्त दिव्य यह विद्रुम हैं। जो इस द्रुम का ज्ञान रखता है वह सर्वात्मा से अन्य नहीं है ॥ १११ ॥ जिसके द्यौ रूपा मूर्धा का ब्राह्मण स्तवन किया करते हैं, आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं, वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, वक्षस्थल से क्षत्रिय, उरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही उद्भूत हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर है और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है, अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने य सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

॥ मन्वन्तरादि वर्णन ॥

एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा।
यदा ता न प्रवर्तन्ते प्रजाः केनापि हेतुना ॥१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखितः।
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥२
अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्।
राजसत्वं पराजित्य वर्त्तमानं स धर्मतः ॥३
तप्यते तेन दुःखेन शोकं चक्रे जगत्पतिः।
तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ॥४
तत्तमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत।
अधर्माचरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ॥५
तस्मिन्समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि।
ततश्च भगवानासीत् प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् ॥६
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम्।
द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥७
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत।
प्राकृतां भूतधात्रीं तां कामाद्वै सृष्टवान् विभुः ॥८

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से होने वाले लोकों में जब लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा किसी भी हेतु से वह प्रजा प्रवृत्त न हुई तब तमोमात्र से आवृत ब्रह्मा भी तभी से लेकर अत्यन्त दुःखित हुये। इसके अनन्तर उन्होंने अर्थ के निश्चय करने वाली बुद्धि बनाई ॥ १—२ ॥ इसके अनन्तर उनने धर्म से वर्त्तमान राजसत्व को पराजित करके तमोमात्रा की नियामक बुद्धि को आत्मा में सृजन किया था ॥ ३ ॥ उस दुःख से वह तप्यमान होते हैं और जगत्पति ने बड़ा शोक किया था। उससे तम का विनाशन किया और रजोगुण ने तमोगुण आवृत कर लिया था ॥ ४ ॥ प्रतिनुत्त हुए उस तम से मिथुन की उत्पत्ति हुई। अधर्म के आचरण से हिंसा और शोक से उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् चरणात्मा मिथुन के समुत्पन्न होने पर इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हुए

द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्राःस्तुवन्ति खंनाभि वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः,
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूत प्रसूतिः ॥११२
वक्त्रायस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूताः यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे ।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः,
सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः ॥११३
महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्थित हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला, बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर कोटर वाला, महाभूतों की प्रशाखाओं वाला, विशेषों के से पत्रों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित, सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बल होता है ॥ १०६—१०७—१०८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सद् तथा असद् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १०९ ॥ मुख्य आदि छः सर्ग वैकृत और बुद्धिपूर्वक होते हैं। वे अभिमान वाले ब्रह्मा के त्रैकाल में होते थे ॥ ११० ॥ विद्वानों ने उन सर्गों को ही परस्पर के कारण कहा है। सुन्दर पर्ण वाले, सपुष्प और शाखाओं से युक्त दिव्य पद विद्रुम हैं। जो एक द्रुम का ज्ञान रखता है वह सर्वात्मा से अन्य नहीं है ॥ १११ ॥ जिसके द्यौ रूपी मूर्धा का ब्राह्मण स्तवन किया करते हैं, आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं, वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, वक्षःस्थल से क्षत्रिय, उरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही उद्भूत हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर हैं और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है, अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने ये सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

और इस प्रकार से सेवन किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उस अभास्वर शरीर का अपोह कर दिया और उसने उस देह के दो भाग कर दिए। आधे भाग से वह पुरुष हुए और आधे शरीर के भाग से उसकी नारी शतरूपा उत्पन्न हुई। विभु ने भूतों की प्राकृत धात्री उसको प्राप्तकर कामनाओं की सृष्टि की थी ॥ ७—८ ॥

सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता।
ब्रह्मण सा तनु पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति ॥६
या त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत।
सा देवी नियुतन्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०
भर्तारन्दीप्तयशस पुरुष प्रत्यपद्यत।
स वै स्वायम्भुव पूर्व पुरुषो मनुरुच्यते ॥११
तस्यैकसप्ततियुग मन्वन्तरमिहोच्यते।
लब्धा तु पुरुष पत्नी शतरूपामयोनिजाम् ॥१२
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते।
प्रथम सम्प्रयोग स कल्पादौ समवर्त्तत ॥१३
विराजमसृजत ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट्।
सम्राड्मानसरूपात्तु वै राजस्तु मनु स्मृत ॥१४

वह अपनी महिमा से दिव और पृथिवी में व्याप्त होकर अधिष्ठित हुई। ब्रह्मा का वह पूर्व तनु दिव को आवृत करके अधिष्ठित होता है ॥ ६ ॥ जिस शरीर ने अपने अर्धभाग से नारी का सृजन किया और शतरूपा समुत्पन्न हुई। उस देवी ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चार तप किया था ॥ १० ॥ ऐसी उग्र तपश्चर्या करके उसने दीप्त यश वाले अपना स्वामी पुरुष प्राप्त किया था और वह पुरुष प्रथम स्वायम्भुव मनु इस नाम से कहा जाता है ॥ ११ ॥ यहाँ पर उसका एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगपर्यन्त मन्वन्तर कहा जाता है। पुरुष ने अयोनिजा अर्थात् योनि उत्पन्न न होने वाली शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥ १२ ॥ वह उसके साथ रमण करते हैं इसीलिये वह रति कही जाती है। कल्प के आदि में वह प्रथम साम्प्रयोग हुआ ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जी ने

विराट् का सृजन किया सो वह पुरुष विराट् हो गया था। मानस रूप से सम्राट् वैराज मनु कहा गया है ॥ १४ ॥

स वैराज. प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषो मनुः ।
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥१५
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः ॥१६
देवी नाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे ।
स्वायम्भुवः प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजत्प्रभुः ॥१७
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते ।
रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत् ॥१८
आकूत्यां मिथुनं यज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतु ॥१९
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२०
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृता. ।
अजिताश्चैव शुकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणः स्मृतौ ॥२१

वह वैराज प्रजासर्ग है और वह सर्ग मे पुरुष मनु है। वीर वैराज पुरुष से शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ पुत्रवानो मे परम श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और दो महान् भाग्यशालिनी कन्याऐं हुई जिन दोनो से ये समस्त प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ नाम से वे देवी आकूति और प्रसूति थी जो कि अत्यन्त शुभ थी। स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति को दक्ष के लिये दान करके दिया था ॥ १७ ॥ प्राण को दक्ष समझ लेना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है। प्रजापति रुचि के लिए आकूति को दे दिया ॥ १८ ॥ आकूति मे मानस के यज्ञ मे शुभ मिथुन हुआ। यज्ञ और दक्षिणा यह यमल (जोडली सन्तति) पैदा हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञ के दक्षिणा मे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायम्भुव के अन्तर में 'यामा' इस नाम से आख्यात हुए थे ॥ २० ॥ यम के पुत्र थे इससे यज्ञ के याम कहे गये हैं। अजित और शुक ये दो गण ब्राह्मण कहे गये हैं ॥२१॥

यामा पूर्वं परिक्रान्ता यत सञ्ज्ञा दिवौकस ।
स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्या लोकमातरः ॥२२
तस्या कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभु ।
सर्वास्ताश्च महाभागा सर्वा कमललोचना ॥२३
योगपत्न्यश्च ता सर्वा. सर्वास्ता योगमातर ।
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टि पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपु शान्ति सिद्धि. कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥२४
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणी प्रभु ।
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥२५
ताभ्य शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचना. ।
ख्याति सत्यथ सभूति. स्मृति प्रीति. क्षमा तथा ॥२६
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
तास्तत प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षय ॥२७
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु ।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥२८

याम पहिले परिक्रान्त हुए इसलिए दिवौकस सञ्ज्ञा हुई। स्वायम्भुव सुता प्रसूति मे दक्ष ने लोकमातर चौबीस कन्याओ को उत्पन्न किया था। ये सभी महान् भाग वाली और सभी कमल के समान सुन्दर नेत्रो वाली परम सुन्दरी थी ॥ २२—२३ ॥ वे सभी योग पत्नियाँ थी और सब योगमाताऐं थी। श्रद्धा, लक्ष्मी धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति इन तेरहों को दाक्षायणी प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप मे ग्रहण कर लिया था। इसके ये द्वार स्वयम्भू ने किए थे ॥ २४—२५ ॥ उनसे शेष यवीयान की एकादश सुलोचनाऐं थी जिनके नाम ये हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा ये ग्यारह है। उनको फिर अन्य महर्षियो ने ग्रहण किया था। उन महर्षियो के नाम ये हैं—रुद्र, भृगु मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि य महर्षियो के नाम थे ॥ २६—२७—२८ ॥

के विनय नामक पुत्र प्रसूत हुआ तथा व्यवसाय नाम वाला पुत्र वपु का हुआ था ॥ ३५ ॥

क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत ।
यश. कीर्त्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः ॥३६
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्या रत्या व्यजायत ।
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्त्तित ॥३७
जज्ञे हिंसास्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ ।
निकृत्यानृतयोर्जज्ञे भय नरक एव च ॥३८
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः ।
भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३९
वेदनायास्ततश्चापि दुःख जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिज्वरा शोकाः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।
दुःखान्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥४०
तेषा भार्याऽस्ति पुत्रो वा ते सर्वे निधनाः स्मृता ।
इत्येव तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥४१
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।
सोऽभिध्याय सती भार्यामिर्ममे ह्यात्मसम्भवाम् ॥४२

शान्ति के क्षेम और सिद्धि का सुख पुत्र हुआ । कीर्ति का यश हुआ इतने वे धर्म पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ काम का हर्ष नामक पुत्र देवी रति से उत्पन्न हुआ । यह धर्म का सुखोदर्क अर्थात् सुखप्रदान करने वाला सर्ग हुआ जो कि बताया गया है ॥ ३७ ॥ हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे । निकृति और अनृत के भय तथा नरक समुत्पन्न हुए ॥३८॥ इन दोनों के माया और वेदना इनका जोडा पैदा हुआ जो भय से जन्म ग्रहण किया था । उस माया ने समस्त भूतों के अपहरण करने वाली मृत्यु को जन्म दिया था ॥ ३९ ॥ वेदना ने रौरव से दुःख को जन्म दिया था । मृत्यु ने व्याधि ज्वर, शोक और असूया ने क्रोध को उत्पन्न किया ये सब दुःखान्तर अधर्म के लक्षण वाले हुए हैं ॥ ४० ॥ उनकी भार्या अथवा पुत्र वे सभी निधन कहे गये

हैं। यह इतना तामस सर्ग था जो धर्म का नियामक हुआ है ॥ ४१ ॥ 'प्रजा का सृजन करो—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा नीललोहित जब आदेश प्राप्त करने वाला हुआ तो उसने आत्मा से सम्भूत होने वाली सती का अभिध्यान करके उसे अपनी भार्या बनाया था ॥ ४२ ॥

नाधिकांश्च च हीनास्तान्मानसानात्मनः समान् ।
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत् कृत्तिवाससा ।
तुल्यांश्चैवात्मनः सर्वे रूपतेजोबलश्रुतैः ॥४३
पिङ्गलान् सनिषङ्गांश्च सकपर्दान् विलोहितान् ।
विवासान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ॥४४
बहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः ।
रथिनो वर्मिणश्चैव धर्मिणश्च वरूथिनः ॥४५
सहस्रशत बाहूंश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ।
स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रानुद्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ॥४६
अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपांस्तथा ।
मेदपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यव ॥४७
सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनो ह्यवर्मिणः ।
आसीनान् धावतश्चैव जृम्भितश्चैव धिष्ठितान् ॥४८
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽध्यायतस्तथा ।
ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥४९

तब कृत्तिवासा ने न ज्यादा अधिक और न ज्यादा हीन ऐसे अपने ही समान मानस पुत्र जो सहस्रों के सहस्र थे उत्पन्न किये जो कि रूप, तेज और बल से सब अपनी आत्मा के ही बिल्कुल तुल्य थे ॥ ४३ ॥ अब यहाँ उनके ही रूप, गुण तथा आकारादि का वर्णन किया जाता है कि वे किस प्रकार के थे—पिङ्गल, सनिषङ्ग, सकपर्द, विलोहित, विवास, हरिकेश, दृष्टिघ्न और कपाली थे ॥ ४४ ॥ फिर वे विरूप, बहुरूप, विश्वरूप, रूपी, रथी, वर्मी, धर्मी और वरूथ वाले थे जिनको कि उत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ सहस्र शत बाहु वाले दिव्य, भूमि और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, स्थूल शीर्ष वाले

आठ दाढों वाले, दो जिह्वाओं वाले और तीन नेत्रों वाले थे ॥ ४६ ॥ अन्नाद अर्थात् अन्न को भक्षण करने वाले, पिशिताद अर्थात् मांसाशी, घृत पीने वाले, सोम का पान करने वाले, मेदप, अतिकाया वाले, शिति कण्ठ और अत्यन्त उग्र क्रोध वालों का सृजन किया ॥ ४७ ॥ सोपासङ्ग तलत्रों को, धन्वियों को, उपवर्मियों को, आसीनों को, दौड़ते हुओं को, जँभाई लेने वालों को और अधिष्ठितों को उत्पन्न किया था । ४८ ॥ अध्यापन करने वाले, जपते हुए, योग करते हुए, अध्ययन करते हुए, ज्वलित होते हुए, बर्षते हुए, द्योतमान तथा प्रधूपितों का सृजन किया ॥ ४९ ॥

वृद्धान् वृद्धतमांश्चैव ब्रह्मिष्ठान् शुभदर्शनान् ।
नीलग्रीवान् सहस्राक्षान् सर्वांश्चाथ क्षपाचरान् ॥५०
अदृश्यान् सर्वभूतानां महायोगान् महौजसः ।
रुदतो द्रवतश्चैव एवंयुक्तान् सहस्रशः ।
असृजत्स महातेजा रुद्ररूपान् सुरोत्तमान् ॥५१
ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेनान्मामाक्षोरीदृशीः प्रजाः ।
सृष्टव्या नात्मनस्तुल्या प्रजा नैवाधिकास्त्वया ।
अन्याः सृज त्वं भद्रन्ते स्थितोऽहन्त्वं सृज प्रजाः ॥५२
एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिता ।
सहस्राणां सहस्रन्तु आत्मनोपमनिश्चिता ॥५३
एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः ।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुताः ॥५४
शतरुद्रसमाम्नाता भविष्यन्तीह यज्ञियाः ।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवयुगैः सह ॥५५
मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह च्छन्दजाः ।
तैः सार्द्धं मोज्यमानास्ते स्थास्यन्तीह युगक्षयात् ॥५६

वृद्धों का, वृद्धतमों का ब्रह्मिष्ठों का और शुभ दर्शन वालों का, नीली ग्रीवा वालों का, सहस्र नेत्रों वालों का, समस्त निशाचरों का सृजन किया ॥५०॥ जो किसी को दृश्यमान नहीं होने थे ऐसे अदृश्य, महान् योग वाले, महान्

ओज वाले, रुदन करते हुए तथा द्रवित होते हुए, आशातयाम, रुद्र के रूप वाले और गुरोत्तम इस प्रकार के युक्त सहस्रों का सृजन किया ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा जी ने जब इस तरह की प्रजा की सृष्टि को देखा तो कहा ऐसी प्रजा का सृजन मत करो। तुम को अपनी प्रजा अपने ही समान सृजित करनी चाहिए, न अधिक हो और न तुमसे हीन होवे। अब तुम अन्य प्रजा का सृजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मैं यहाँ पर स्थित हूँ, तुम प्रजा का सृजन करो ॥ ५२ ॥ ये सब जो मैंने उत्पन्न किये हैं जो कि विरूप और नीललोहित हैं और सहस्रों के सदृश हैं वे अपनी आत्मा के समान ही मिथित रूप में हैं ॥ ५३ ॥ ये सब महान् मन वाले रुद्र देवता होंगे जो कि पृथिवी में और अन्तरिक्ष में रुद्र के नाम से प्रसिद्ध होंगे ॥ ५४ ॥ शत रुद्र कहे गये हैं जो यहाँ यज्ञिय होंगे। ये सब देवताओं के साथ यज्ञों के भागों को ग्रहण करने वाले होंगे ॥ ५५ ॥ मन्वन्तरों में जो छन्दिज देवता यहाँ होंगे उनके साथ ईज्यमान ये यहाँ युग के क्षय होने तक स्थित रहेंगे ॥ ५६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता।
प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः ॥५७
एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो।
ब्रह्मणा समनुज्ञाते सदा सर्वमभूत् किल ॥५८
ततः प्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः।
ऊर्ध्वरेता स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्।
यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मीति तेन स्थाणुरिति स्मृतः ॥५९
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च।
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शङ्करे ॥६०
सर्वान् देवान् ऋषीन्दवै समेतानसुरैः सह।
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥६१
अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्।
ज्ञानेन च मुनीन् सर्वान् योगाद्भूतानि सर्वशः ॥६२

योग तपश्च सत्यञ्च धर्मश्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वर प्रभो ६४

उस समय पर धीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्माजी ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले—इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञान होने पर सदा सब ठीक हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के स्वामी ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत सम्प्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्ध्वरेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये । मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५६॥ ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्म सम्बोध, अधिष्ठातृत्व ये दस शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६० ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहल ये गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर दिया करते हैं । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग, तप सत्य, धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने वर्णन कीजिये, हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ।

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥६५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्याञ्चैव सर्वशः ।
मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥६६
यमनुग्रपुरोगैश्च पितृराजान्तकैस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्मा पर्युपासिताः ॥६७

ते वै प्रक्षीणकर्माणः शारदाम्बरनिर्मलाः ।
उपासते मुनिगणाः सन्ध्यायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः ।
विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६६
महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्माः सनातनाः ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि बोधत ॥७०

वायुदेव ने कहा—पुराण मे रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये है । अक्लिष्ट कर्म करने वाले रुद्रो ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मों की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ कालान्तक इन सबके द्वारा एवं अन्य बहुतो के द्वारा वे समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश निर्मल चित्त वाले वे मुनियो के समूह सन्ध्या मे आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्य मे सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओं की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६६ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्तिताः ॥७१
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृता ॥७४

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्धाता द्वादश स्मृता ।
मध्यमश्च द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रिक ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्धातो मात्रा षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादाना जननो ह्युत्तम स्मृत । ७६
इत्येतत् त्रिविध प्रोक्त प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग मे धर्म के नाम से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ उन पाँचो का क्रम विशेष से लक्षण, कारण तथा तत्त्व जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है । एक मन्द होता है, दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणो का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस सज्ञा वाला होता है । प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई हैं ॥७४॥ मन्द सज्ञक प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है । इसमे द्वादश उद्घात मात्रा बताई गई है । प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमे दो बार उद्घात होता है और चौबीस मात्राए हो जाती हैं । तीसरे उत्तम नामक भेद मे तीन बार उद्घात होकर छत्तीस मात्राऐ होती हैं । स्वेद, कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाला प्राणायाम का लक्षण बताया गया है । सक्षेप मे इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथाऽन्यो वा मृगो वने ।
गृहीत सेव्यमानस्तु मृदु समुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्ष सर्वेषामकृतात्मनाम् ।
योगत सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स चैव हि यथा सिंह कुञ्जरो वापि दुर्बल ।
कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्द्दनात् ॥८०
परिधाम मनो मन्द नश्यत्व चाधिगच्छति ।
परिधाय मनोदेव तथा जीवति मारुत- ॥८१

वशयत्वं हि तथा वायुर्गच्छने योगमास्थित ।
तदा स्वच्छन्दत प्राण नयते यत्र चेच्छति ॥८२

यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणा मृगेभ्य सप्रवर्त्तते ॥८३

यथा परिचितश्चाय वायुर्वै विश्वतो मुख ।
परिध्यायमान सरुद्ध शरीरे किल्विषं दहत् ॥८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन मे अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमें कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भाँति अकृतात्मा समस्त मानवों का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म बल से हीन मनुष्यों का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है। यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वही जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर मे योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भाँति प्राण भी होता है । ८० ॥ मन मन्द का परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है। मारत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वही स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अवस्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओं से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परिचित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब सरुद्ध होता है तो वह शरीर मे जो किल्विष होता है उसका दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्चैव जायते ॥८५

तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वे यज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्सम ॥८६

अविन्दु य कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ।
सवत्सरशत साग्र प्राणायामश्च तत्समम् ।।८७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।८८
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेद् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा पर ब्रह्माधिगच्छति ।।८९

प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्वगुण में ही स्थित रहा करता है ॥ ८५ ॥ जो भी तपस्यायें तपी जाती हैं, व्रत लिये जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ॥ ८६ ॥ जो कोई मास-मास में कुशा के अग्रभाग से जल के बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है वह सब प्राणायाम के तुल्य ही होता है ॥ ८७ ॥ प्राणायामों के द्वारा मनुष्य अपने समस्त दोषों को दग्ध कर दिया करता है धारणाओं के द्वारा किल्विष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयों का संहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों का क्षय करता है ॥ ८८ ॥ इसलिये योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिये । वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है ॥ ८९ ॥

।। पाशुपत-योग ।।

एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा ।
अर्द्धमास तथा मासमयनाब्दयुगानि च ।।१
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः ।
उपासते महात्मान प्राण दिव्येन चक्षुषा ।।२
अतऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ।
फलञ्चैव विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ।।३
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ।।४

घोराकारशिवानान्तु कर्मणां फलसम्भवम् ।
स्वयंकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥५
पितृमातृ प्रदुष्टानां ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करैः ।
क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ॥६
लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः ।
इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥७

श्री वायु ने कहा—एक महान् दिन अथवा एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन और पूरी रात्रि, अर्धमास अर्थात् पन्द्रह दिन, मास, अयन, अब्द अर्थात् वर्ष, युग और सहस्रों महायुग तक महान् आत्मा वाले ऋषिगण तपश्चर्या में स्थित होते हुये दिव्य चक्षु के द्वारा प्राणायाम की उपासना किया करते हैं ॥ १—२ ॥ इससे आगे प्राणायाम का प्रयोजन बतलाया जाता है और जैसा कि भगवान प्रभु ने कहा है उसका विशेष रूप से फल भी बतलाते हैं ॥ ३ ॥ प्राणायाम के चार प्रयोजन जान लो—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और चौथा प्रसाद—ये प्रयोजन-चतुष्टय होता है ॥ ४ ॥ देहधारियों के घोर आकार वाले तथा शिव कर्मों की फल की उत्पत्ति स्वयङ्कृत इस लोक में अथवा परलोक में कुछ काल में होती है ॥ ५ ॥ पिता माता के द्वारा प्रकृष्ट रूप से दुष्ट एवं जाति सम्बन्धी सङ्करों से दोषयुक्त कषाय पापों का क्षपण शान्ति कही जाती है ॥ ६ ॥ लोभ और मानस्वरूप वाले पापों का संयम इस लोक में और परलोक में हित के लिये जो तप होता है "प्रशान्ति" कही जाती है ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तु विषयो भवेत् ।
ऋषीणाञ्च प्रसिद्धाना ज्ञानविज्ञानसम्पद.म् ॥८
अतीतानागतानाञ्च दर्शनं साम्प्रतस्य च ।
बुद्धस्य समता यान्ति दीप्ति स्यात्तप उच्यते ॥९
इन्द्रियाणीन्द्रितार्थाश्च मनः पंच च मारुतान् ।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः ॥१०
इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः ।
सान्निकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकाल प्रसादज ॥११

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ।
आसन च यथातत्व युञ्जतो योगमेव च ॥१२
ओङ्कारं प्रथम कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ।
आसन स्वस्तिक कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥१३
समजानुरेकजानुरुत्तान. सुस्थितोऽपि च ।
समो दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ॥१४

सूर्य, चन्द्र, ग्रह और ताराओ के तुल्य विषय होता है। ज्ञान और विज्ञान की सम्पत्ति स्वरूप प्रसिद्ध ऋषियो के तथा जो पहिले हो चुके हैं उनके एव भविष्य मे होने वालो के और बोध से युक्त इस समय मे होने वाले के दर्शन समानता को प्राप्त होते हैं और वह दीप्ति होती है, यह तप कहा जाता है ॥ ८–६ ॥ इन्द्रियाँ और इन्द्रियो के अर्थ अर्थात् विषय, मन और पाँच मारुतों को जिससे प्रसाद होता है इसलिये यह प्रसाद इसी सज्ञा से युक्त हुआ है ॥१०॥ यह प्रथम धर्म है और प्राणायाम चार प्रकार का होता है। सद्य काल में प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सन्नकृष्ट फल वाला जानना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके आगे प्राणायाम का लक्षण बताते हैं और योग को ही करने वाले के यथातथ्य आसन को भी बताया जाता है ॥ १२ ॥ सर्व प्रथम ओङ्कार का उच्चारण करे फिर चन्द्र और सूर्य देव को प्रणाम करे इसके पश्चात् स्वस्तिक आसन करे तथा पद्म या अर्धासन करे ॥ १३ ॥ समान जानुओ वाला, एक जानु, उत्तान और सुस्थित, सम और दृढ आसन वाला होकर दोनो चरणो को संहृत करे ॥१४॥

सवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रत. ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ छाद्य तथा प्रजनन तत ॥१५
किञ्चिदुन्नामितशिराः शिरो ग्रीवा तथैव च ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ॥१६
तमः प्रच्छाद्य रजसा रज सत्त्वेन च्छादयेत् ।
तत. सत्त्वस्थितो भूत्वा योग युञ्जन् समाहितः ॥१७
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मन. पञ्च स मारुतान् ।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥१८

यस्तु प्रत्याहरेन् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः ।
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१९
पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तर शुचिः ।
आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥२०
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च ।
तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥२१

अपने मुख को बन्द करे—आँखो को बन्द करके और उर स्थल को आगे की ओर निकालकर—पार्ष्णियो से वृषणो को तथा जननेन्द्रिय को छादित करे ॥१५॥ कुछ ऊँचा सिर करने वाला सिर और ग्रीवा (गरदन) को ऊँचे की ओर करे और अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे तथा इधर-उधर किसी भी ओर दिशाओ मे नही देखे ॥१६॥ रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करे और फिर सत्त्व के द्वारा रजोगुण का छादन करना चाहिए । इसके अनन्तर सत्त्वगुण में स्थित होकर बहुत समाहित भाव से योग का अभ्यास करे ॥१७॥ इन्द्रियो को और समस्त इन्द्रियो के अर्थों को—मन को तथा पाँच मारुतो को समवाय से विगृहीत करके प्रत्याहार करने का उपक्रम करना चाहिए ॥१८॥ जो कूर्म के द्वारा अपने अङ्गो की भाँति सभी ओर से अपनी कामनाओ का प्रत्याहरण करता है और आत्मरति वाला होता हुआ एकस्थ अर्थात् एकाग्र होकर अपने में ही आत्मा को देखता है ॥१९॥ बाहर और भीतर से शुचि होकर शरीर को पूरित करे और आकण्ठ नाभि के योग से प्रत्याहार का उपक्रम करना चाहिए ॥२०॥ एक कला मात्र निमेष और उन्मेष जानना चाहिए फिर द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम किया जाता है ॥२१॥

धारणा द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् ।
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते ।
वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२२
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन. ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥२३
एव वै नियताहारः प्राणायामपरायणः ।

जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनिः ॥२४
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्वहून् ।
विवर्द्धयति सम्मोह न रोहेदजितां ततः ॥२५
नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वितः ।
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुञ्जितश्रमः ॥२६
नाभ्या च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्धनि ॥२७
किञ्चिदूर्द्ध्व परस्मिश्च धारणा परमा स्मृता ।
प्राणापानसमारोधात् प्राणायामः स कथ्यते ॥२८

द्वादशायाम धारणा होती है और दो धारणाओं का योग होता है और इस प्रकार से योग से युक्त होकर ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाता है फिर अपने ते से दीप्यमान परमात्मा को देख लेता है ॥२२॥ प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं और फिर वह केवल सत्व में स्थित रहने वाला होता है ॥२३॥ इस प्रकार से नियत आहार वाला और सर्वदा प्राणायाम करने तत्पर रहने वाला सदा मुनि जीत-जीत कर भूमि में आरोहण करे ॥२४॥ न जीती हुई महाभूमि बहुत-से दोषों को उत्पन्न कर देत है और सम्मोह को बढ़ा देती है इसलिये अजिता का कभी आरोहण नहीं करना चाहिए ॥२५॥ नाल यन्त्र से बल से आन्वित होता हुआ जिस प्रकार से जल को पीता है उसी प्रकार से प्रयत्न से वायु को श्रम से जीते ॥२६॥ नाभि में हृदय मे, कण्ठ में, उरस्थल मे, मुख में, नासा के अग्रभाग मे, नेत्र मे, भ्रुओं के मध्य मे और मूर्धा में कुछ ऊर्ध्व मे और पर मे धारणा परम कही गई है। प्राण और अपान के समारोध करने से वह प्राणायाम कहा जाता है ॥२७-२८॥

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।
निवृत्ति विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु सज्ञितः ॥२९
सर्वेषां समवाये तु सिद्धि- स्याद्योगलक्षणा ।
तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम् ।
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मान सूर्यचन्द्रवत् ॥३०

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ।
अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥३१
अग्न्यभ्याशे वने वापि शुष्कपर्णचये तथा ।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥३२
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसचये ।
उदपाने तथा नद्याम्न वाधातः कदाचन ॥३३
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतनः ।
युञ्जीत परमं ध्यानं योगी ध्यानपरः सदा ॥३४
एतान् दोषान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ।
तस्य दोषा. प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारकाः ॥३५

मन की धारणा ही धारणा इस नाम से कीर्तित हुई है । विषयों की निवृत्ति प्रत्याहार इस सज्ञा से युक्त हुआ है ॥२६॥ प्राणायामादि समस्तों के समवाय मे ही योग के लक्षण वाली सिद्धि होती है । उससे उत्पन्न योग का ध्यान सिद्धि का लक्षण है । ध्यान से युक्त सदा आत्मा को सूर्यचन्द्र की भाँति देखता है ॥३०॥ सत्व की उपपत्ति न होने पर दर्शन नहीं होता है । देश और काल के योग से रहित को दर्शन नहीं होता है ॥३१॥ अग्नि के समीप में—वन में—शुष्क पत्तों के ढेर में—जन्तुओं से व्याप्त स्थान में—श्मशान मे—पुराने टूटे-फूटे गोष्ठ में—चतुष्पथ में—शब्दों से अर्थात् कोलाहल पूर्ण स्थान में-भय से पूर्ण प्रदेश में—चैत्य और बल्मीको के सचय वाले स्थान में—उदपान में—जलादि बाधा से युक्त—क्षुधा से आविष्ट—अप्रसन्न और व्याकुल चित्त वाला पुरुष सदा ध्यान में परायण योगी परम ध्यान कभी न करे । तात्पर्य यह है कि ऐसी परिस्थिति मे ध्यानादि कभी नहीं करना चाहिए ॥३२-३३-३४॥ इन उक्त दोषों का विशेष रूप से निश्चय करके प्रमाद से जो योग का अभ्यास करता है उसके दोष प्रकुपित हो जाते हैं और शरीर मे विघ्नों के करने वाले हो जाते हैं ॥३५॥

जडत्व वधिरत्व च मूकत्वं चाधिगच्छति ।
अन्धत्व स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥३६

तस्य दोषा प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै ।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन योगी युञ्जेत्समाहितः ।।३७
अप्रमत्तः सदा चैव न दोषान् प्राप्नुयात् क्वचित् ।
तेषां चिकित्सा वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ।
यथा गच्छन्ति ते दोषा प्राणायामसमुत्थिताः ।।३८
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्मं प्रशाम्यति ।।३९
गुदावर्त्तप्रतीकारमिदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।
भुक्त्वा दधियवागूर्वा वायुरूर्ध्वं ततो व्रजेत् ।।४०
वायुग्रंथिं ततो भित्त्वा वायुदेशे प्रयोजयेत् ।
तथापि न विशेषः स्याद्धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।४१
युञ्जानस्य ततु तस्य सत्वस्यस्यैव देहिनः ।
गुदावर्त्तप्रतोघाते एतत् कुर्य्योच्चिकित्सितम् ।।४२

समय–स्थिति–देश आदि की कुछ भी परवाह न करके जो योग का अभ्यास किया करते हैं उनको जड़ता–बहरापन–मूकता हो जाते हैं। अस्मापन—स्मृति का लुप्त हो जाना—बुढ़ापा और रोग आदि हो जाते हैं ।।३६।। उस व्यक्ति के दोष प्रकुपित हो जाया करते हैं जो अज्ञान से योग का अभ्यास किया करते हैं। इसलिये शुद्ध ज्ञान से योगी को पूर्णतया समाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ।।३७।। जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद से रहित होता है वह सर्वदा ही दोषों को प्राप्त नहीं किया करता है। उन दोषों की क्रम के अनुसार चिकित्सा बतलाते हैं जिसमें कि प्राणायाम से उत्पन्न हुए दोष चले जाया करते हैं ।।३८।। स्निग्ध अर्थात् घृत के स्नेह वाली अत्यन्त उष्ण यवागू को खाकर वहीं अवधारण करना चाहिए। इस क्रम के योग से वात गुल्म प्रशान्त हो जाता है ।।३९।। गुदावर्त्त का प्रतीकार चिकित्सा को करते हुए यहाँ करे कि दही अथवा यवागू खाकर रहे इससे वायु ऊर्ध्व को चली जाती है ।।४०।। वायु की ग्रन्थि का भेदन कर उसे वायु के देश में प्रयोजित करना चाहिए। तो भी विशेष न हो तो धारणा को मूर्धा में धारण करे ।।४१।। जो युञ्जान व्यक्ति

उसकी स्थिति सत्त्व मे होती है उस देही के गुदावर्त्त के प्रतिघात मे यह चिकित्सा करनी चाहिए ॥४२।

सर्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिन ।
इमा चिकित्सा कुर्व्वीत तया सपद्यते सुखी ॥४३
मनसा यद्व्रत किञ्चिद्विटम्भीकृत्य धारयेत् ।
उरोद्घाते उर स्थान कण्ठदेशे च धारयेत् ॥४४
त्वचोऽवघाते ता वाचि बाधिर्ये श्रोत्र योस्तथा ।
जिह्वास्थाने तृपार्त्त स्तु अग्रे स्नेहाश्च तन्तुभिः ।
फल वै चिन्तयेद्योगी तन सपद्यते सुखी ॥४५
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्विकीम् ।
यस्मिन् यस्मिन् रजोदेशे तस्मिन् युक्तो विनिर्दिशेत् ॥४६
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इद कुर्याच्चिकित्सितम् ।
वज्रकीलेन मूर्द्धानि धार्य्याणस्य ताडयेत् ।
मूर्ध्नि कील प्रतिष्ठाप्य काष्ठ काष्ठेन ताडयेत् ॥४७
भयभीतस्य सा सज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ।
अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्या तत्र धारयेत् ॥४८
प्रतिलभ्य तत सज्ञा धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।
स्निग्धमल्प च भुञ्जीत तत सपद्यते सुखी ॥४९

शरीर के समस्त अङ्गों के प्रकम्प होने से समारब्ध योगी को इस चिकित्सा को करे उससे वह सुखी हो जाता है ॥४३॥ जो कोई भी व्रत हो उसे मन से विष्टम्भी कृत बनाकर धारण करना चाहिए अर्थात् मन मे पूर्ण दृढता करके ही धारण करे । उर के उद्घात होने पर उर स्थान को कण्ठ देश मे धारण करना चाहिए ॥४४॥ त्वक् का अवघात हो जाने पर उसको वाणी में धारण करे, श्रोत्रो के बधिरत्व मे उसी प्रकार करे। तृषा से आर्त्त को जिह्वा के स्थान मे आगे तन्तुओ से स्नेहो को धारण करे । योगी को फल का चिन्तन करना चाहिए इससे वह सुख वाला होता है ॥४५॥ क्षय मे–कुष्ठ मे और सकीलास मे सब सात्त्विकी को धारण करे । जिस जिस में रजोदेश मे युक्त

होते हुए उसका विनिर्देश करना चाहिए ॥४६॥ योगोत्पन्न विप्र को यह चिकित्सा करे कि बाँस की कील को मूर्धा मे धारण करते हुए ताडित करना चाहिए। मूर्धा मे कील प्रतिष्ठित करके काष्ठ को काष्ठ से ताडन करे ॥४७॥ भयभीत की तब वह सज्ञा आ जायगी । अथवा लुप्त सज्ञा वाले को हाथों से वहाँ धारण करे ॥४८॥ फिर सज्ञा को प्राप्त कर धारणा को मूर्धा मे धारण करे। थोड़ा स्निग्ध पदार्थ खाना चाहिए तब वह सुखी हो जाता है ॥४९॥

अमानुपेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित् ।
दिव च पृथिवीञ्चैव वायुमग्नि च धारयेत् ॥५०
प्राणायामेन तत्सर्वं दह्यमान वशीभवेत् ।
अथापि प्रविशेद्देह ततस्त प्रतिषेधयेत् ॥५१
तत सस्तम्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि ।
प्राणायामाग्निना दग्ध तत्सर्व विलय व्रजेत् ॥५२
कृष्णसर्पापराध तु धारयेद्धृदयोदरे।
महर्जनस्तप सत्य हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥५३
विषस्य तु फल पीत्वा विशल्या धारयेत्ततः ।
सर्वत सनगा पृथ्वी कृत्वा मनसि धारयेत् ॥५४
हृदि कृत्वा समुद्राश्च तथा सर्वाश्च देवताः ।
महस्रेण घटानाञ्च युक्त स्नायीत योगवित् ॥५५

जिस समय योग का वेत्ता अमानुष सत्त्व से जागृत हो जाता है और दिव तथा पृथिवी को—वायु को और अग्नि को धारण करे ॥५०॥ प्राणायाम से यह सब दह्यमान होकर वशीभूत हो जाते है और भी देह मे प्रवेश करे तो उसका प्रतिषेध कर देना चाहिए ॥५१॥ इसके अनन्तर योग [illegible] स्तम्भित कर मूर्धा मे धारण करने वाले के प्राणायाम की अग्नि से दग्ध हुआ वह सब विलीन हो जाता है ॥५२॥ कृष्ण सर्प के अपराध को हृदय के उदर मे धारण करे और महः—जन—तप और सत्य को हृदय मे करके धारण करना चाहिए ॥५३॥ विष के फल को पीकर फिर विशल्या को धारण करे। सब ओर से पृथ्वी को [न]गों से युक्त करके मन मे धारण करे । हृदय मे समस्त समुद्रो को तथा सपूर्ण

:वों को करके योग के ज्ञाता पुरुष को एक सहस्र घटों से स्नान करना चाहिए ॥५४-५५॥

उदके कण्ठमात्रे तु धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।
प्रतिस्रोतोविपाविष्टो धारयेत् सर्वगात्रिकीम् ॥५६
शीर्णोऽर्कपत्रपुटके पिवेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।
चिकित्सितविधिर्ह्येष विज्ञेयो योगनिर्मितः ॥५७
व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।
प्रवृत्ता लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत् क्वचित् ॥५८
अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ।
तस्मात् प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥५९
सत्त्वं तथारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ॥६०
आत्मानं पृथिवीञ्चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति ।
कृत्वान्यं विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥६१

कण्ठ मात्र जल में धारणा को मूर्धा में धारण करे। प्रति स्रोत के विप में आविष्ट होता हुआ सर्वगात्रिकी को धारण करना चाहिए ॥५६॥ शीर्ण होता हुआ आक के पत्तों के दोनों में वल्मीक की मृत्तिका को पीना चाहिए यह योग में निर्मित चिकित्सा की विधि बतलाई गई है ॥५७॥ योग में दृष्ट हेतु से इसकी सक्षेप में व्याख्या भी कर दी गई है। बोलने वाले से इसका लक्षण जानलो। किसी भी योग्य विप्र को इसे कह देना चाहिए ॥५८॥ और भी मोह के कारण यदि कहेगा तो वह विज्ञान प्रलीन हो जायगा। अतएव योग की प्रवृत्ति को किसी भी प्रकार से कहना नहीं चाहिए ॥५९॥ यह शरीर में प्रथम योग की प्रवृत्ति है। इसमें सत्त्वगुण की पूर्ण वृद्धि होती है—आरोग्य, अलोलुपता, वर्ण की कान्ति, सुन्दर स्वर और सौम्यता, अच्छा गन्ध और अल्प मूत्र तथा मल ये सब इसमें हो जाते हैं ॥६०॥ यदि अपने आपको और जलती हुई पृथिवी को देखे तो अन्य को करके प्रवेश करे और सिद्धि को उपस्थित होने वाली समझ लेना चाहिए ॥६१॥

॥ योगमार्ग के विघ्न ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ।
प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ॥१
मानुष्यान् विविधान् कामान् कामयेत ऋतु स्त्रियः ।
विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ॥२
अग्निहोत्र हविर्यज्ञमेतत प्रायतन तथा ।
मायाकर्म धन स्वर्गमुपसृष्टस्तु काङ्क्षति ॥३
एष कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागत ।
उपसृष्टन्तु जानीयाद्बुद्धया चैव विसर्जयेत् ।
नित्य ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात् प्रमुच्यते ॥४
जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ॥५
प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम् ।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः । ६
विद्या काव्यं तथा शिल्प सर्वं वाचाकृतानि तु ।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावस्यैव लक्षणम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब इनके आगे जैसे-तैसे उपसर्गों को बतलाते हैं। तत्त्व को देख लेने वाले देहधारी को जो दोष प्रादुर्भूत हो जाते हैं ॥१॥ मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के कामों की ओर स्त्री की ऋतु की कामना करनी चाहिए और उपसृष्ट और योग का वेत्ता पुरुष विद्या दान के फल की इच्छा करे ॥२। जो उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त होता है वह पुरुष अग्निहोत्र हवि, यज्ञ तथा यह प्रयत्न, माया कर्म धर्म और स्वर्ग की इच्छा करता है ।३॥ कर्मों में युक्त यह अविद्या के वश में आया हुआ होकर किया करता है उसे उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त ही जान लेना चाहिए और बुद्धि से इन सब का त्याग कर देना चाहिए। जो नित्य ही ब्रह्म परायण युक्त होता है वह उपसर्ग से प्रमुक्त हो जाता है ॥४॥ प्रत्युपसर्ग को जीत लेने वाले और श्वास को जीत लेने वाले देही को उपसर्ग प्रवृत्त हुआ करते हैं, और वे तरह के

और जो वर्त्तन से आक्रान्त बुद्धि वाला होता है उसका समस्त ज्ञान स्पष्ट रूप से नष्ट हो जाता है ॥१२॥ उस स्थिति में मन से शुक्ल वस्त्र या कम्बल से आवृत होकर इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्म का अनुचिन्तन करना चाहिए ॥१३॥ उस से ही आत्मा के दोषों को तथा उक्तप्रकार के उपस्थित उपसर्गों को मेधा वाले पुरुष को परित्याग कर देना चाहिए यदि वह अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा करता है। तो योगकी सिद्धि के लिये ऐसे त्याग करने की परमावश्यकता होती है ॥१४॥

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुरा ।
उपसर्गेषु सयुक्ता आवर्त्तन्ते पुन पुन ॥१५
तस्माद्युक्त सदा योगी लघ्वाहारी जितेन्द्रिय. ।
तथा सुम सुसूक्ष्मेषु धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ॥१६
ततस्तु योगयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिन ।
उपसर्गा पुनश्चान्ये जायन्ते प्राणसज्ञका ॥१७
पृथिवी धारयेत्सर्वा तमश्चापो ह्यनन्तरम् ।
ततोऽग्निश्चैव सर्वेषामाकाश मन एव च ॥१८
तत परा पुनर्बुद्धि धारयेद्यत्नतो यती ।
सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ॥१९
पृथ्वी धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।
अपो धारयमाणस्य आप. सूक्ष्मा भवन्ति हि ।
शीता रसा प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभा ॥२०
तेजो धारयमाणस्य तेज सूक्ष्म प्रवर्त्तते ।
आत्मान मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति ॥२१

ऋषिगण, देवता, गन्धर्व, यक्ष, उरग और महान् असुर गण ये सब उपसर्ग से सयुक्त होकर बार बार आवर्तित हुआ करते हैं ॥१५॥ इसलिये जो युक्त योगी होता है उसे सर्वदा अल्प और हल्का आहार करने वाला, इन्द्रियों को जीत लेने वाला होना चाहिए तथा सुसूक्ष्मों में सुम रहने वाला होकर उसे [illegible] धारणा को धारण करना चाहिए ॥१६॥ इस प्रकार से रहने वाले निद्रा

का जीत लेने वाले योग से युक्त योगी को अन्त मे फिर वे उपसर्ग प्राणमज्ञा वाले हो जाया करते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवी को धारण करे इसके अनन्तर जलो को, फिर अग्नि को और सबके बाद आकाश को धारण करे ॥१८॥ इसके अनन्तर यनी को मनसे भी परा बुद्धि को यत्न पूवक धारण करनी चाहिए। और इस बीच मे जो भी सिद्धियो के चिह्न उपस्थित हो उन्हें देख,देख कर त्याग देना चाहिए ॥१९॥ पृथ्वी को धारण करने वाले के लिये यह मही अति सूक्ष्म प्रवृत्त होती है। जलो को धारण करने वाले के लिये जल सूक्ष्म हो जाते हैं और समस्त रस शीत तथा अमृत के तुल्य प्रवर्त्तमान हुआ करते हैं ॥२०॥ जब तेज को धारण किया जाता है तो वह तेज भी सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा को तेज मानता है और तेज तद्भाव का हो अनुदर्शन किया करता है ॥२१॥

आत्मान मन्यते वायुं वायुवन्मण्डल प्रभो ।
आकाश धारयाणस्य व्योम सूक्ष्म प्रवर्त्तते ॥२२
पश्यते मण्डल सूक्ष्म घोपश्चास्य प्रवर्त्तते ।
आत्मान मन्यते नित्य वायुः सूक्ष्म. प्रवर्त्तते ॥२३
तथा मनो धारयतो मन सूक्ष्म प्रवर्त्तते ।
मनसा सर्वभूताना मनस्तु विशते हि स ।
बुद्ध्या बुद्धि यदा युङ्क्ते तदा विज्ञाय बुद्ध्यते ॥२४॥
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित् ।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परम व्रजेत् ॥२५॥
यस्मिन् यस्मिश्च सयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे ।
तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति ॥२६॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्मणि ससक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो बुद्धया स पर प्राप्नुयाद्द्विजः ॥२७
दृश्यन्ते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुष. ।
ससक्ता. सूक्ष्मभावेषु ते दोषास्तेषु सज्ञिता. ॥२८

हे प्रभो ! आत्मा को वायु मानता है और समस्त मण्डल को वायु की भाँति देखता है। आकाश को धारयमाण का व्योम सूक्ष्म हो जाता है ॥२२॥

वह मण्डन को मूर्च्छ देखता है और इसका घोष प्रवृत्त होता है। जो आत्मा को वायु मानता है उसका वायु सूक्ष्म होकर प्रवर्त्तमान हुआ करता है ॥२३॥ उसी प्रकार से मन को धारण करने वाले का मन सूक्ष्म होता हुआ प्रवर्त्तमान होता है। मन से समस्त प्राणियो के मन मे वह प्रवश कर जाता है। जब बुद्धि से बुद्धि को युक्त करता है तब ज्ञान प्राप्त करके समझा जाया करता हैं ॥२४॥ ये सात सूक्ष्म होते हैं इनको जान कर जो योग का ज्ञाता परित्याग करता है वही मेधावी बुद्धि से परम को प्राप्त होता हैं ॥२५॥ यह प्राणी जिसम संयुक्त होता हुआ उस ऐश्वय के लक्षण वाले मे उसके सङ्ग का सेवन करता है उसी से उसका नाश हो जाता है ॥२६॥ इसलिये इन समस्त सूक्ष्मो को जोकि एक दूसरे मे आपस मे सम्बद्ध हो रहे है भली भाँति जानकर जो बुद्धि से त्याग कर देता है वही द्विज परम की प्राप्ति किया करता है ॥२७। परम महान् आत्मा वाले दिव्य चक्षु वाले ऋषि लोग सूक्ष्मभावो मे समक्त होते हुए दिखलाई दिया करते है वे उनमे दोषों की सज्ञा वाले ही कह जाते हैं ॥२८॥

तस्मान्न निश्चय कार्यं सूक्ष्मेष्विह कदाचन ।
ऐश्वर्य्याज्जायते रागो विराग ब्रह्म चोच्यते ॥२९
विदित्वा सप्त सूक्ष्मणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ।
प्रधान विनियोगज्ञ पर ब्रह्माधिगच्छति ॥३०
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥३१
नित्य ब्रह्मधनो युक्त उपसर्गै प्रमुच्यते ।
जितश्वासोप सर्गस्य जितरागस्य योगिन ।
एषा वहि शरीरेऽस्मिन् धारणा सर्वकामिकी ॥३२
विशेषदा द्विजो युक्तो यत्र यत्रार्प्पयेन्मन ।
भूतान्याविशते वापि त्रैंलोक्यञ्चापि कम्पयेत् ॥३३
एतया प्रविशेद्देह हित्वा देह पुनस्त्विह ।
मनाद्वार हि योगानामादित्यञ्च विनिर्द्दिशेत् ॥३४

आदानादिक्रियाणान्तु आदित्य इति चोच्यते ।
एतेन विधिना योगी विरक्त सूक्ष्मवर्जितः ।
प्रकृति समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते ॥३५

इसलिये यहाँ पर इन सूक्ष्मों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐश्वर्य से ही राग की उत्पत्ति हुआ करती है और विराग ही ब्रह्म कहा जाता है ॥२९॥ सात प्रकार के इन सूक्ष्मों का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके और छै अङ्गों से महेश्वर को जानकर जोकि प्रधान है। इनके अनन्तर विनियोग का आत्मा पुरुष पर ब्रह्म को प्राप्त किया करता है ॥३०॥ सर्वज्ञता का होना, पूर्णतया मानसिक तृप्ति का हो जाना, अनादि बोधपूर्ण स्वाधीनता, नित्य शक्ति के लोप का अभाव, अनन्तशक्ति का होना और विभु की विधि का ज्ञान रखना ये महेश्वर के छै अङ्ग होते हैं ॥३१॥ नित्य ही जो ब्रह्म रूपी धन से धनराज होता है। प्रवास के उपसर्ग को जीत लेने वाले तथा राग को जीत लेने वाले योगी को इस शरीर से बाहिर एक ही सर्वकालिनी धारणा होनी चाहिये ॥ ३२ ॥ जिस समय में मुक्त द्विज जहाँ, जहाँ पर मन को अर्पित करे तथा भूतों में आविष्ट होवे तो वह त्रैलोक्य को कँपादेता है ॥३३॥ इससे यहाँ पर-देह का त्यागकर फिर देह में प्रवेश करे और आदित्य को तथा योगी के मनोद्वार की विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥३४॥ आदानादि क्रियाओं को आदित्य यह कहा जाता है। इस विधि से सूक्ष्म से वर्जित विरक्त योगी प्रकृति का भली भाँति क्रमण करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥३५॥

ऐश्वर्यगुणसम्प्राप्तं ब्रह्मभूतन्तु त प्रभुम् ।
देवस्थानेषु सर्वेषु सर्वतस्तु निवर्त्तते ॥३६
पैशानेन पिशाचाश्च राक्षसेन च राक्षसान् ।
गान्धर्वेण च गन्धर्वान् कौबेरेण कुबेरजान् ॥३७
इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन सौम्यं सौम्येन चैव हि ।
प्रजापतिं तथा चैव प्राजापत्येन साधयेत् ॥३८
ब्राह्मं ब्राह्म्येन चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम् ।
तत् सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९

नित्य ब्रह्मपरो युक्त स्थानान्येतानि वै त्यजेत् ।
असज्यमान स्थाने॒ु द्विज. सर्वगतो भवेत् ॥४०

ऐश्वर्य के गुण से सम्प्राप्त ब्रह्मभूत उस प्रभु को सर्व ओर समस्त दे स्थानो मे नि शेष रूप से बरतता है ॥ ३६ ॥ पिशाचो को पिशाच से, राक्ष सो राक्षस से, गन्धर्वों को गन्धर्व से तथा कुबेरजो को कौबेर से अर्थात् कुबेर स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्र को ऐन्द्र स्थान से, सौम्य सौम्य स्थान से तथा प्रजापति को प्राजापत्य स्थान से साधन करना चाहि ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से ब्राह्म से ब्राह्म प्रभु का उपामिश्रण करना है। व पर सक्त होने वाला उन्मत्त हो जाता है। उसी से सब प्रवृत्त होता है ॥ ३६ नित्य ही ब्रह्म मे परायण रहने वाले युक्त पुरुष को ये स्थान त्याग देने चाहिये स्थानो मे आसज्यमान द्विज सर्वगत हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ योग-मार्ग के ऐश्वर्य ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुण विस्तरम् ।
येन योग विशेपेण सर्वलोकानतिक्रमेत् ॥१
तत्राष्टगुणमैश्वर्य योगिना समुदाहृतम् ।
तत्सर्व क्रमयोगेन उच्यमान निवोधत ॥२
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वत. ॥३
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविध ज्ञेयमैश्वर्यं सर्वकामिकम् ॥४
सावद्य निरवद्य च सूक्ष्मञ्चैव प्रवर्त्तते ।
सावद्य नाम तत्तत्व प चभूतात्मक स्मृतम् ॥५
निरवद्य तथा नाम प चभूतात्मक स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥६
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तन्तु प चभूतात्मक पुन ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव वुद्ध्यहङ्कार सज्ञितम् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इसस आगे ऐश्वर्य गुणों का विस्तार से वर्ण

किया जाता है जिस योग विशेष के द्वारा समस्त लोकों का अतिक्रमण किया करता है ॥ १ ॥ वहाँ पर आठ गुणो वाला योगियों का ऐश्वर्य कहा गया है। यह सब क्रम के योग से कहा जाने वाला है उसे आप लोग भली-भाँति समझ लेवें ॥ २ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, सर्वत्र प्राकाम्य और सब ओर ईशत्व तथा सर्वत्र वशित्व जहाँ कि कामावसायिता होवे। यह भी सर्वकामिक ऐश्वर्य अनेक प्रकार वाला जानना चाहिये ॥ ३—४ ॥ यह ऐश्वर्य सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म प्रवर्त्तमान हुआ करता है। इनमें जो सावद्य होता है वह तत्त्व होता है जो कि पञ्चभूतात्मक होता है ॥ ५ ॥ निरवद्य यह नाम भी पञ्च-भूतात्मक कहा गया है। इन्द्रियों का समूह, मन और अहङ्कार कहा गया है ॥ ६ ॥ वहाँ पर पुन. सूक्ष्म प्रवृत पञ्चभूतात्मक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥ ७ ॥

तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च ।
संयोग एवं त्रिविध. सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तते ॥८
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्त्तते ।
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभुः ॥९
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु जीवस्यानियत. स्मृत. ।
अणिमा च यथाव्यक्तं सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०
त्रैलोक्ये सर्वभूताना दुष्प्राप्यं समुदाहृतम् ।
तच्चापि भवति प्राप्य प्रथम योगिना बलात् ॥११
लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत् ।
शीघ्रग सर्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् ॥१२
त्रैलोक्ये सर्वभूताना प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।
महिमा चापि यो यस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते ॥१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु त्रैलोक्यमगमं स्मृतम् ।
प्रकामान् विषयान् भुङ्क्ते न च प्रतिहत. क्वचित् ।
त्रैलोक्ये सर्वभूताना सुख-दुःखं प्रवर्त्तते ॥१४

इसी प्रकार से सर्वमय और आत्मा में रहने वाली ख्याति ही तीन प्रकार

का सयोग सूक्ष्मों मे ही प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ पुन आठ गुणों वाले की
उत्तम जो प्रवृत्ति होती है उसके रूप का बतलाते हैं जो कि भगवान प्रभु
बताया है ॥ ९ ॥ त्रैलोक्य म समस्त भूतो मे जीव की अनियतता कही ग
है। अणिमा जिस प्रकार से अव्यक्त है उसमे सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥१०
तीनो लोको मे जो परम दुष्प्राप्य बताया गया है वह भी योगियो को पहिल ब
पूर्वक प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ योग मे इसका रूप सर्वदा लम्बन एव प्लव
होता है। शीघ्र गमन करने वाला समस्त भूतो मे उसका द्वितीय पद कहा गय
है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य मे समस्त भूतो की प्राप्ति और प्राकाम्य तथा जो जिस
महिमा होती है वह भी तृतीय योग कहा जाता है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य में समस
भूतो मे त्रैलोक्य अगम कहा गया है। वह विषयो को प्रकृष्ट कामना के अनु
सार भोग करता है और कोई कही भी प्रतिहनन करने वाला नही होता है
त्रैलोक्य म सवभूतो का सुख और दुःख प्रवृत्त होता है ॥ १४ ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
भवन्ति सर्वकार्येषु इच्छतो न भवन्ति च ॥१५
यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे।
इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥१६
शब्द स्पर्शो रसो गन्धो रूप चैव मनस्तथा ।
प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति तथेच्छया ॥१७
न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥१८
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ।
क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥१९
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जित ।
अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥२०
भुङ्क्तेऽथ विषयाश्चैव विषयैर्न च युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परम सूक्ष्म सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गय ॥२१

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुप स्मृत. ।
पुरुप. सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परत स्थित ॥२२
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्ये सर्वत सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्ग ततो गच्छेत् सुसूक्ष्म परम पदम् ॥२३

योग के ज्ञान को रखने वाला प्रविभाग से सर्वत्र ईश होता है। इस चराचरात्मक त्रैलोक्य मे समस्त भूत वश्य होते हैं। समस्त कार्यों मे इच्छा करते हुये नही होते है ॥ १८ ॥ इस चराचर त्रैलोक्य मे जहाँ पर कामावसायित्व होता है वहाँ इच्छा से इन्द्रिया होती हैं और नही होती हैं ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श रस, गन्ध, रूप तथा मन इसकी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं तथा इच्छा स नही होते हैं ॥ १७ ॥ यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न भिन्न होता है, न छेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न मोह को प्राप्त होता है न क्षीयमान होता है, न लिप्त ही होता है, न यह क्षीण होता है, न क्षर होने वाला होता है और न कभी खिन्न होता है। यह सर्वत्र किया जाता है और विकार युक्त नही होता है ॥ १८—१६ ॥ बिना गन्ध, रस और रूप वाला तथा स्पर्श और शब्द से विवर्जित, बिना वर्ण वाला तथा वर्ण का अवर, स्वरूप वाला यह होता है ॥ २० ॥ और विषयो का भोग करता है तथा विषयो से युक्त नहीं होता है। परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करके सूक्ष्मत्व होने से अपवर्ग से व्यापक है और व्यापित्व होने से पुरुष कहा गया है। सूक्ष्मभाव से यह पुरुष ऐश्वर्य मे परे स्थित होता है ॥ २२ ॥ ऐश्वर्य मे दूसरा गुण सब ओर सूक्ष्म कहा जाता है। ऐश्वर्य का अप्रतिघाती परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके अति सूक्ष्म परम पद अपवर्ग को जाता है ॥ २३ ॥

॥ पाशुपत योग का स्वरूप ॥

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत् ।
राजस तामस वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥१
तथा सुकृतकर्म्मा तु फल स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥२

तस्माद्‌ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परम सुखम् ॥३
परिश्रमस्तु यज्ञाना महतार्थेन वर्त्तते ।
भूयो मृत्युवश याति तस्मान्मोक्षः पर सुखम् ॥४
अथ वै ध्यानसयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
न स स्याद् व्यापितु शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥५
दृष्ट्वा तु पुरुष दिव्य विश्वाख्य विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीव विश्वेशं विश्वभावनम् ।
विश्वगन्ध विश्वमाल्य विश्वाम्बरधर प्रभुम् ॥६
गोभिर्मही सयतते पतत्रिण महात्मानं परममर्ति वरेण्यम् ।
कवि पुराणमनुशासितार सूक्ष्माच्च सूक्ष्म महतो महान्तम् ।
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा त निरिन्द्रियं पुरुष रुक्मवर्णम् ॥७

श्री वायु देव ने कहा—इस प्रकार से अपार हुआ ज्ञान से अथवा राग से कर्म का आचरण न करे। राजस हो अथवा तामस हो उसका भोग करके वहाँ पर ही युक्त होना है ॥ १ ॥ यदि कोई सुकृत कर्मों के करने वाला है तो वह अपने सुकृत कर्मों के प्रभाव से उनका फल स्वर्ग मे भोगता है। जब पुण्य-कर्मों के फल का भोग समाप्त हो जाता है तो उस स्थान से भ्रष्ट होकर पुनः मनुष्य लोक को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ इससे ब्रह्म परम सूक्ष्म है और ब्रह्म शाश्वत कहा गया है अर्थात् ब्रह्म सर्वदा रहने वाला कहा जाता है। ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये क्योकि ब्रह्म ही परम सुख होता है ॥ ३ ॥ यज्ञो के करने मे महान् परिश्रम करना पडता है और वह भी बहुत अधिक धन से सम्पन्न किया जाता है। यज्ञादि के करने वाला भी फिर मृत्यु के वश मे हो जाता है। इसलिये मोक्ष का प्राप्त करना ही परम सुख होता है ॥ ४ ॥ ध्यान से सयुक्त होता हुआ जो ब्रह्म यज्ञ मे परायण होता है वह सौ मन्वन्तरों में भी मारा नही जा सकता है ॥ ५ ॥ विश्व नाम वाले, विश्व के रूप वाले, विश्व के पाद, शिर और ग्रीवा वाले, विश्व के स्वामी, विश्व का पालन करने वाले, दिव्य पुरुष, विश्व की गन्ध वाले, विश्व की माल्य, विश्व के अम्बर को धारण करने वाले

प्रभु का योग से दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥ मही इन्द्रियों से पतनि, महान् आत्म वाले, परम मति, वरण्य, कवि, पुराण, अनुशासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान् को सयत करती है उस इन्द्रियो से रहित सुवर्ण के समान वर्ण वाले पुरुष को योग से देखते हैं, चक्षु से नही देखते हैं ॥ ७ ॥

अलिङ्गिन पुरुष रुक्मवर्णं सलिङ्गिन निर्गुण चेतन च ।
नित्य सदा सर्वगतन्तु शौच पश्यन्ति युक्त्या ह्यचल प्रकाशम् ॥८
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमान अपाणि पादोदरपार्श्वजिह्व ।
अतीन्द्रियोऽद्यापि सुसूक्ष्म एक पश्यत्यचक्षु स शृणोत्यकर्ण ॥९
नास्यास्त्यबुद्ध न च बुद्धिरस्ति स वेद सव न च वेदवेद्य ।
तमाहुरग्र्य पुरुष महान्त सचेतन सर्वगत सुसूक्ष्मम् ॥१०
तामाहुर्मुनय सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम् ।
प्रकृति सवभूताना युक्ता पश्यन्ति चेतसा ॥११
सर्वत पाणिपादान्त सर्वतो ऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत श्रुति (म) माल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१२
युक्ता योगन चेशान सर्वतश्च सनातनम् ।
पुरुष सर्वभूताना तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥१३
भूतात्मान महात्मान परमात्मानमव्ययम् ।
सर्वात्मान पर ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति ॥१४

बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हेम के सदृश वर्ण से युक्त, सलिङ्गी, निर्गुण, चेतन, नित्य, सदा सब म रहने वाले, शौच, अचल और प्रकाश स्वरूप पुरुष को युक्ति से देखते हैं ॥८। उसकी भावना से युक्त तेज से दीप्यमान पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा से रहित, इन्द्रियों की पहुँच से परे, बिना नेत्रो वाला और बिना कानो वाला अब भी सुसूक्ष्म एक वह देखता है और सुनता भी है ॥९॥ इसको कुछ भी अबुद्ध नही है इसके बुद्धि भी नहीं है, वह सब को जानता है और वह वेदों के द्वारा भी जानने के योग्य नहीं है अर्थात् वेद भी उसके यथार्थ स्वरूप को नही बता सकते हैं। उसको सब से प्रथम पुरुष महान्, सचेतन सर्वगत और सुसूक्ष्म कहते हैं ॥१०॥ लोक

मे सब मुनिगण उस को समस्त प्राणियो के प्रसव के धर्म वाली प्रकृति कहते हैं। जो योग से युक्त होते हैं वे ध्यान मे चित्त मे उसे देखते हैं। ११॥ अब उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं कि वह सभी ओर पाणि तथा पादो वाला है,सब ओर नेत्र शिर और मुख वाला है, सब तरफ श्रुतिमान् है और लोक में सब को आवृत करके स्थित रहता है ॥१२॥ जो युक्त होते हैं वे योग से उस ईशान और सर्वत्र स्थित सनातन को एवं समस्त भूतो के पुरुष को देखते है। इसलिए जो ध्याता अर्थात् ध्यान-योगी हैं वे कभी मोह को प्राप्त नही होते हैं ॥१३॥ समस्त भूतो की आत्मा, महान् आत्मा वाले, अव्यय, सब की आत्मा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके मोहित नही होते है ॥१४॥

पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिपु ।
पुरि शेते तथाभ्रे च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
अथ चेल्लुप्तधर्म्मात्तु सविशेषैश्च कर्म्मभि. ॥१५
ततस्तु ब्रह्मयोन्या वै शुक्रशोणितसयुतम् ।
स्त्रीपुमासप्रयोगेण जायते हि पुनः पुन' ॥१६
ततस्तु गर्भकाले तु कलन नाम जायते ।
कालेन कलनश्चापि बुद्बुदश्च प्रजायते ॥१७
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रवातेन पीडितः।
हस्ताभ्या क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति ॥१८
एवमात्मास्थिसयुक्तो वायुना समुदीरित. ।
जायते मानुपस्तत्र यथा रूप तथा मन. ॥१
वायु सम्भवते तेपा वातात् सञ्जायते जलम् ।
जलात्सम्भवते प्राण. प्राणाच्छुक विवर्द्धते ॥२०
रक्तभागास्त्रयस्त्रिशच्छुक्रभागाश्चतुर्द्श ।
भागतोऽर्द्धपलं कृत्वा ततो गर्भे निषेवते ॥२१

जिस तरह पवन समस्त मूर्त्तियों मे विचरता हुआ ग्राह्य हुआ करता है उसी भाँति वह पुर मे शयन करता है तथा अभ्र मे भी स्थित रहता इसी लिये 'पुरुष'—यह कहा जाता है । इसके अनन्तर सविशेष कर्मो से लु

में वाला होता है ॥१५॥ इनके पश्चात् वह ब्रह्म शुक्र और शोणित से सयुत होकर योनि में स्त्री और पुमान् के प्रयोग से बार-बार उत्पन्न होता है ॥१६॥ सर्वप्रथम योनि मे पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है तो वह उस गर्भ के समय मे पहिले कलन नाम वाला होता है। उस समय मे वही कलन बुद्बुद हो जाता है ॥१७॥ जिस तरह मिट्टी का एक पिण्ड चक्र वात के द्वारा पीडित किया जाता है और हाथो से बनाया हुआ देवत्व को प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ इसी प्रकार से वायु के द्वारा समुदीरित वह आत्मा और अस्थि से सयुक्त मनुष्य उत्पन्न होता है। उसमे फिर जैसा रूप होता है वैसा मन होता है ॥१९॥ वायु उत्पन्न होता है, उस वात से जल होता है, जल से प्राण उत्पन्न होता है और प्राण से शुक्र की वृद्धि होती है ॥२०॥ तैतीस रक्त के भाग होते हैं और शुक्र के चौदह भाग होते हैं। भाग से आधा पल करके फिर गर्भ मे निषेचित होता है ॥२१

ततस्तु गर्भसयुक्त. पञ्चभिर्वायुभिर्वृ तः ।
पितु· शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥२२
ततोऽस्य मातुराहारात् पीतनीढप्रवेशितम् ।
नाभिः स्रोत प्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥२३
नवमासान् परिक्लिष्टः सवेष्टितशिरोधरः ।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अनर्घ्यायकमागतः ।
नवमासोपितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुख ॥२४
ततस्तु कर्म्मभि. पापैर्निरय प्रतिपद्यते ।
असिपत्रवनश्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयोः ॥२५
तत्र निर्भर्त्सनश्चैव तथा शोणितभोजनम् ।
एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकमुदु.महाः ॥२६
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्ना. स्वम्पमुपयान्ति वै ।
तस्माच्छिन्नादत्र भिन्नाश्च यातनास्थानमागतः ॥२७
एव जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वग कृते ।
प्राप्नुयात् कर्मभिर्दुःख शेष वा यदि चेतरम् ॥२८

इसके पश्चात् पाँच वायु से वृत और गर्भ से सयुक्त इसके पिता के शरीर से प्रत्येक अङ्ग का रूप उत्पन्न होता है ॥२२॥ इसके अनन्तर माता जो कुछ भी खाया करती है उस उसके आहार से पीया हुआ, चाटा हुआ अन्दर प्रवेशित होता है वह नाभि के स्रोत के द्वारा गर्भ तक प्रवेश करता है उससे देह धारियो के प्राणो का आधार होता है ॥२३॥ इस तरह नौ मास पर्यन्त सवेष्टित शिरोधर, परिक्लेश से युक्त होता हुआ, समस्त गात्रों से वष्टित होकर अपर्याय क्रम से आया हुआ रहता है । नौमास तक वहाँ गर्भ मे रहकर फिर योनि के छिद्र से अवाङ्मुख होता हुआ जन्म ग्रहण किया करता है ॥२४॥ फिर यहाँ पर आकर अनेक पाप कर्म करता है और उन दुष्कर्मों के कारण नरक को प्राप्त किया करता है । असिपत्र वन, शाल्मली छेद भेदो के नाम वाले नरक होते हैं उनमे पाप कर्मों से यातना भोगता है ॥२५॥ वहाँ नरक स्थानों मे बहुत बुरी तरह फटकार खाता है तथा शोणित का भोजन करना पड़ता है। ये समस्त अत्यन्त घोर यातनाऐ हैं और कुम्भीपाक नरक की बहुत असह्य यातना होती हैं ॥२६॥ जिस तरह छिन्न किये हुए जल अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार छिन्न और भिन्न हुए यातना के स्थान में आते हैं ॥२७॥ इस तरह जीवात्मा अपने ही किये हुए पाप कर्मों से तप्यमान होता हुआ कर्मों के द्वारा दुःख प्राप्त किया करता है । आदि का जो भी शेष अन्य होता है । उसे भी भोगता है ॥२८॥

एकेनैव तु गन्तव्य सर्वमृत्युनिवेशनम् ।
एकनैव च भोक्तव्य तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥२६
न ह्येन प्रस्थित कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति ।
यदनेन कृत कर्म्म तदेनमनुगच्छति ॥३०
ते नित्य यमविषये विभिन्नदेहा क्रोशन्तः सततमनिष्टसप्रयोगे ।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा वह्वीभिः सुभृशमधर्म्मयातनाभि ॥ १
कर्मणा मनसा वाचा यदभीष्ट निषेव्यते ।
तत् प्रसह्य हरेत् पाप तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥३२
यादृग जातानि पापानि पूर्वं कर्म्माणि देहिन ।

ससारं तामस तादृक् पड्विधं प्रतिपद्यते ।।३३
मानुष्य पशुभावञ्च पशुभावान्मृगो भवेत् ।
मृगत्वात् पक्षिभावन्तु तस्माच्चैव सरीसृपः ।।३४
सरीसृपत्वाद्गच्छेद्धि । स्थावरत्वम्न संशयः ।
स्थावरत्व पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रै वपरिकीर्तितः ।।३५

समस्त प्राणियो के मृत्यु के स्थान मे एक ही को अकेले जाना पडता मे अर्थात् अन्य वहाँ कोई भी सहायक नही हो सकता है । और स्वयं एक ही को वहाँ नरक स्थान मे कर्मों का फल भोगना पडता है इसलिये सर्वदा सुकृत ही करना चाहिए ।।२६।। जब अन्त समय उपस्थित होना है तो मृत्यु के मुख मे प्रस्थान करने वाले इसको कोई भी साथी नही मिलता है और न जाते हुए के पीछे ही कोई जाया करता है । इसने यहाँ लोक मे जो भी भला-बुरा कर्म किया है वही इसके पीछे साथ जाया करता है ।।३०।। वे वहाँ यमराज के स्थान मे विभिन्न देह वाले नित्य ही बराबर बुरे-बुरे सन्त्रयोगो से रुदन करते हुए शुष्क हो जाते हैं और बहुत-सी अधम यातनाओ से जो कि अत्यन्त ही घोर रूप में प्राप्त होती हैं सब तरह वेदना से पूर्ण शरीर वाले होते हैं ।।३१।। कर्म से मन से और वाणी से जो अभीष्ट का सेवन किया जाता है उस पाप को यत्नपूर्वक दूर कर देना चाहिए । इससे सुकृत कर्म का ही आचरण करना चाहिए ।।३२।। इस देहधारी पुरुष के जैसे भी पहिले कर्म तथा पाप हुए हैं उनको यह तामस संसार वैसा ही छै प्रकार वाला प्राप्त हुआ करता है ।।३३।। मानुष्य से पशुभाव, पशुभाव से मृग होता है । मृगत्व से पक्षिभाव को प्राप्त होता है और फिर उससे सरीसृप होता है ।।३४।। सरीसृप मे स्थावरता को प्राप्त किया करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नही है । जब तक नर के उन्मेष को प्राप्त नही होता है बराबर पुनः स्थावरत्व को प्राप्त किया करता है । कुम्हार के चाक की भाँति भ्रमण करता हुआ वहाँ ही पर रहा करता है ।।३५।।

इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तके ।

विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्त्तते ॥३६
सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादि परिकीर्त्तितः।
पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७
ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः।
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः।
मर्मसु छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः ॥३८
ततस्तु परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति।
संस्कारात् पूर्वधर्मस्य भावनाया प्रणोदितः।
मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समादधेत् ॥३९

इस प्रकार से संसार में मनुष्य से आदि लेकर स्थावर के अन्त तक तामस भाव जानना चाहिए। यह वहाँ ही परिवर्तित होता रहा करता है ॥३६॥ सात्त्विक भी संसार ब्रह्म से आदि लेकर कहा गया है जो कि पिशाच के अन्त तक स्वर्ग स्थानों में देहधारियों का जानना चाहिए ॥३७॥ ब्राह्म में तो केवल सत्त्व ही होता है और स्थावर में केवल तमोगुण ही होता है। चौदह स्थानों के मध्य में रजोगुण विष्टम्भक होता है जो कि मर्म स्थानों के छिद्यमान होने पर वेदना से आर्त्त देहधारी को हुआ करता है ॥३८॥ इसके पश्चात् विप्र परम ब्रह्म का कैसे स्मरण करेगा? पूर्व धर्म के संस्कार से भावना से प्रेरित होता हुआ मानुष्य का सेवन किया करता है। इसलिये नित्य ही समाधीत होना चाहिए ॥३९॥

॥ पाशुपत योग–महिमा ॥

चतुर्दशविधं ह्येतद्बुद्ध्वा संसारमण्डलम्।
तथा समारभेत् यत्नं संसारभयपीडितः ॥१
तत स्मरति संसारचक्रेण परिवर्जितः।
तस्मात् सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः।
तथा समाभेदाग यथाज्ञानं [illegible] पश्यति ॥२
एष आद्यः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः।
विवृद्धो ह्येष भूतानां न सम्भेदश्च तादृशः ॥३

तदेन सेतुमात्मान अग्निं वै विश्वतोमुखम् ।
हृदिस्थ सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् ॥४
हुत्वाष्टावाहुती सम्यक् शुचिस्तद्गतमानस ।
वैश्वानर हृदि यन्तु यथावदनुपूर्वश ।
अप: पूर्वं सकृत् प्राश्य तुष्णी भूत्वा उपासते । ५
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुति स्मृता ।
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥६
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ।
स्वाहाकारै परं हुत्वा शेष भुञ्जीत कामत ।
अप पुन सकृत् प्राश्य त्वाचम्य हृदय स्पृशेत् ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—इस प्रकार से चौदह प्रकार वाले इस संसार के मण्डल को समझ कर संसार के भय से पीड़ित होते हुए वैसे कर्मों के करने का आरम्भ करना चाहिए ॥१॥ इस संसार के चक्र से परिवर्तित होते रहने वाला फिर स्मरण किया करता है। इसलिये निरन्तर योग से युक्त होकर ध्यान मे परायण युञ्जान होवे और इस तरह से योग का आरम्भ करना चाहिए कि फिर आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लेवे ॥२॥ यही आद्य परम ज्योति है, यही सर्वोत्तम सेतु है, यह प्राणियों का विशेष रूप से बंधन होता है और सम्भेद सम्मित नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये आत्मा स्वरूप सेतु को, विश्वतोमुख अग्नि को जो कि समस्त प्राणियो के हृदय मे स्थित होता है, विधान के ज्ञाता को उसकी उपासना करनी चाहिए ॥४॥ पवित्र होकर उसी मे अपने मन को सन्निविष्ट करने वाले को भली-भाँति आठ आहुतियो से हवन करना चाहिए। जो वैश्वानर हृदय मे स्थित है उसी के लिये यथावत् क्रम से आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्व मे एकबार जल का पान कर फिर मौन होकर उपासना करे ॥५॥ प्रथम आहुति 'प्राणाय स्वाहा'—इससे बताई गई है। दूसरी आहुति 'अपानाय स्वाहा'—इससे देवे और तीसरी आहुति 'समानाय स्वाहा'—इससे देनी चाहिए ॥६॥ उदानाय स्वाहा'—इससे चौथी व्यानाय स्वाहा'—इससे पाँचवी आहुति देवे। स्वाहाकारों से पर को हवन कर शेष का इच्छा पूर्वक

भोजन करे । फिर एकबार जल का पान कर तीन बार आचमन करे और हृदय का स्पर्श करना चाहिए ॥७।

ॐप्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक ।
स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्याययेत् स्वयम् ॥८
त्व देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्व चतुरा वृषा ।
मृत्युनोऽसि त्वमस्मभ्य भद्रमेतद्धुत हवि ॥९
एव हृदयमालभ्य पादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे ।
विश्राम्य दक्षिण पाणि नाभि वै पाणिना स्पृशेत् ।
तत पुनरुपस्पृश्य चात्मानमभिसस्पृशेत् ॥१०
अक्षिणी नासिका श्रोत्रे हृदय शिर एव च ।
द्व वात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ॥११
तयो प्राणोऽन्तरात्मास्य बाह्योऽपानोऽत्र उच्यते ।
अन्न प्राणस्तथापान मृत्युर्जीवितमेव च ॥१२
अन्न ब्रह्म च विज्ञेय प्रजाना प्रसवस्तथा ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।
वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते ॥१३
तदेवाग्नौ हुत ह्यन्न भुञ्जते देवदानवा ।
गन्धर्वयक्षरक्षासि पिशाचाश्चान्नमेव हि ॥१४

इसके अनन्तर 'ओ प्राणाना ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक । स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्याये स्वयम् —अर्थात् प्राणो की जो ग्रन्थि है इसकी आत्मा विशान्तक रुद्र है । वही रुद्र आत्मा के प्राण हैं। इस प्रकार से स्वय आप्यायित होना चाहिए ॥८॥ आप देवो मे भी सबसे बडे हैं, आप उग्र हैं, आप चतुर वृष हैं। आप हमारी मृत्यु के नाशक हैं। यह हुत हवि हमारे लिये कल्याणप्रद होवे ॥९॥ इस प्रकार हृदय का आलभन कर दक्षिण पाद के अगूठे मे विश्रान्ति कर फिर दक्षिण पाणि और नाभि का पाणि से स्पर्श करना चाहिए। इसके पश्चात् पुन आचमन कर अपन आपको स्पर्श करे ॥१०॥ तथा दोनों नत्रों का नासिका, दोनो कानो को हृदय को और शिर को स्पर्श करे।

प्राण और अपान ये दोनों दो आत्माऐं कहीं गई हैं ॥११॥ उन दोनों का अन्तरात्मा प्राण होता है। इसका बाह्य आत्मा अपान है यह कहा जाता है। अन्न प्राण तथा अपान है, मृत्यु और जीवन है ॥१२॥ अन्न को ब्रह्म जानना चाहिए तथा अन्न को प्रजाओं का प्रसव समझना चाहिए। अन्न से प्राणी होते हैं और उनकी स्थिति भी अन्न से कही जाती है तथा भूतों की वृद्धि भी अन्न से ही होती है, इसी लिये अन्न को ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ यही अन्न जब अग्नि में हुत होता है तो उस अन्न को देव और दानव खाते हैं। गन्धर्व, यक्ष और राक्षस तथा पिशाच भी अन्न का ही भोग करते हैं ॥१४॥

॥ शौचाचार लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥१
उदकार्थी तु शौचाना मुनीनामुत्तमं पदम्।
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति ॥२
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अवमानं विषं तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति।
गुरोः प्रियहिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ॥४
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्।
प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम्।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५
चक्षुपूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम् ॥६
आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित्।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥७

श्रीवायुदेव कहते हैं—इसके आगे शौचाचार का लक्षण बतलाया जाता है जिसको अनुष्ठित करने पर शुद्ध आत्मा वाला होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उदक को चाहने वाला शुद्ध मुनियों का उत्तम

पद होता है। जो उनमें प्रमाद से रहित होता है वह मुनि कभी भी प्रम
नहीं होता है ॥२॥ मान और अवमान ये दोनों हैं और इन्हीं दोनों का अमृ
तथा विष कहते हैं। उनमें जो अवमान है वही विष होता है और मान
अमृत कहा जाता है ॥३॥ जो उनमें अप्रमत्त होता है वह मुनि दुःखित नहीं
होता है। जो गुरु के प्रिय कार्य और हितप्रद कर्म में युक्त होता है वह ए
सम्वत्सर तक वास करता है ॥४॥ जो नियम निर्धारित हैं उनमें अप्रमत्त होत
हुआ सर्वदा कर्मों का पूर्ण पालक होना चाहिए। अनुज्ञा को प्राप्त करके इस
अनन्तर ज्ञान का आगमन उत्तम होता है। सदा धर्म का विरोध न करते हु
ही इस भूमण्डल पर विचरण करना चाहिए ॥५॥ नेत्रों से पवित्र करके अर्था
आँखों से अच्छी तरह देख भाल के मार्ग में आगे चलना चाहिए तथा वस्त्र
पवित्र करके अर्थात् सर्वदा कपड़े से छानकर ही जल पीना चाहिए। सत्य
पूत करके अर्थात् सचाई से पवित्र की हुई वाणी को बोलना चाहिए, यह ध
शास्त्र का अनुशासन अर्थात् आदेश है ॥६॥ योग का वेत्ता पुरुष श्राद्ध, यहाँ
कहीं भी आतिथ्य ग्रहण न करे। इस प्रकार से योगी अहिंसक होता है य
विचारणा है ॥७॥

वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने ।
विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ॥८
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च ।
युक्तस्तथा चरेद्भैक्षं सतां धर्ममदूषयन् ॥९
भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥१०
अत ऊर्द्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥११
अत ऊर्द्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ।
भैक्षचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥१२
भैक्षं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च ।
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं शक्तिनोऽपि वा ॥१३

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिना सिद्धिवर्द्धना.।
आहारांस्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठ भैक्षमिति स्मृतम् ।।१४

वह्नि के धूम रहित तथा व्यङ्गार होने पर तथा मत्र जनों के भुक्तवान् होने पर मतिमान् योगी को विचरण करना चाहिए किन्तु उन्ही घरो मे नित्य नहीं करे ।।८।। जिस प्रकार से एव अवमन्यमान होते हैं और जिस तरह परिभूत होते हैं युक्त को उस प्रकार से सत्पुरुषो के धर्म को दूषित न करते हुए भिक्षा करनी चाहिए ।।९।। योगी पुरुष को गृहस्थो मे तथा यथा चार गृहो मे भिक्षा चरण करना चाहिए । इसके लिये यही वृत्ति परम श्रेष्ठ शास्त्र मे उपदिष्ट की जाती है ।।१०।। इसके आगे द्विज को जो शार्ता न गृहस्थ हो उनमें, श्रद्धालो मे दान्तों मे, श्रोत्रियो मे और महान् आत्माओ मे भिक्षाचरण करना चाहिए ।।११।। इसके बाद मे आगे फिर जो दुष्ट तथा पतित न हो उनमे एव विवर्णो मे भैक्षचर्या करे किन्तु यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ।।१२।। भिक्षा मे यवागू, तक्र, पय, यावक फल मूल अथवा विपक्व पिण्याक अथवा जो भी शक्तिपूर्वक दिया गया हो ग्रहण करे ।।१३।। इतने जो मैंने बताये हैं वे सब योगियो की सिद्धि के बढाने वाले आहार होते हैं । उनके सिद्ध हो जाने पर परम श्रेष्ठ भैक्ष कहा गया है ।।१४।।

अबिन्दु य कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते ।।१५
योगिना चैव सर्वेषा श्रेष्ठ चान्द्रायण स्मृतम् ।
एक द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ।।१६
अस्तेय ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ।।१७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्य स्वाध्याय इत्येते नियमा परिकीर्तिता ।।१८
बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्ध. कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणा विधीयते ।।१९
प्राप्यते याचिग देवाङ्कुशनेव निवारित. ।

एव ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मष. ।
विमुक्तबन्ध. शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०
वेदैस्तुत्या सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्य ज्ञानिनामाहुरग्रयम् ।
ज्ञानाद्धयान सङ्गरागव्यपेत तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धि: ॥२१
दम शम सत्यमकल्मषत्व मौन च भूतेष्वखिलेष्वथार्ज्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिद तथार्ज्जव प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्वा ॥२२
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवात्मरतिर्जितेन्द्रिय' ।
समाप्नुयुर्योगमिम महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामला. ॥२३

जो कुशा के अग्रभाग स मास मास मे जल की बूदो का अशन किया करता है और जो न्याय से भिक्षा किया करता है वह पहिले कहे हुए से भी विशेषता से युक्त होता है ॥१५॥ और योगियो के लिये चान्द्रायण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । एक दो तीन और चार चान्द्रायण व्रतो को शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए ॥१६॥ चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना लोभ न करना, त्याग अहिंसा और परमार्थिता ये व्रत भिक्षुओ के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥१७॥ क्रोध न करना, गुरु की सेवा, शौच, अ हार का हल्कापन नित्य वेद का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं ॥१८॥ बीज योनि वाला तथ गुणो के शरीर वाला कर्मों से बँधा हुआ है । अरण्य हाथी की तरह मनुष्यो के लिये विधान किया जाता है ॥१९॥ अङ्कुश से जैसे निवारित होकर शीघ्र ही प्राप्त किया जाता है इसी प्रकार से शुद्ध ज्ञान के द्वारा दग्ध बीज वाला, कल्मष हीन, विमुक्त बन्धन वाला शान्त यह मुक्त कहा जाता है ॥२०॥ वेदों से स्तुति से, समस्त यज्ञो की क्रिया, यज्ञ में जप ज्ञानियो को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । ज्ञान से सङ्ग और राग से विरहित ध्यान कहा गया है । उसके प्राप्त पर शाश्वत पुरुष की प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ दम, शम, सत्य, अकल्मषत्व मौन, समस्त प्राणियो में सीधापन तथा आर्जव इसको ज्ञान से विशुद्ध सत्त्व वाले लोग अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं ॥२२॥ समाहित अर्थात् पूर्ण सावधान, ब्रह्म में तत्पर रहने वाले अप्रमादी, पवित्र, आत्मा मे रति रखने वाले और इन्द्रिय को जीत लेने वाले, महान् बुद्धि वाले, अनिन्दित एव अमल महर्षिगण इस योग को समापन करें ॥२३॥

॥ परमाश्रय प्राप्ति ॥

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ।
अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥१
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ।
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ॥२
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तुपितश्चरेत् ।
अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥३
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रिय ।
पिधाय बुद्धया द्वाराणि ध्याने ह्येव मनो दधेत् ॥४
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ।
नदीनां पुलिने चैव नित्य युक्त सदा भवेत् ॥५
वाग्दण्ड कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रय ।
यस्यैते नियता दण्डा स त्रिदण्डी व्यवस्थित ॥६
अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रिय शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ।
इदं शरीरं प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥७

श्रीवासुदेव ने कहा—तीन आश्रमों का त्याग कर परमाश्रम को प्राप्त करे और एक सम्वत्सर के अन्त मे सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति कर लेवे ॥ १ ॥ श्री गुरुचरण की आज्ञा को प्राप्त करके इस भूमण्डल मे विचरण करे और जो जानने के योग्य एव साधक ज्ञान हो उसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिए क्योकि इस समय परम सार स्वरूप ज्ञान ही अत्यावश्यक होता है ॥२॥ यह ज्ञान है और यही जानने के योग्य है—इस प्रकार से तुष्ट होकर विचरण करना चाहिए। सहस्र कल्पो की आयु वाला होकर भी जो जानने के योग्य होता है उसे प्राप्त नही किया करता है ॥३॥ सब प्रकार के सङ्गों को त्याग देने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, हलका तथा स्वल्प आहार करने वाला, अपनी इन्द्रियो को काबू में रखने वाला बुद्धि से द्वारो को ढाँककर इस प्रकार से मन को ध्यान में लगावे ॥४॥ जो बिल्कुल शून्य स्थान हो उनमे अवकाशो मे, गुफाओं मे तथा वन मे एव नदियों के पुलिन मे नित्य युक्त होते हुए सदा रहना चाहिए

॥५॥ वाणी का दण्ड, कर्म का दण्ड और मन रूपी दण्ड ये तीन प्रकार के दण्ड कहे गये हैं। जिसके पास ये तीन दण्ड होते हैं वही त्रिदण्डी व्यवस्थित होता है ॥६॥ ध्यान मे रति रखने वाला अवस्थित होकर तथा अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर, शुभ एवं अशुभ दोनो प्रकार के कर्मों को त्याग कर इस शरीर को जो त्याग देता है वह शास्त्र की पद्धति से चलने वाला फिर न उत्पन्न होता है और न कभी मृत्यु को ही प्राप्त होता है अर्थात् आवागमन से मुक्त होकर वह मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ॥७॥

॥ प्रायश्चित्त विधि ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ।
प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन यान्यकामकृतानि तु ।
अथ कामकृतेप्याहुः सूक्ष्मधर्मविदोजनाः ॥१
पापञ्च त्रिविध प्रोक्त वाङ् मनःकायसम्भवम् ।
सतत हि दिवा रात्रौ येनेद वध्यते जगत् ॥२
न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीतिपरा श्रुतिः ।
क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥३
भवेद्धीरोऽप्रमत्तस्तु योगो हि परमं बलम् ।
न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ।
तस्माद्योग प्रशसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिणः ॥४
अविद्या विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परापर धीरा. पर गच्छन्ति तत्पदम् ॥५
व्रतानि यानि भिक्षूणा तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकापकमे तेषा प्रायश्चित्त विधीयते ॥६
उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
प्राणायामसमायुक्त कुर्यात्सान्तपन तथा ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—अब इससे आगे यतियों के निश्चय को बतलाते हैं और प्रायश्चित्तों को बतलाया जाता है जो कि तात्त्विक रूप से बिना इच्छा के [illegible] हैं। इसके अनन्तर सूक्ष्म धर्म के [illegible] [illegible] [illegible] तों को भी कहते

है ॥ १ ॥ इस लोक म पाप तीन प्रकार का बतलाया गया है जो कि वाणी, मन और शरीर से उत्पन होता है । सवदा रात दिन जिस पाप से यह समस्त ससार बाधित होता रहता है ॥ २ ॥ न तो यहाँ जगत् मे यह और न कम ही कोई भी नही रहता है, यह पर–श्रुति है । आयु के विशेप रूप स धारण करने से एक क्षणमात्र ही का प्रयोग करें ॥ ३ ॥ धीर एव अप्रमत्त होना चाहिए । योग सबमे प्रबल बल होता है । इस ससार मे योग से अधिक मनुष्यों का हित साधक अ य कुछ भी दिखलाइ नही देता है । इसी लिये धम के तत्व के जानन मनीषीगण याग की ही अत्यधिक प्रशसा किया करते हैं ॥ ४ ॥ विद्या से अर्थात् ज्ञान से अविद्या के अ धकार को पार करके तथा सर्वोत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर पुरुष परापर को दखकर उस परम पद को जाया करते हैं ॥ ५ ॥ जो यतियो के लिय व्रत तथा उपव्रत बताये गय हैं उनमे एक एक के अपक्रम करने मे प्रायश्चित्त का विधान होता है ॥ ६ ॥ स्वेच्छया स्त्री का उपगमन कर लो प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्राणायाम से समायुक्त होते हुए सा तपन व्रत करना चाहिए ॥ ७ ॥

तनश्चरति निर्दे्श कृच्छ्रस्यान्ते समाहित ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ।
न ममयुक्त वचन हिनस्तीति मनीषिण ॥८
तथापि च न कर्त्तव्य प्रसङ्गो ह्येष दारुण ।
अहोरानाधिक कश्चिन्नास्त्यधम इति श्रुति ॥९
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैमु निभिस्तथा ।
यदेतद्द्रविण नाम प्राणा ह्येते बहिश्चरा ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥१०
एव कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युत ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ॥११॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन सवत्सरमिति श्रुति ।
तत सवत्सर स्यान्ते भूय प्रक्षीणकल्मष ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ॥१२

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षु पशून् मृगान् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्र कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥१३
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥१४

इसके अनन्तर कृच्छ्र के अन्त मे निर्देश मे चरण करना चाहिए और पूर्ण समाहित होकर रहना चाहिए । भिक्षु को पुन अपने आश्रम मे आकर अतन्द्रित होते हुए रहना चाहिए । मनीषी लोग कहते हैं कि कभी मर्मयुक्त वचन के द्वारा हिंसा न करे ॥८॥ लोभी यह दारुण प्रसङ्ग कभी नही करना चाहिए । अहो-रात्र से अधिक कोई अधर्म नही है—ऐसी श्रुति है । ६॥ देवताओं ने तथा मुनियों ने यह सबसे परा-हिंसा बताई है । जो यह द्रविण है वह भी प्राण के ही समान है क्योंकि प्राण बहिश्चर हो जाया करते हैं । वह उसके प्राणो का ही हरण किया करता है जो कि उसका धन हरण करता है अर्थात् यहाँ प्राण और धन मे कुछ भी अन्तर नहीं होता है ॥१०॥ जो कोई भी ऐसा करता है वह परम दुष्ट होता है आचरण से भ्रष्ट तथा व्रत से च्युत हो जाया करता है । उसे फिर निर्वेद प्राप्त करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥ शास्त्र मे बताई हुई विधि से एक वर्ष पर्यन्त ऐसा करे ऐसी श्रुति है । फिर संवत्सर के अन्त मे प्रक्षीण कल्मष वाला होता है । इसके बाद में फिर निर्वेद को प्राप्त कर भिक्षु को अतन्द्रित होते हुए चरण करना चाहिए ॥१२॥ समस्त प्राणियों की हिंसा न करे और वह कर्म, मन तथा वाणी किसी के भी द्वारा नही करनी चाहिए । यदि बिना इच्छा के भी भिक्षु पशु तथा मृग की हिंसा करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त करना ही चाहिए और वह कृच्छ्राति कृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत है ॥१३॥ यदि कोई यति किसी स्त्री को देख कर इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण स्कन्दन करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये सोलह प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए ॥१४॥

दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।
त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१५

रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नातोऽशेव तु धारणा ।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विज ॥१६
एकान्न मधु मांस वा ह्यामश्राद्धं तथैव च ।
अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥१७
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात् प्रमुच्यते ॥१८
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसम्भवम् ।
सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥१९
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्त भूतेषु चरन् स माहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते २०

दिन में जो विप्र स्कन्न होता है उसके प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है कि उसे तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१५॥ जो रात्रि में स्कन्न हो अर्थात् स्खलित हो तो उसे शुद्धि स्नान करके केवल बारह ही प्राणायाम कर लेने चाहिए। इन द्वादश प्राणायामों से वह द्विज निष्पाप हो जाता है ॥१६॥ एक ही अन्न, मधु मांस, आमश्राद्ध, प्रत्यक्ष लवण ये यतियों के अभोज्य बताये गये हैं इनमें किसी भी एक का अतिक्रमण करने से प्रायश्चित्त का विधान होता है। प्राजापत्य कृच्छ व्रत करने से इस पाप से प्रमुक्त होता है ॥१७–१८॥ जो कोई वाणी, मन और शरीर में उत्पन्न होने वाले पाप का व्यतिक्रम करे तो सत्पुरुषों के साथ विशेष रूप से निश्चय करके उसका प्रायश्चित्त जैसा भी वे बतावें करना चाहिए ॥१९॥ यति को सर्वदा विशुद्ध बुद्धि वाला और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक मात्र दृष्टि से देखते हुए परम समाहित होकर समस्त प्राणियों में विचरण करना चाहिए। ऐसा यति शाश्वत ध्रुव और अव्यय और सत्पुरुषों का परम स्थान प्राप्त करता है और फिर इस जगत् में जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२०॥

॥ अरिष्ट वर्णन ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यति चात्मनः ॥१

अरुन्धती ध्रुवञ्चैव सोम च्छायां महापथम् ।
यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरः संवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिवन्तमादित्य रश्मिवन्तञ्च पावकम् :
य. पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ॥३॥
वमेन्मूत्रं करीष वा सुवर्णं रजत तथा ।
प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ॥४
अग्रत पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदम्भवेत् ।
पांसुले कर्दमे वापि सप्तमासान् स जीवति ॥५
काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खग कश्चित् षण्मासान्नातिवर्त्तते ॥६
बध्ये द्वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुन. ।
छाया वा विकृता पश्येच्चतुः पञ्च स जीवति ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—अब आगे अरिष्टों को बताते हैं, उन्हे जानलो जिस ज्ञान विशेष से अपनी मृत्यु को देखलेता है ॥१॥ जो अरुन्धती, ध्रुव, सोम की छाया और महापथ को नहीं देखता है वह मनुष्य एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥२॥ जो मनुष्य बिना रश्मियों वाले सूर्य को तथा रश्मियों से युक्त पावक को देखता है वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥३॥ जो मनुष्य मूत्र करीष, सुवर्ण अथवा रजत का वमन प्रत्यक्ष या स्वप्न मे करता है वह दश मास तक जीवित रहता है ॥४॥ ऐसीले स्थान मे अथवा कीच मे आगे या पीछे मे जिसके पद खण्ड हो जाते मास पर्यन्त जीवन धारण किया करता है ॥५॥ काक, कपोत अथवा गृध्र जिसके मस्तक पर निलीन हो जावे अथवा क्रव्याद या पक्षी बैठ जावे वह मनुष्य छै मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥६॥ कौओं की पंक्तियों से अथवा पांशु की वर्षा से बध्य हो जावे अथवा विकृत छाया को देखे वह मनुष्य चार या पांच मास तक ही जीवित रहता है ॥७॥

अनभ्रे विद्युत पश्येद्दक्षिणा दिशमाश्रिताम् ।
उदकेन्द्रधनुश्चापि त्रयो द्वौ स स जीवति ॥८

अप्सु वा यदि वाऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथात्मान मामादूर्द्ध न जीवति ॥९
शवगन्धि भवेद्गात्र वसागन्धि ह्यथापि वा ।
मृत्युह्यु पस्थितस्तस्य अर्द्ध मासं स जीवति ॥१०
सम्भिन्नो मारुतो यस्य गर्मस्थानानि कृन्तति ।
अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥११
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ।
गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणामाशा स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१३
छिद्र वासश्च कृष्णञ्च स्वप्ने यो बिभृयान्नर ।
भग्न वा श्रवणं दृष्ट्वा विद्यन्मृत्युरुपस्थित ॥१४

मेघाडम्बर के बिना ही जो दक्षिण दिशा मे आश्रित बिजली को देखता है अथवा उदक मे इन्द्र धनुष को देखा करता है वह तीन या दो मास तक ही जीवित रहा करता है ॥८॥ जलमें अथवा दर्पण में जो अपने आपको नही देखता है अथवा बिना सिर वाला अपने आपको देखता है वह मनुष्य एक मास से अधिक जीवित नही रहता है ॥९॥ जिसका शरीर शव की गन्ध के समान गन्धवाला हो जावे अथवा वसा (चर्बी) की गन्ध वाला हो जावे उस की मौत उपस्थित ही समझ लेना चाहिए। वह केवल १५ दिन तक ही जीवित रहा करता है ॥१०॥ सम्मिन्न वायु जिसके गर्भस्थानों को कृन्तित किया करता है और जल से स्पर्श हो जाने पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है उस मनुष्य की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेना चाहिए ॥११॥ जो रीछ या बन्दरों से युक्त रथ मे गान करता हुआ दक्षिण दिशा में स्वप्न में जावे उसकी मौत उपस्थित ही जान लेनी चाहिए। १२॥ कृष्ण वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली श्यामा अथवा जाती हुई अङ्गना स्वप्न मे जो दक्षिण दिशा को ले जावे तो वह जीवित नही रहता है ॥१३॥ जो स्वप्न मे छिद्र और कृष्ण वस्त्र को धारण करता है अथवा भग्न श्रवण को देखे उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१४॥

आमस्तयतनायस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ।
दृष्ट्वा तु तादृश स्वप्न सद्य एव न जीवति ॥१५

भस्माङ्गाराश्च केशाश्च नदी शुष्का भुजङ्गमान् ।
पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत तादृश. ॥१६

कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधै ।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने य सद्यो न स जीवति ॥१७

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्ष यस्य वै शिवा ।
क्रोशन्ती सम्मुखाम्योति स गतायुर्भवेन्नर ॥१८

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदय पीड्यते भृशम् ।
जायते दन्तहर्षश्च त गतायुषमादिशेत ॥१९

भूयो भूय श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा ।
दीपगन्धञ्च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२०

रात्रौ चेन्द्रायुध पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मान न पश्येन्न स जीवति ॥२१

जो नीचे से मस्तक पर्यन्त पङ्क सागर मे निमग्न हो जावे अथवा इस प्रकार का स्वप्न देखे वह तुरन्त ही शेष जीवन वाला हो जाता है ॥१५॥ जो कोई भस्म अङ्गार केश नदी जो सूखी हुई हो, और सर्पो को दश रात्रि तक स्वप्न मे बराबर देखा करता है ऐसा आदमी जीवित नही रहा करता है ॥१६॥ कृष्ण वर्ण वाले और विकट आकार वाले तथा उद्यत हथियारो वाले पुरुषो के द्वारा जो स्वप्न मे पाषाणो से ताडित किया जाता हो वह मनुष्य तुरन्त ही मृत्युगत हो जाता है और जीवित नही रहा करता है ॥१७॥ प्रात काल मे सूर्य के उदय समय मे गीदड की मादा रोती हुई मुख के सामने से आती है वह मनुष्य गतयु होता है ॥१८॥ जिस पुरुष के केवल स्नान करने ही से हृदय मे बहुत |ही अधिक पीडा होती है और दन्तहर्ष होता है वह मनुष्य गतायु होता है अर्थात् यह समझ लेना चाहिए कि अब उसकी आयु समाप्त हो चुकी है । १९॥ जो बार-बार दिन मे अथवा रात्रि मे श्वास लिया करता है और दीप ग ध को ... है - की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेनी चाहिए ॥२०॥ जो मनुष्

रात्रि में तो देखता हो और दिन में नक्षत्र मण्डल को देखता हो और दूसरे के नेत्रों में अपने आकार को नहीं देखता है वह जीवित नहीं रहा करता है ॥२१॥

नेत्रमेकं स्रवेदस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः ।
नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥२२
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभानं च वै मुखम् ।
गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२३
मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन् नृत्यश्च यो नरः ।
याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२४
यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसन्निभाः ।
स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२५
उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ।
यस्य सोऽपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥२६
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूप परं भवेत् ।
घोषं न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥२७
श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारश्चास्य न विद्यते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८

जिसके एक नेत्र से स्राव होता हो और कान दोनों अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये हों तथा नाक टेढ़ी हो गई हो उस मनुष्य को गतजीवित समझ लेना चाहिये ॥ २२ ॥ जिसकी जिह्वा काली और खरखरी हो गई हो तथा मुख पङ्क की कान्ति के समान कान्ति वाला हो गया हो एवं गण्ड चिपिटक और रक्त हो गये हों उस मनुष्य की उपस्थिति नहीं समझ लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ खुले हुये केशों वाला, हँसता हुआ, गाता हुआ और नाचता हुआ जो मनुष्य दक्षिण दिशा की ओर मुख किये हुये जाता है उसके जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य के पसीने में उत्पन्न होने वाली श्वेत सरसों के सदृश श्वेत कण बार बार होते हैं उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिये ॥२५॥ जिस मनुष्य के रथ में ऊँट अथवा गधे जुड़े हुये हों और स्वप्न में दक्षिण की ओर मुख किये हुये जाता हो वह मनुष्य भी जीवित नहीं रहा करता है ॥२६॥

यहाँ पर ये दो परम अरिष्ट होते हैं और यह रूप भी पर होता है। कानों में ध्वनि न सुनाई देती हो और नेत्र मे ज्योति नहीं देखता हो ॥ २७ ॥ स्वप्न में जो श्वभ्र मे निपतित होवे और इसका द्वार न होवे और जो श्वभ्र से नहीं उठता है उसके जीवन का बिल्कुल अन्त समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥

ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्त्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥२९
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्ष योऽभिहन्यते ।
त पश्येदथ हन्तार स हतस्तु न जीवति ॥३०
अग्निप्रवेश कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः ।
स्मृति नोपलभेच्चापि तदन्त तस्य जीवितम् ॥३१
यस्तु प्रावरण शुक्ल स्वक पश्यति मानव ।
रक्त कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थित ॥३२
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ।
त्यक्त्वा भयविषादञ्च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नर. ॥३३
प्राची वा यदि वोदीची दिश निष्क्रम्य वै शुचिः ।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्जिते ॥३४
उदङ् मुख प्राङ् मुखो वा स्वस्थ. स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
समकायशिरोग्रीव धारयेन्नावलोकयेत् ॥३५

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व हो तथा साम्प्रतिष्ठित रक्त एव फिर सम्परिवर्त्तमान न हो, मुख की उष्मा (गर्मी) तथा नाभि सुषिरा हो एव मूत्र अत्यधिक उष्ण हो ऐसा व्यक्ति विषम स्थिति मे ही रहने वाला होता है ॥ २९ ॥ दिन में अथवा रात्रि मे जो प्रत्यक्ष रूप से हन्यमान होता है उस मारने वाले को देखे जो हत हुआ है वह जीवित नहीं रहता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य स्वप्न के अन्त मे अग्नि मे प्रवेश किया करता है और स्मृति को उपलब्ध नहीं किया करता उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपना प्रावरण अर्थात् आच्छादन शुक्ल देखता है तथा स्वप्न मे रक्त और कृष्ण

देखता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ अरिष्ट से सूचित देह मे उस काल के उपस्थित होने पर भय और विषाद का त्याग करके बुद्धिमान मनुष्य को उद्गमन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पूर्व या उत्तर दिशा मे बाहिर निकलकर पवित्र हो जावे और अत्यन्त स्थावर समतल देश मे जो कि एकान्त एवं जनो से विवर्जित हो, वहाँ पर उत्तर या पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्वस्थता से बैठ जावे तथा आचमन करे। स्वस्तिक पर उपविष्ट होते हुये महेश्वर को प्रणाम करे। अपने पूरे शरीर को, ग्रीवा को तथा मस्तक को समस्थिति मे रक्खे। इधर उधर किसी भी ओर नही देखना चाहिये ॥ ३४—३५ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
प्रागुदक्प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत योगवित् ॥३६
प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषो स्पर्शने तथा।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥३७
कालधर्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्वशः।
द्वादशाध्यात्ममित्येव योगधारणमुच्यते ॥३८
शतमष्ट शतं वापि धारणा मूर्ध्नि धारयेत।
न तस्य धारणायोगोद्वायुः सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९
ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहितः।
अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्त्वक्षरी भवेत् ॥४०

जिस प्रकार निर्वात स्थान मे रक्खा हुआ दीपक बिल्कुल भी उसकी ज्योति नही हिलती है वही उपमा यहाँ पर बताई गई है। प्राक्, उदक्, प्रवण देश मे योग के ज्ञाता व्यक्ति को अभ्यास करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रमण करने वाले प्राण मे, नेत्रो मे, स्पर्शन अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय मे, श्रोत्र मे, मन मे, बुद्धि मे तथा वक्षस्थल मे धारण करे ॥ ३७ ॥ काल के धर्म को और सब ओर के समूह को जानकर द्वादश अध्यात्म है यही योग का धारण करना कहा जाता है ॥ ३८ ॥ सौ अथवा आठ सौ धारणा को मस्तक मे धारण करना चाहिये। उसकी धारणायोगोद्वायु सब प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर समाहित होकर ओङ्कार से देह को आपूरित करना चाहिये। इसके अनन्तर ओङ्कारमय योगी क्षरित न होते हुये अक्षरी हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ ओङ्कार प्राप्ति लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ओङ्कार प्राप्ति लक्षणम् ।
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्य जनश्चात्र सस्वरम् ॥१
प्रथमा वैद्युतो मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ।
तृतीया निर्गु णी विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ॥२
गन्धर्वीति च विज्ञ`या गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥३
तथा प्रयुक्तयोङ्कार प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ।
तथोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ॥४
प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ॥५
ओमित्येकाक्षर ब्रह्म गुहाया निहित पदम् ।
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नय. ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च ॥६
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञ`या परमार्थत ।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यता व्रजेत् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बतलाते हैं। यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमे व्यञ्जन जो होता है वह मुक्त होता है ॥ १ ॥ प्रथमा मात्रा वैद्युती होती है, द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया मात्रा निर्गु णी होती है। इस प्रकार से अक्षरों मे गमन करने वाली मात्रा को जाननी चाहिये ॥ २ ॥ गान्धार नामक स्वर से समुत्पन्न जो मात्रा है वह गन्धर्वी इस नाम से कही जाती है। पिपीलिका के समान स्पर्श करने वाली मूर्द्धा मे प्रयुक्त की हुई दिखाई देती है ॥ ३ ॥ उस प्रकार से प्रयोग मे लाया हुआ ओङ्कार मूर्द्धा मे प्रतिनिर्वात होता है। इस तरह यह ओङ्कार से परिपूर्ण योगी अक्षर मे अक्षरी हो जाता है ॥ ४ ॥ प्रणव धनुष है आत्मा शर है और उसका लक्ष्य स्थान ब्रह्म होता है। यदि अप्रमत्त होते हुये वध्य हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है ॥ ५ ॥ 'ओम्' यह

ाक्षर वाला ब्रह्म पद गुहा मे निहित है। 'ओम्'— यह तीन वेद हैं—तीन
क हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनो ऋक् साम और यजु विष्णु के क्रम
॥ ६ ॥ यहाँ चार मात्राऐ हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लनी चाहिये।
समे युक्त जो योगी है वह सालोक्यता को जाता है ॥ ७ ॥

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरित स्मृत ।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति सगित ॥८
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते ।
सव्य जनो मकारश्च स्वर्लोकश्च विधीयते ॥९
ओङ्कारस्तु त्रयो लोका शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् ।
भुवनान्तश्च सत्सर्व ब्राह्म तत्पदमुच्यते ॥१०
मात्रापद रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिव पदम् ।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पद ममुपासते ॥११
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्र हि तदक्षरम् ।
उपास्य हि प्रयत्नेन शाश्वत पदमिच्छता ॥१२
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम् ।
तत. प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ॥१३
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वश ।
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि ॥१४

इस में अकार को अक्षर समझना चाहिये और उकार स्वरित कहा गया
। मकार प्लुत जानना चाहिये। इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला सङ्गित
ोता है ॥ ८ ॥ इसमे जो अकार है वह भूलोक है और उकार भुवर्लोक कहा
ाता है। व्यञ्जन के साथ मकार जो है वह स्वर्लोक होता है ॥ ९ ॥ ओङ्कार
ो है यह तीन लोक हैं उसका सिर त्रिविष्टप होता है। वह सब भुवनान्त होना
। ब्राह्म उसका पद कहा जाता है ॥ १० ॥ मात्रा पद रुद्र लोक है और जो
मात्र है वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके
पद की समुपासना करते हैं ॥ ११ ॥ इसमे ध्यान मे रति रखने वाला होवे
और नित्य मात्रारहित उस अक्षर की शाश्वत पद की इच्छा रखने वाले के द्वारा

प्रयत्न के साथ उपासना करनी चाहिये ॥ १२ ॥ प्रथमा जो मात्रा है वह ह्रस्व होती है इसके पश्चात् दीर्घा मात्रा होती है और उसके आगे फिर तृतीया जो मात्रा होती है वह प्लुता होती है अर्थात् प्लुत वाली होती है ॥ १३ ॥ ये यथा विधि आनुपूर्वी के क्रम से मात्राऐ जान लेनी चाहिये। जितनी हो हो सकें उतनी ही धारण की जाती हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि ध्यायन्नात्मनि यः सदा।
अर्द्धमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥१५
मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शत समा।
न स तत प्राप्नुयात् पुण्य मात्रया यदवाप्नुयात् ॥१६
अम्बिन्दु य कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नरः।
संवत्सरशत पूर्ण मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१७
इष्टापूर्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम्।
अमक्षणे च मासस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१८
स्वाम्यर्थे युध्यमानाना शूराणामनिवर्त्तिनाम्।
यद्भवेत्तत फल दृष्ट मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१९
न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः।
यत् फल प्राप्नुयात् सम्यग् मात्रया तदवाप्नुयात् ॥२०
तत्र वै योऽर्द्ध मात्रो यः प्लुतो नामोपदिश्यते।
एषा एव भवेत् मार्गा गृहस्थानान्तु योगिनाम् ॥२१
एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्य समलक्षणा।
योगिनान्तु विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे।
अणिमादेनि विज्ञेया तस्माद्युञ्जीत ता द्विज ॥२२

जो सदा आत्मा में इन्द्रियों को मन को और बुद्धि को ध्यान करते हुए यदि यहाँ पर आठ मात्रा वाले का भी श्रवण करे तो फल को प्राप्त किया करता है ॥ १५ ॥ मास-मास में अर्थात् प्रत्येक मास में जो सौ वर्ष तक अश्वमेधों का यजन किया करता है वह भी उस पुण्य की प्राप्ति नहीं करता है जो मात्रा के द्वारा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो कुशा के अग्रभाग से जल की बिन्दुओं

को मास-मास में पीता है और बराबर सौ वर्ष तक पीता रहता है उसका जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त्त-यज्ञ का सत्यवाक्य मे जो फल होना है तथा माम के न खाने में जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा हो जाता है ॥ १८ ॥ अपने स्वामी के लिये युद्ध करते हुए शूरवीरो का जो कि पुन जगत् मे अनिवर्त्ती होते हैं उनका जो पुण्य-फल होता है वही मात्रा से प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥ अत्यन्त उग्र तप के द्वारा और भूरि दक्षिणा वाले यज्ञो के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वही फल भली भाँति मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करते हैं ॥ २० ॥ वहाँ पर जो आधी मात्रा वाला प्लुत इस नाम से कहा जाता है यही गृहस्थ योगियो को करनी चाहिये ॥ २१ ॥ यही मात्रा विशेष रूप स ऐश्वर्य के समान लक्षण वाली होती है और आठ लक्षण वाले ऐश्वर्य मे योगियो को विशेष रूप से होती है । अणिमादि ये जाननी चाहिये । इससे द्विज को उसका युञ्जन करना चाहिये ॥२२॥

एव हि योगी सयुक्त शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
आत्मान विन्दते यस्तु स सर्व विन्दते द्विज ॥२३
ऋचो यजूषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तक ॥२४
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूत ▮ तु जायते ।
योगी सङ्क्रमण कृत्वा याति वै शाश्वत पदम् ॥२५
अपि चात्र चतुर्हस्ता ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ।
प्रकृति विश्वरूपाख्या दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६

अजामेता लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी प्रजा सृजमाना स्वरूपाम् ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य ।
अष्टाक्षरा षोडशपाणिपादा चतुर्मुखी त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ।
आद्यामजा विश्वसृजा स्वरूपा ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्व व्रजन्ति ।
ये ब्राह्मणा. प्रणव वेदयन्ति न ते पुन ससरन्तीह भूय ॥२७
इत्येतदक्षर ब्रह्म परमोङ्कारसञ्ज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुन ॥२८

ओङ्कारं सर्वतः काले सर्वं विहितवान् प्रभुः ।
तेन तेन नु विष्णुत्वं नमस्कार महायशा. ॥३३
नमस्कारस्तथा चैव प्रणवस्तुवते प्रभुम् ।
प्रणव स्तुवते यज्ञो यज्ञ सस्तुवते नमः ।
नमस्तुवतिवै रुद्रस्तस्याद्रुद्रपद शिवम् ॥३४
इत्येतानि रहस्यानि यतीना वै यथाक्रमम् ।
यस्तु वेदयते ध्यान स पर प्राप्नुयात्पदम् ॥३५

जिस तरह रुद्रदेव के लिये किया हुआ नमस्कार समस्त धर्मों के फल वाला होता है और ध्रुव होता है वैसे अन्य देव के लिये किया हुआ नमस्कार वह फल प्राप्त नही कराता है ॥ ३१ ॥ इसलिये योगी का कर्त्तव्य है कि वह तीनो कालो मे महेश्वर की उपासना करे। ब्रह्म दश विस्तारक होता है और वह ब्रह्म विस्तार है ॥ ३२ ॥ प्रभु ने सर्व काल मे सबको ओङ्कार बनाया था। उस-उस से विष्णुत्व होता है। नमस्कार महान् यश वाला है ॥ ३३ ॥ नमस्कार प्रणव के लिये है, प्रणव प्रभु का स्तवन करता है। यज्ञ प्रणव का स्तवन करता है उस सस्तवन करने वाले के लिये नमस्कार है। नमः—यह रुद्र का स्तवन करता है इसलिये रुद्र पद ही शिव है ॥ ३४ ॥ यतियो के ये रहस्य हैं। इनको जो यथाक्रम जानता है और ध्यान करता है वह परम पद को प्राप्त किया करता है ॥ ३५ ॥

॥ कल्प-निरूपण ॥

ऋषीणामग्निकल्पाना नैमिषारण्यवासिनाम् ।
ऋषि. श्रुतिधर प्राज्ञः सावर्णिर्नाम नामतः ॥१
तेषा सोऽप्यग्रतो भूत्वा वायुं वाक्यविशारदः ।
सातत्य तत्र कुर्वन्त प्रियार्थे सत्रयाजिनाम् ।
विनयेनोपसगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ॥२
विभो पुराणसवद्धा कथा वै वेदसमिताम् ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् प्रसादात्सर्वदर्शिन ॥३

हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ।
कथ तत्तेजस देव लब्धवान् पुत्रमात्मन ॥४
कथ च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसभव ।
रुद्रत्व चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथ पुन ॥५
कथ च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं प्रीतिरनुत्तमा ।
सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणा ॥६
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येव सतत देवा गायन्ते नात्र सशय ।
भवस्य स कथ नित्य प्रणाम कुरुते हरि ॥७

श्री सूत जी ने कहा—नैमिषारण्य में निवास करने वाले अग्नि के समान ऋषियो मे से श्रुति को धारण करने वाला परम पण्डित सावर्णि नाम वाले ऋषि थे ॥ १ ॥ वचन बोलने में महापण्डित उन सब मे अग्रणी होकर सबका यजन करने वालों के प्रिय के लिये सर्वदा यहीं रहने वाले वायु के समीप विनय-पूर्वक उपस्थित होकर उस महान् द्युति वाले वायु से पूछा ॥ २ ॥ सावर्णि ने कहा—हे विभो ! पुराणो से सम्बद्ध तथा वेदो से सम्मित कथा को सर्वदर्शी आप से सुनने की हम इच्छा करते हैं आपके प्रसाद से उसे भली भाँति श्रवण करेगे ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भ भगवान् ने ललाट से नीललोहित अपने पुत्र उस तेजस्वरूप देव को कैसे प्राप्त किया था ? ॥ ४ ॥ कमल से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने आत्मज शर्व का फिर रुद्रत्व कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ ५ ॥ और भगवान् विष्णु की रुद्र के साथ किस तरह सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ? समस्त विष्णुमय देव हैं और सम्पूर्ण गण विष्णुमय हैं ॥ ६ ॥ विष्णु के समान कोई भी गति नही होती है । इस प्रकार से समस्त देवता गान किया करते हैं, इसमे कुछ भी सशय नहीं है । वह हरि नित्य ही भव को क्यो प्रणाम किया करते हैं ॥ ७ ॥

एवमुक्त तु भगवान् वायु सावर्णिमब्रवीत् ।
अहो साधु त्वया साधो पृष्ट प्रश्नो ह्यनुत्तमः ॥८
भवस्य पुत्रजन्मत्व ब्रह्मण सोऽभवद्यथा ।
ब्रह्मण पद्मयोनित्व रुद्रत्व शङ्करस्य च ॥९

द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्विष्णोश्चैव भवस्य च ।
यच्चापि कुरुते नित्य प्रणाम शंकरस्य च ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च शृणुत ब्रुवतो मम ॥१०
मन्वन्तरस्य सहारे पश्चिमस्य महात्मनः ।
आसीत्तु सप्तमः कल्प. पद्मो नाम द्विजोत्तम ।
वाराहः साम्प्रतस्तेषा तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११
कियता चैव कालेन कल्प. सम्भवते कथम् ।
किं च प्रमाण कल्पस्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१२
मन्वन्तराणा सप्ताना कालसख्या यथाक्रमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१३
कोटीना द्वे सहस्रे वै अष्टौ कोटिशतानि च ।
द्विपष्टिश्च तथा कोटचो नियुतानि च सप्ततिः ।
कल्पार्द्धस्य तु सख्यायामेतत् सर्वमुदाहृतम् ॥१४

श्री सूतजी ने कहा —सावर्णि ऋषि के इस प्रकार से कहने पर भगवान् वायुदेव ने कहा—हे साधो ! आपने यह बहुत ही अच्छा अत्युत्तम प्रश्न किया है ॥ ८ ॥ जिस तरह महादेव का ब्रह्मा से पुत्र का जन्म लेना हुआ और ब्रह्मा का पद्म योनित्व जैसे हुआ तथा शकर का रुद्रत्व जिस प्रकार से हुआ ॥ ९ ॥ विष्णु और शिव इन दोनो की पारस्परिक प्रीति जिस तरह से हुई थी और जो नित्य ही विष्णु शकर को प्रणाम किया करते हैं इन सब बातो को मैं तुम्हें विस्तार के साथ बताता हूँ और आनुपूर्वी के सहित बताता हूँ आप लोग मुझसे सब श्रवण करें ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तम ! महात्मा पश्चिम मन्वन्तर के सहार हो जाने पर पद्म नाम वाला सप्तम कल्प था । उनमे इस समय वाराह कल्प है उसके विस्तार को बताता हूँ ॥ ११ ॥ सावर्णि ने कहा—कल्प कितने समय में होता है और वह कैसे होता है ? कल्प का क्या प्रमाण होता है, यह पूछने वाले हम को बतलाइये ॥ १२ ॥ वायु ने कहा—सात मन्वन्तरो की काल की सख्या क्रम के अनुसार बतलाऊँगा । सक्षेप मे बतलाते हुए मुझसे सब जान लो ॥१३॥ दो सहस्र आठ सौ करोड़ तथा सत्तर नियुत बासठ करोड़ कल्प के आधे भाग की यह सख्या कह दी गई है ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदौ वर्षाग्रं लब्धमादिशेत् ।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः ।
द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ॥१५
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम् ।
एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्द्धं द्विगुणीकृतम् ॥१६
अनागतानां सर्वेषामेतदेव यथाक्रमम् ।
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ॥१७
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ।
चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ॥१८
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ।
एतत् कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रन्तु प्रमाणतः ॥१९
एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तितं ।
प्रणवान्ताश्च ये देवाः साध्या देवगणाश्च ये ।
विश्वे देवाश्च ये नित्या. कल्पं जीवन्ति ते गणाः ॥२०
अथ यो वर्त्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्यते ।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ॥२१

पूर्व में उक्त गुणच्छेद लब्ध वर्ष का अग्र बताना चाहिए । एक सौ अठहत्तर करोड़ दो सौ हजार नब्बे नियुत होता है ॥ १५ ॥ मानुष प्रमाण से जितना वैवस्वतान्तर है कल्प के अर्ध भाग को दुगुना करने पर वह कल्प जान लेना चाहिए ॥१६॥ अनागत सारों के काल की संख्या में प्रमाण भी यथाक्रम यही होता है, यह ऐश्वर मत है ॥ १७ ॥ अट्ठावन नियुत तथा अस्सी सौ और चौरासी अन्य प्रयुत प्रमाण से होते हैं ॥ १८ ॥ सप्तर्षिगण—मनु और इन्द्रादि देवगण यह काल का वर्षाग्र प्रमाण जान लेना चाहिए ॥ १९ ॥ इसी प्रकार से उनका मन्वन्तर मानुषान्त कहा गया है । प्रणवान्त जो देवता है, साध्य और जो देवगण हैं और जो नित्य विश्वेदेवा हैं वे सब गण एक कल्प पर्यन्त जीवित रहा करते हैं । यह जो कल्प वरत रहा है वह वाराह इस नाम से कहा जाता है । जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु होते हैं ॥ २०-२१ ॥

कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामत परिकीर्तितः ।
कस्माच्च कारणाद् वो वराह इति कीर्त्यते ॥२२
को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ।
वराह कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२३
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ।
वाराहश्च यथा कल्प कल्पत्व कल्पना च या ॥२४
कल्पयोरन्तर यच्च तस्य चास्य च कल्पितम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्ट यथाश्रुतम् ॥२५
भवस्तु प्रथम. कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ।
ज्ञातव्यो भगवानत्र ह्यानन्द साम्प्रत' स्वयम् ॥२६
ब्रह्मस्थानमिद दिव्य प्राप्त वा दिव्यसम्भवम् ।
द्वितीयस्तु भव कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७
भवश्चतुर्थो विज्ञेय पचमो रम्भ एव च ।
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठ सप्तमस्तु क्रतु स्मृत ॥२८

ऋषियों ने कहा—यह नाम से वाराह कल्प क्यों कहा गया है और किस कारण देव वाराह इस नाम से पुकारे जाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वाराह कौन थे ? किससे उत्पन्न हुए और क्या उनका स्वरूप था ? वाराह उत्पन्न कैसे हुए, यह सभी हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥ २३ ॥ श्री वासुदेव ने कहा—वाराह जिस तरह से उत्पन्न हुए और जिस अर्थ में कल्पित हुए तथा जिस प्रकार से यह वाराह कल्प हुआ और जो कल्पत्व और कल्पना है ॥ २४ ॥ दो कल्पों में जो अन्तर है उसका और इसका जो कल्पित है वह सभी जैसा हमने देखा है और सुना है कहता ॥ २५ ॥ पहिले लोक के आदि में भव यह प्रथम कल्प प्रसिद्ध हुआ था । यहाँ भगवान् स्वय साम्प्रत आनन्द जानने चाहिए ॥ २६ ॥ यह दिव्य ब्रह्म स्थान है अथवा दिव्य-सम्भव है । दूसरा भुव कल्प है, तीसरा तप कल्प कहा आता है । २७ ॥ चतुर्थ भव-कल्प जानना चाहिए और पचम रम्भ-कल्प होता है । छठा ऋतु कल्प होता है और सातवाँ क्रतु इस नाम से कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हृव्यवहन ।
सावित्रो दशम कल्पो भुवस्त्वेकादश स्मृत ॥२६
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदश ।
चतुर्द्दशस्तु गन्धर्वो गान्धर्वो यत्र वै स्वर ।
उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिता ॥३०
ऋषभस्तु तत कल्पो ज्ञेय पचदशो द्विजा ।
ऋषयो यत्र सम्भूता स्वरो लोकमनोहर ॥३१
षड्जस्तु षोडश कल्प षड जना यत्र चर्षय ।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ॥३२
शरद्धेमन्त इत्येते मनसा ब्रह्मण सुता ।
उत्पन्ना षड्ज ससिद्धा पुत्रा कल्पे तु षोडशे ॥३३
यस्माज्जातैश्च तैं षड्भि सद्यो जातो महेश्वर ।
तस्मात् समुत्थित षड्ज स्वरस्तूदधिसन्निभ ॥३४
तत सप्तदश कल्पो मार्जालीय इति स्मृत ।
मार्ज्जालीय तु तत् कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् ॥३५

आठवाँ वह्नि नाम वाला कल्प होता है और नवम कल्प हृव्य वाहन नाम वाला होता है। सावित्र इस नाम वाला दशम कल्प होता है और भुव इस नाम से एकादश कल्प प्रसिद्ध होता है ॥ २६ ॥ उशिक बारहवाँ और कुशिक तेरहवाँ कल्प होता है । चौदहवाँ कल्प गन्धर्व होता है जहाँ गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुआ जिसके नाद से यहाँ गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। इसके पश्चात् पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ नाम वाला हुआ। जहाँ द्विज ऋषिवग उत्पन्न हुए और लोक मनोहर स्वर उत्पन्न हुआ था ॥ ३०-३१ ॥ षडज सोलहवाँ कल्प है जहाँ छँ जन ऋषि हैं। शिशिर और वसन्त, निदाघ और वर्षा, शरद और हेमन्त य ब्रह्माजी के मानस पुत्र उत्पन्न हुए और सोलहवें कल्प में षड्ज से ससिद्ध हुए थे ॥ ३२-३३ ॥ जिससे उत्पन्न उन छँ से तुरन्त ही महेश्वर उत्पन्न हुए उनसे उदधि के तुल्य षड्ज स्वर उठ खड़ा हुआ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय इस नाम से कहा गया है। मार्जालीय वह कर्म है जिससे ब्राह्म की कल्पना की गई है ॥ ३५ ॥

ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यते ।
यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः ।
उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयम्भुवः ॥३६
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः ।
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ॥३७
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः ।
प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ॥३८
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् ।
तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ॥३९
ततो विंशतिमः कल्पो निषादः परिकीर्तितः ।
प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा ।
विरराम प्रजाः स्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् ॥४०
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रियः ।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४१
ऊर्द्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितं क्षुत्पिपासितम् ।
निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्तं पितामहः ।
तस्मान्निषाद सम्भूत स्वरस्तु स निषादवान् ॥४२

इसके पश्चात् मध्यम इस नाम वाला अठारहवाँ कल्प कहा जाता है। जिसमें धैवत पूजित मध्यम इस नाम वाला स्वर उत्पन्न हुआ। समस्त प्राणियों में मध्यम स्वयम्भुव है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहा गया है। जहाँ भगवान् वैराज ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए हैं ॥ ३७ ॥ उनके पुत्र महात्मा दधीचि परम धार्मिक हुए। त्रिदशेश्वर महान् तेज वाले प्रजापति हुए थे ॥ ३८ ॥ गायत्री ने यजमान प्रजापति की कामना की थी। उनसे उस दधीचि का पुत्र स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर बीसवाँ कल्प निषाद इस नाम से परिकीर्तित हुआ है। उस समय प्रजापति ने स्वयम्भू से उत्पन्न उसे देखकर प्रजा के सृजन के कार्य से विराम ले लिया था। इसके अनन्तर निषाद ने तपश्चर्या आरम्भ करदी ॥ ४० ॥ निषाद ने एक सहस्र

ः य वर्षों तक निराहार और जितेन्द्रिय होकर तपश्चर्या की थी, तब लोक के पितामह महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उससे कहा ॥४१॥ यह निषाद उस समय में ऊर्ध्व बाहुओं वाला-तप से अत्यन्त ग्लान-परम दुःखित और भूख-प्यास से युक्त होकर तप कर रहा था। तब पितामह ने इस शान्त अपने पुत्र से कहा— 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ। इससे निषाद वाला वह निषाद स्वर उत्पन्न हुआ था ॥४२॥

एकविंशतिमः कल्पो विज्ञेयः पञ्चमो द्विजाः ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४३
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः पञ्चैते ब्रह्मणः समाः ।
तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वरः ॥४४
यस्मात्परिगतैर्गीतैः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः ।
स्वरस्तु पञ्चमः स्निग्धः तस्मात्स्यात्तु पञ्चमः ॥४५
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहनः ।
यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु अवहन् कृत्तिवाससम् ॥४६
तस्य निःश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ।
निर्जगाम महाकायः कालो लोकप्रकाशनः ।
यस्त्वयं पश्यते विप्रं विष्णुर्वै कश्यपात्मजः ॥४७
त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा ।
प्रजापतिसुतः श्रीमान् चितिश्च मिथुनश्च तौ ॥४८
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता ।
तस्मात्तु चिन्तकः सो वै कल्पः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥४९

हे द्विजगणों! इक्कीसवाँ कल्प पञ्चम जानना चाहिए। प्राण-अपान-उदान-समान और व्यान ये ब्रह्माजी के मानस पाँच पुत्र जो कि ब्रह्मा के ही तुल्य थे उत्पन्न हुए। उनके द्वारा युक्त अर्थवादियों ने वाणियों के द्वारा महेश्वर की उपासना की थी ॥४३। ४४॥ जिस कारण से महान् आत्मा वाले उन परिगत पाँच गीतों से गाये गये पञ्चम स्वर बहुत ही स्निग्ध हुए इसी कारण से

पञ्चम कल्प हुआ ॥४५॥ बाईसवाँ कल्प तो मेघवाहन इस नाम वाला जानना चाहिए, जहाँ पर महाबाहु विष्णु भगवान् ने मेघ होकर दृत्ति वस्त्र वाल महेश्वर को एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त वहन किया था ॥४६॥ भार से आक्रान्त निःश्वास लेते हुए उसके मुख से महान् काया वाला लोक को प्रकाश देने वाला काल निकला था जो कि यह विष्णु ब्राह्मणों के द्वारा कश्यप का पुत्र पढा जाता है ॥४७॥ तेईसवाँ कल्प चिन्तक जानना चाहिए। प्रजापति का पुत्र श्रीमान् त्रिति है और वे दोनो का जोडा है। ४८॥ ब्रह्म का ध्यान करते हुए ही चिन्त समुत्पन्न हो गई थी, यही कारण है जिससे स्वयम्भू के द्वारा वह चिन्तक कल्प कहा गया है ।४९॥

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूतिः कल्प उच्यते ।
आकूतिश्च तथा देवी मिथुनं सम्बभूव ह ॥५०
प्रजाः स्रष्टुं तथाकूतिं यस्मादाह प्रजापतिः ।
तस्मात् स पुरुषोऽयं आकूतिः कल्पसंज्ञितः ॥५१
पञ्चविंशतिमः कल्पो विज्ञातिः परिकीर्त्तितः ।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं सम्प्रसूयते ॥५२
ध्यायतः पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसंज्ञितम् ।
विज्ञातं वै समासेन विज्ञातिस्तु ततः स्मृतः ॥५३
षट्‌विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते ।
देवी च शाङ्करी नाम मिथुनं सम्प्रसूयते ॥५४
प्रजा वै चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य वै सदा ।
यस्मात् प्रजासम्भवनादुत्पन्नस्तु स्वयम्भुवा ।
तस्मात् प्रजासम्भवनाद्भावनासम्भवः स्मृतः ॥५५
सप्तविंशतिमः कल्पो भावो वै कल्पसंज्ञितः ।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत ॥५६

चौबीसवाँ कल्प आकूति कल्प कहा जाता है। आकूति और देवी दोनों का मिथुन हुआ था ॥५०॥ क्योंकि प्रजापति ने आकूति से प्रजा के सृजन के लिए कहा था, इसी से वह पुरुष आकूति कहा गया और उनके ना

से कर जानना चाहिए ॥५१॥ पच्चीसवाँ कल्प विज्ञाति नाम से कहा गया है। विज्ञाति और देवी का मिथुन सम्भूत होता है ॥५२॥ मन में अध्यात्म संज्ञा वाले का ध्यान करते हुए पुत्र की कामना के होने से मक्षेप जाना गया अतएव विज्ञात होने से वह विज्ञाति कहा गया है ॥५३॥ छब्बीसवाँ कल्प मन इस नाम से कहा जाता है और शाङ्करी देवी से यह मिथुन सम्भूत किया जाता है ॥५४॥ उस समय प्रजा की चिन्ता करते हुए प्रजा की सृष्टि की कामना वाले के प्रजा के सम्भवन होने से स्वयम्भू के द्वारा उत्पन्न है इसलिये प्रजा के सम्भवन से भावना सम्भव कहा गया है ॥५५॥ सत्ताईसवाँ कल्प का नाम भाव कहा हुआ है तथा पौर्णमासी देवी से यह मिथुन उत्पन्न हुआ ॥५६॥

> प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।
> ध्यायतस्तु पर ध्यान परमात्मानमीश्वरम् ॥५७
> अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृतः ।
> भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते स महावपु ॥५८
> ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ।
> आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यन् सूर्यमण्डलम् ॥५९
> यस्मादहश्यो भूताना ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
> दृष्टस्तु भगवान् देव सूर्य्य सम्पूर्णमण्डलः ॥६०
> सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिताः ।
> यस्मान् कल्पो ह्यय दृष्टस्तस्मात्त दर्शमुच्यते ॥६१
> यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
> पुरा वै भगवान् सोम. पौर्णमासी ततः स्मृता ॥६२
> तस्मात्तु पर्वदर्शो वै पौर्णमासश्च योगिभि ।
> उभयो पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ॥६३

प्रजा के सृजन की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा परमात्मा ईश्वर का ध्यान करते हुए रश्मि जाल से समावृत अग्नि मण्डलीभूत होकर भू और दिव दोनों को विष्टब्ध करके महान् वपु वाला वह दीप्यमान होता है ॥५७-५८॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण ज्योति मण्डल में आविष्ट होने

वाली के साथ उत्पन्न होने वाले सूर्य मण्डल को देखा ॥५६॥ परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा अदृश्य वह फिर भूतो को भगवान् सम्पूर्ण मण्डल वाले सूर्यदेव दृष्ट हुए अर्थात् पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे ॥६०॥ समस्त योग और मन्त्र उस मण्डल के साथ ही उत्थित हो गये थे। क्योंकि यह पहले देखा गया है, इसी से इसका नाम दर्शम्—यह कहा जाता है ॥६१॥ क्योंकि पहिले परमेष्ठी ब्रह्मा के मन में भगवान् सोम थे, इसके पश्चात् पौर्णमासी कही गई है ॥६२॥ इससे पर्वदर्श में योगियो के द्वारा अपने हित की कामना से दोनों पक्षो मे पौर्णमास ज्येष्ठ होता है ॥६३॥

दर्शञ्च पौर्णमासञ्च ये यजन्ति द्विजातयः।
न तेषा पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ॥६४
योऽनाहिताग्नि. प्रयतो वीराध्वान गतोऽपि वा।
समाधाय मनस्तीव्रं मन्त्रमुच्चारयेच्छनै ॥६५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व शर्धो मारुत पृक्ष ईशिषे।
त्व पाशगन्धर्वंशिष पूषा विधत्तपासिना।
इत्येव मन्त्र मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विज.।
अग्नि प्रविशते यस्तु रुद्रलोक स गच्छति ॥६६
सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्रुतिः।
तस्माद्य प्रविशेदग्नि स रुद्रान्न निवर्त्तते ॥६७
अष्टा विंशतिमः कल्पो बृहदित्यभिसज्ञित।
ब्रह्मणः पुनकामस्य स्रष्टुकामस्य वै प्रजाः।
ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ॥६८
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहतः सर्वतोमुखः।
तस्मात्तु बृहतः कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥६९
अष्टाशीतिसहस्राणा योजनाना प्रमाणतः।
रथन्तरन्तु विज्ञेय परम सूर्य्यमण्डलम्।
तस्मादण्डन्तु विज्ञेयमभेद्यं सूर्यमण्डलम् ॥७०
यत्सर्य्यमण्डलञ्चापि बृहत्साम तु भिद्यते।

भित्वा चैन द्विजायान्ति योगात्मानो दृढव्रताः ।
सङ्घातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथन्तरे ।।७१
इत्येतत्तु मया प्रोक्तं चित्रमध्यात्मदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पाना विस्तरं शुभम् ।।७२

जो द्विजाति गण दर्श और पौर्णमास का यजन किया करते हैं, उनकी फिर ब्रह्मलोक से पुनरावृत्ति कदाचन ही होनी है ।।६४।। जो व्याहित अग्नि वाला न हो वह बीराध्वा को गया हुआ भी मन को समाहित करके शनैः मन्त्र का उच्चारण करते हैं ।।६५।। मन्त्र यह है—हे अग्ने ! आप रुद्र हैं, असुर हैं, मही हैं, दिव हैं, शर्व हैं और मारुत हैं । आप पुरुे हुए हैं, समर्थ हैं, आप पाश-गन्धर्व शिव हैं और विपत्त पापों के द्वारा पूषा हैं—इस इतने मन्त्र को मन से द्विज भली-भाँति घोरे से उच्चारण करे । जो अग्नि की अर्चना करता है वह रुद्र के लोक को चला जाता है ।।६७।।६६।। सोम और अग्नि भगवान् काल रुद्र हैं, यह श्रुति है । इसलिये जो अग्नि अर्चना करता है वह रुद्र से निवर्तमान नहीं होता है ।।६७।। अट्ठाईसवाँ कल्प 'बृहत्'—इस संज्ञा वाला होता है । पुत्र की इच्छा वाले और प्रजा की सृजन-कामना वाले ब्रह्मा के मन से ध्यान करते हुए बृहन्नाम रथन्तर हुआ ।। ६८।। क्योंकि वहाँ सर्वतोमुख बृहत् उत्पन्न हुआ था, इसीलिये तत्त्वों के चिन्तकों के द्वारा यह बृहत् कल्प जानने के योग्य हुआ है । ।।६६।। अट्ठासी हजार योजनों के प्रमाण से परम रथन्तर सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । इसलिये यह अण्ड न भेदन करने के योग्य सूर्य मण्डल जानना चाहिए । ।।७०।। जो बृहत् साम सूर्यमण्डल में विद्यमान होता है । दृढ व्रत वाले योगात्मा द्विज इसका भेदन करके जाया करते हैं । सङ्घात को उपनीत अन्य कल्प-रथन्तर में होते हैं । मैंने यह अध्यात्म दर्शन चित्र बतला दिया है । इससे आगे कल्पों का शुभ विस्तार बताऊँगा ।।७१।।७२।।

।। कल्प-संख्यानिरूपण ।।

अत्यद्भुतमिदं सर्वं कल्पानान्ते महामुने ।
रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ।।१
न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

तस्माद्विस्तरन्‌. सर्वा कल्पसख्या ब्रवीहि न. ॥२
अत्र वः कथयिष्यामि कल्पसख्या यथा तथा ।
युगाग्र च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३
एक कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्द. प्रकीर्त्तितः ।
एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम्‌ ॥४
एकं युगसहस्रन्तु सवन तत्‌ प्रजापते. ।
सवनाना सहस्रन्तु द्विगुण त्रिवृत तथा ॥५
ब्रह्मण. स्थितिकालस्य ह्येतत्‌ सर्व प्रकीर्तितम्‌ ।
तस्य सख्या प्रवक्ष्यामि पुरस्तादूं यथाक्रमम्‌ ॥६
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्तिता ।
तेषा पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसज्ञा यथाक्रमम्‌ ॥७

ऋषियो ने कहा—हे महामुने ! आपने यह अत्यन्त ही अद्भुत कल्पो का सम्पूर्ण रहस्य और मन्त्रो का प्रकल्पन बताया है ॥१॥ तीनो लोको में ऐसी कुछ भी वस्तु नही है जो आपको अविदित हो अर्थात्‌ जिसे आप नहीं जानते हो—तात्पर्य यही है कि आप सभी कुछ जानते हैं। इसलिये आप हमारे सामने समस्त कल्पो की सख्या विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ॥२॥ वायुदेव ने कहा—यहाँ मैं आपके आगे यथातथ्य कल्पो की सख्या-युग का अग्रभाग और परमेष्ठी ब्रह्माजी के वर्षो के अग्रभाग को बतलाता हूँ ॥३॥ एक सहस्र कल्पो का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। इनका आठ सहस्र ब्रह्मा का युग कहा गया है ॥४॥ एक युग सहस्र प्रजापति का सवन होता है। इस तरह सवनो का सहस्र तथा द्विगुण एव त्रिवृत यह सब ब्रह्मा की स्थिति का काल बताया गया है। उसकी सख्या यथाक्रम पहिले बताऊँगा ॥५॥६॥ कल्पों की अट्ठाईस सख्या नाम से बतला दी गई है। उनकी पहिले कल्प सज्ञा को यथाक्रम कहूँगा ॥७॥

रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ।
कल्पान्ते नाम धेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या ॥८
एकोनविंशक कल्पो विज्ञेय. श्वेतलोहितः ।
यस्मिन्स्तत्‌ परमध्यान ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९

श्वेतोष्णीष श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी ।
उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपम ॥१०
भीम मुख महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् ।
दीप्त दीप्तेन वपुषा महास्य श्वेतवर्च्चसम् ॥११
त दृष्ट्वा पुरुष श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतामुख ।
कुमार लोकधातारं विश्वरूप महेश्वरम् ॥१२
पुराणपुरुष देव विश्वात्मा योगिना चिरम् ।
ववन्दे देवदेवेश ब्रह्मा लोकपितामह ॥१३
हृदि कृत्वा महादेव परमात्मानमीश्वरम् ।
सद्योजात ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हास जगत्पतिः ॥१४

रथन्तर का साम का ऊपर से समक्ष लो, जिसकी जो मनोत्पत्ति है और जो नामधेय हैं ॥८॥ उन्नीसवाँ कल्प श्वेत लोहित जानना चाहिए जिसमें ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का परम ध्यान है ॥९॥ श्वेत उष्णीष (पगडी) वाला–श्वेत माला धारण करने वाला–श्वेत वस्त्र धारी–महान् तेज से युक्त पावक के समान दीप्ति वाला शिखी कुमार उत्पन्न हुआ ॥१०॥ जिसका मुख भीम–महान् रौद्र–सुघोर और श्वेत लोहित है । दीप्त वपु से दीप्यमान–महान् मुख वाले और श्वेत वर्चस उसको देखकर विश्वतोमुख श्रीमान पुरुष ब्रह्माजी ने लोकों के धाता–विश्वरूप–महेश्वर–कुमार और पुराण पुरुष देव देव को विश्वात्मा लोक पितामह की वन्दना की ॥ ११–१२–१३ ॥ परमात्मा ईश्वर महादेव को हृदय मे स्थित करके ब्रह्म तुरन्त उत्पन्न हुआ है ऐसा ब्रह्माजी ने चिन्तन किया और ज्ञान प्राप्त करके परम प्रसन्न देवेश जगत्पति ने हास्य किया ॥ १४ ॥

ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चस ।
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपना ॥१५
सुदन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ॥१६

तस्याग्रे श्वेत वर्णाभ श्वेतनामा महामुनि ।
विजज्ञेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ ॥१७

तत्र ते ऋषय सर्वे सद्याजात महेश्वरम् ।
तस्माद्विश्वेश्वर देव ये प्रपश्यन्ति वै द्विजा ।
प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिन ॥१८

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चस ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोक व्रजन्ति च ॥१९

ततस्त्रिशत्तम कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तित ।
रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्ण मधारयत् ॥२०

ध्यायत पुत्रकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भूतो महातेजा कुमारो रक्तविग्रह ।
रक्तमाल्याम्बर धरो रक्तनेत्र प्रतापवान् ॥२१

इसके अनन्तर इसके पार्श्व में ब्रह्मवर्चस श्वेत ऋषिगण प्रादुर्भूत हुए जो महान् आत्मा वाले और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपन वाले थे ॥ १५ ॥ सुनन्द नन्दन, विश्वनन्द और नन्दन ये महान् आत्मा वाले शिष्य थे जिनसे वह ब्रह्म आवृत था ॥ १६ ॥ उसके आगे श्वेतवर्ण की आभा वाले श्वेत नाम वाले महामुनि उत्पन्न हुए जिससे महान् तेज वाला यह नर उत्पन्न हुआ था ॥ १७ ॥ वहाँ वे सब ऋषिगण सद्य उत्पन्न हुए विश्वेश्वर महेश्वर देव को देखते हैं और जो ब्राह्मण उसका दर्शन करते हैं वे प्राणायाम में परायण तथा ब्रह्म में व्यवसाय से युक्त थे ॥ १८ ॥ वे सब पापों से निर्मुक्त हुए बिना मल वाले ब्रह्मवर्चस ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को चले जाते हैं ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर तीसवाँ जो कल्प था वह रक्त—इस नाम से कहा गया है। जहाँ महान् तेज से युक्त रक्त था उसने रक्तवर्ण को धारण किया था ॥ २० ॥ पुत्र की कामना वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के ध्यान करते हुए महान् तेज वाला रक्त विग्रह से युक्त कुमार उत्पन्न हुआ था जो रक्तमाल्य और रक्त वस्त्र का धारण करने वाला रक्त नेत्रों वाला तथा प्रताप वाला था ॥ २१ ॥

स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ।
ध्यानयोगं परङ्गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ॥२२
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः ।
वामदेव ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् ॥२३
एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ॥२४
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेऽहं पितामहः ।
दृष्टः परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ॥२५
तस्माद्ध्यानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ।
वेत्स्यसे मा महासत्व लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा ततः शर्वः अट्टहासं मुमोच ह ॥२६
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः ।
सम्बभूवर्मं महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ॥२७
विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ॥२८

उस रक्त-वस्त्र धारी महादेव कुमार को उसने देखकर और पर ध्यान-योग मे स्थित होकर विश्व-रूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया ॥ २२ ॥ भगवान परम यन्त्रित ब्रह्मा जी ने उनको प्रणाम करके फिर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मात्मक वामदेव का विशेष रूप से चिन्तन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा ध्यान किये हुए महादेव प्रीति से युक्त मन से पितामह से कहा ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! पुत्र की कामना रखने वाले और ध्यान करने वाले तुमने पितामह मुझे परम भक्ति से तथा ध्यान के योग से देखा था ॥ २५ ॥ इसलिये परम ध्यान प्राप्त करके महान् तप वाले कल्प-कल्प में हे महासत्व ! लोकों के धाता ईश्वर मुझको भली भाँति जान लोगे । इस प्रकार से कह कर पश्चात् शर्व ने बड़ा अट्टहास किया था ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उसके महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे और शुद्ध बुद्धि वाले महात्मा विशेष रूप से दीप्तिमान हुए थे ॥ २७ ॥ वे विरज, विवाह, विशोक और विश्वभावन थे तथा ब्रह्मण्य, वीर, अध्यवसायी और ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥ २८ ॥

रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचना ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः ।
गृणन्तश्च माहात्मानो ब्रह्म तद्वामदेवकम् ॥३०
अनुग्रहार्थं लोकाना शिष्याणा हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणा स्वयम् ।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१
येऽपिचान्ये द्विजश्रेष्ठा युंजाना वाममीश्वरम् ।
प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणा ॥३२
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चस ।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३३

सब रक्त-वस्त्रों के धारण करने वाले और रक्त माल्य तथा अनुलेपन से युक्त थे। वे रक्त भस्म से अनुलिप्त अङ्गों वाले, रक्त मुख से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाले थे ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्षों के अन्त में वे ब्रह्मण्य महात्मा और व्यवसायी उस वामदेव ब्रह्म को ग्रहण करने वाले थे ॥ ३० ॥ लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और शिष्यों के हित की कामना से समस्त धर्म का उपदेश करके वे ब्राह्मण स्वयं पुनः अव्यय रुद्र स्वरूप महादेव में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ और जो भी अन्य श्रेष्ठ द्विज वाम ईश्वर के युंजान होते हुए उनके परम भक्त एवं उन ही में परायण रहने वाले थे वे महादेव को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ वे सभी पापों से छुटकारा पाने वाले होकर विमल अर्थात् मल से रहित विशुद्ध होने वाले ब्रह्मवर्चस रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस संसार में आवृत्ति दुर्लभ हुआ करती है ॥ ३३ ॥

॥ माहेश्वरावतार-योग ॥

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महातेजा पीतवर्णत्वमागतः ॥१
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान् ॥२

पीतगन्धानुलिप्ताङ्ग. पीतमाल्यधरो युवा ।
पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः ॥३
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्त ब्रह्मा लोकेश्वर प्रभुम् ।
मनसा लोकधातार ववन्दे परमेश्वरम् ॥४
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरी पराम् ।
अपश्यद्गां विरूपां च महेश्वरमुखच्युताम् ॥५
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम् ।
चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ।
द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम् ॥६
स तां दृष्ट्वा महातेजाः महादेवीं महेश्वरीम् ।
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृत. ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इक्तीसवाँ कल्प पीतवासा इस नाम से कहा गया है जहाँ महान् तेज वाला ब्रह्मा पीत वर्णता को प्राप्त हो गया है ॥ १ ॥ पुत्र के पाने की कामना से युक्त ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के पीत-वस्त्र वाला तथा महान् तेज से युक्त कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥ २ ॥ वह कुमार पीत गन्ध से अनुलिप्त अङ्ग वाला था और वह युवा पीत-माल्य के धारण करने वाला था। वह महान् भुजाओं वाला पीतवर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला था और पीत ही मस्तक उष्णीष अर्थात् शिरोवस्त्र पहिने हुए था ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ने ध्यान में संयुक्त उस लोकेश्वर प्रभु को देखकर मन से लोक धाता परमेश्वर की वन्दना की ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर ध्यान में स्थित ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुखच्युत विरूप पर माहेश्वरी गौ को देखा ॥ ५ ॥ वह गौ चार पदों वाली, चार मुखों वाली चार ही हाथों से युक्त और चार स्तन वाली थी तथा उसके चार नेत्र, चार शृङ्ग, चार दाढ़ और चार मुख थे। वह बत्तीस लोकों से संयुक्त, सर्वतोमुखी और ईश्वरी थी ॥ ६ ॥ वह महान् तेज वाला उस महादेवी महेश्वरी को देखकर समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित महादेव फिर बोले ॥ ७ ॥

मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ।
एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्नृशम् ॥८

विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ।
अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थं भविष्यसि ॥६
अथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ॥१०
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यं प्रपद्य तां महेश्वरीम् ।
गायत्रीन्तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः ॥११
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ।
जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा । १२
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतः ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ पुनः ॥१३
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः ।
ततोऽस्य सर्वतो दीप्ताः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ॥१४

मति, स्मृति और बुद्धि, यह गाते हुए और बार बार यही गायन करते हुए महादेवी आइये आइये यह कहते हुए वह अत्यन्त प्राञ्जलि होकर वहाँ स्थित हो गये ॥ ८ ॥ योग से विश्व को आवृत करके इस समस्त जगत् को वश में करो । अथवा आप महादेव के साथ रुद्राणी हो जाओगी । ब्राह्मणों के हित के लिये आप परमार्थ हो जाओगी ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर इसको ध्यान करने वाले, पुत्र की इच्छा वाले परमेष्ठी को देव देवेश ने चार पादों वाली महेश्वरी को दे दिया । इसके पश्चात् उसको ध्यान के योग से परमेश्वरी जान लिया था ॥ १० ॥ लोकों के द्वारा नमस्कार करने के योग्य ब्रह्मा जी ने उस महेश्वरी के शरण में आकर इसके पश्चात् रौद्री गायत्री का ध्यान कर ब्रह्मा जी सुयन्त्रित हो गये ॥ ११ ॥ इस प्रकार से इस वैदिकी विद्या अर्पित रौद्री गायत्री का जप करके रुद्र लोक के द्वारा नमस्कृत महादेवी भली-भाँति आप में सम्पन्न हो गये थे और फिर ध्यान से युक्त चित्त से महादेव की प्रसन्नता से प्राप्त हो गये थे

॥ १२ । इसके अनन्तर महादेव ने पुनः दिव्य योग दिया और ऐश्वर्य, ज्ञान रूपी सम्पत्ति तथा वैराग्य प्रदान किया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त ईश्वर ने भीषण एवं दीप्त अट्टहास किया । इससे इसके सब ओर प्रादुर्भूत कुमार पीत हो गये ॥ १४ ॥

पीतमाल्याम्बरधराः पीतगन्धविलेपनाः ।
पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्याः पीतमूर्द्धजाः ॥१५
ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजसः ।
योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिणः ॥१६
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम् ।
उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम् ।
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ॥१८
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चसः ।
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रन्ते त्वपुनर्भवाः ॥१९
ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः ।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामतः ॥२०
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥२१

वे सभी कुमार पीत माल्य तथा अम्बर के धारण करने वाले थे और पीतवर्ण की गन्ध के अनुलेपन से युक्त थे । इनके मस्तक पर उष्णीष अर्थात् शिरोवेष्टन वस्त्र था वह भी पीत था, पीत मुख से युक्त तथा पीत ही केशों वाले थे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर एक सहस्र वर्षों के अन्त में निवास करके विमल ओज वाले, योगात्मा और स्नान किये हुए तथा ब्राह्मणों के हितों के चाहने वाले धर्म के तथा योग के बल से उपेत वे सब दीर्घ सत्र का यजन करने वाले ऋषियों को अपना उपदेश देकर रुद्र ईश्वर योग में प्रविष्ट हो गये ॥ १६-१७ ॥ इस प्रकार से जो इस विधि से महेश्वर को प्रसन्न हुए तथा अन्य लोग भी ध्यान से युक्त नियत आत्मा वाले जितेन्द्रिय थे वे सभी अपने पापों से छूटकर विरज

और ब्रह्मवर्चस वे महादेव रुद्र में प्रवेश किया करते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १८-१९ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू की पीतवर्ण वाले कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम सित कल्प हुआ ॥ २० ॥ उस समय सर्वत्र एकमात्र समुद्र के दिव्य एक सहस्र वर्ष हो जाने पर प्रजा के सृजन की कामना करने वाले ब्रह्माजी परम दुःखित होते हुए चिन्ता करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभो ।
कृष्ण समभवद्वर्णो ध्यायत परमेष्ठिन ॥२२
अथापश्यन्महातेजा प्रादुर्भूत कुमारकम् ।
कृष्णवर्ण महावीर्यं दीप्यमान स्वतेजसा ॥२३
कृष्णाम्बरवरोष्णीष कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णेन मौलिना युक्त कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥२४
स त दृष्ट्वा महात्मानममर घोर मन्त्रिणम् ।
ववन्दे देवदेवेश विश्वेश कृष्णपिङ्गलम् ॥२५
प्राणायामपर श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
मनसा ध्यानसयुक्त प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥२६
एव वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
मुमोच भगवान् रुद्र अट्टहास महास्वनम् ॥२७
अथास्य पार्श्वत कृष्णा कृष्णस्रगनुलेपना ।
चत्वारस्तु महात्मान सम्बभूवु कुमारका ॥२८

इस तरह से चिन्ता करने वाले पुत्र की कामना से युक्त प्रभु परमेष्ठी का ध्यान में मलग्न रहते-रहते ही कृष्णवर्ण हो गया ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भाव होने वाले कृष्णवर्ण से युक्त महान् वीर्य वाले अपने तेज से देदीप्यमान कुमार को देखा ॥ २३ ॥ वह कुमार काले वस्त्र और शिरोवेष्टन वाला था तथा कृष्ण उपवीत धारण कर रहा था । उसका मस्तक भी कृष्ण था कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त था ॥ २४ ॥ उस महान् आत्मा

श्रुत सत्यञ्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमा ॥४७
ध्यान ध्यानवपु शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्वृतिः ।
कान्ति शान्ति स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती ।
तुष्टि पुष्टि क्रिया चैव लज्जा क्षान्ति प्रतिष्ठिता ॥४८
षड्विंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसञ्ज्ञिता ।
प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्म स्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ॥४९

महेश्वर ने कहा—यह समस्त मन्त्रों का रहस्य है और यह पावन तथा पुष्टि के वर्धन करने वाला है। तुम अब मुझ से इस परम गोपनीय विषय को सुनो जो कि आदि सर्ग में जैसा था ॥ ४२ ॥ जो यह कल्प इस समय वर्त्तमान है वह विश्वरूप इस नाम वाला कहा गया है जिसमें भवादि देव छब्बीस मनु कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ हे विभो ! यह ब्रह्म-स्थान है जब कि आपने इसे प्राप्त किया है। तब से ही लेकर यह तेईसवाँ कल्प कहा गया है ॥ ४४ ॥ हे देवेश ! आपके सम्मुख ही जो सैकड़ों और सहस्रों स्वयम्भू बीत गये उनकी कथा बतलाता हूँ। उस समय तुम्हारा नाम आनन्द था ॥ ४५ ॥ तुम्हारा महालय भी आनन्द ही होता है। गालव्य गोत्र तप से तुम मेरे पुत्रता को प्राप्त हुए हो ॥ ४६ ॥ तुममें योग, सांख्य, तप विद्या विधि, क्रिया, ऋत, सत्य जो ब्रह्म है वह, अहिंसा, सन्तति क्रम, प्रतिष्ठित हैं ॥ ४७ ॥ ध्यान-ध्यान का वपु, शान्ति, विद्या, अविद्यामति, धृति, कान्ति शान्ति, स्मृति, मेधा, लज्जा, शुद्धि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि क्रिया, लज्जा और क्षान्ति ये सब तुम में प्रतिष्ठित हैं ॥ ४८ ॥ ये छब्बीस गुण बत्तीस अक्षरों की सज्ञा से युक्त हैं। हे ब्रह्मन् ! उसको आपकी प्रसूति महेश्वरी प्रकृति समझना चाहिए ॥ ४९ ॥

मेधा भगवती देवी तत्प्रसूति. स्वयम्भव ।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता ।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥५०
अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं सम्प्रसृजमानां सुरूपाम् ।
अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्धा ॥५१
एवमुक्त्वा महादेवः अट्टहासमथाकरोत् ।

वलितास्फोटितरव कहाकहनदन्तथा ॥५२
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्या. सर्वरूपाः कुमारकाः ।
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्ध मुण्डश्च जज्ञिरे ॥५३
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ॥५४
धर्मोपदेश नियत कृत्वा योगमय दृढम् ।
शिष्टाना नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥५५

यह यह भगवती देवी स्वयम्भू की तत्प्रसूति है और यह चतुर्मुखी, जगद्योनि, प्रकृति और गो कही गई है । तत्त्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष इसको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥ ५० ॥ बुद्धिमान् ! मैं अज हूँ, यह अजा, लोहिता, कृष्ण शुक्ला विश्व का सम्प्रजन करने वाली सुरूपा, विश्वरूप वाली, गी और गायत्री जानी गई है ॥ ५१ ॥ महादेव ने इस प्रकार से कहकर अट्टहास किया और वलित एव स्फोटितरव वाला कहाकहे की ध्वनि की ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर उसके पार्श्व देश मे जटी, मुण्डी शिखण्डी और अर्धमुण्ड दिव्य सवरूप कुमार उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् महान् ओज से युक्त यथोक्त योग के द्वारा उन्होने दिव्य एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर की उपासना की ॥ ५४ ॥ फिर योगमय नियत दृढ धर्मोपदेश करके शिष्टों मे नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र में प्रविष्ट हो गये ॥ ५५ ॥

॥ शार्व–स्तोत्र ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदु ।
कृत त्रेता द्वापर च तिष्य चेति चतुर्युगम् ॥१
एतत्सहस्रपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मण. स्मृतम् ।
यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्दश ॥२
सशरीरा. श्रयन्ते स्म जनलोक सहानुगाः ।
एव देवेष्वतीतेषु महर्ल्लोकाज्जनं तपः ॥३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवा सर्वे महौजस. ।
ततस्तेषु गतेपूर्द्ध मायुज्य कल्पवासिनाम् ॥४

समेत्य देवैस्ते देवाः प्राप्ते सङ्कालने तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम् ॥६
ततस्संहृत्य ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष मे चार युग कहते हैं, कृत त्रेता, द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र जब तक होता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । यामादि सात गण और गौ वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ जनलोक का सेवन करते थे । इस प्रकार से देवो के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २-३ ॥ मन्वन्तरो के व्यतीत हो जाने पर महान् ओज से युक्त समस्त देव होते हैं । इसके पश्चात् कल्पवासियों मे उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवो के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त होने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४-५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त, वे शून्य लोक, महान् भुवादि और देव जो कि कल्पवासी थे ऊर्द्ध्वभाग मे जनलोक मे चले जाने पर इसके उपरान्त उस संहृति से ब्रह्मा देव, ऋषिगण और दानवो को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से संस्थापना किया करते हैं ॥ ६-७ ॥

योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः ।
समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवः ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥८
माययैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्‌गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्य युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलित तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एव तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्या तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्ड महोत्सेध लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैव क्रीडमानस्य समीप देवमीढुष ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रिय ।
चतुर्मुखो विशालाक्ष समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र मे मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाऐं थीं, महान् चौडा वक्षस्थल था और जो समस्त लोकों की यानि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग में स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९ १० ॥ एक सहस्र फनो से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीडा के लिये अपनी नाभि से एक कमल नाल की सृष्टि की थी॥१२॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीडा करने वाले

उसके समीप में देव की उपासना करने वाले हेम ब्रह्माण्ड से उत्पन्न, सुवर्ण के समान वर्ण वाले, इन्द्रियों से परे ब्रह्माजी यदृच्छा से आये जो कि चार मुखों से युक्त, विशाल नेत्रों वाले थे ॥ १४ ॥

श्रिया युक्तेन मध्येन सुप्रभेण सुगन्धिना ।
त क्रीडमान पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान् ॥१५
स विस्मयमथागम्य शस्य सपूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भवान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६
अथ तस्याच्युत श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभ वच
उदतिष्ठत पर्य्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचन ॥१७
प्रत्युवाचोत्तर चैव क्रियते यत्र किञ्चन ।
द्यौरन्तरिक्ष भूतञ्च पर पदमह प्रभु ॥१८
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णु पुनरथाब्रवीत् ।
कस्त्व खलु सम यात समीप भगवान् कुतः ।
कुतश्च भूयो गन्तव्य कुत्र वा ते प्रतिश्रय ॥१९
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्व कर्त्तव्य किञ्च ते मया ।
एव ब्रुवाण वैकुण्ठ प्रत्युवाच पितामह ॥२०
यथा भवास्तथा चाहमादिकर्त्ता प्रजापति ।
नारायणसमाख्यात सर्वं वै मयि तिष्ठति ॥२१

ब्रह्माजी ने श्री से युत, सुन्दर प्रभावाले, सुगन्ध से अन्वित नवीन कमल से क्रीडा करते हुए उनका दर्शन कर उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ इसके उपरान्त वह अत्यन्त आश्चर्य में भरकर शस्य सम्पूर्ण वाणी से बोले इस जल के मध्य में आश्रय लेकर शयन करने वाले आप कौन हैं? ॥१६॥ इसके अनन्तर भगवान् अच्युत उन ब्रह्माजी के इस शुभप्रश्न स्वरूप वचन को सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होते हुए पर्यङ्क से उठ बैठे ॥१७। और उन्होंने ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर दिया कि जो कुछ भी किया जाता है और अन्तरिक्ष (आकाश) एवं भूत उन सबमें मैं परम पद प्रभु हूँ ॥१८॥ उन ब्रह्माजी से इस तरह भगवान् विष्णु ने कह कर फिर वे यह बोले, अन्य कौन है

जो यहाँ पर आये हो और आप कहाँ से आये हैं ? यहाँ आपका आगमन किस लिये हुआ है और फिर कहाँ जाना है तथा आपका आश्रय स्थान कौन सा है ? ॥१६॥ आप विश्वमूर्त्ति कौन हैं और मुझ से आप को क्या करना है ? इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् विष्णु को पितामह ब्रह्माजी ने उत्तर दिया ॥२०॥ जिस प्रकार आप हैं वैसे ही आदि कर्त्ता प्रजापति मैं भी हूँ । मुझे नारायण इस नाम से कहा गया है और यह सभी कुछ मेरे अन्दर ही रहता है अर्थात् स्थिति प्राप्त करता हूँ ॥२१॥

सविस्मय परं श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥२२
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादशद्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान् ।
प्रविश्य स महातेजाश्चात् र्वण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥२३
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महयशा ।
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यं पुन पुनरभाषत ॥२४
पर्य्यटन् विविधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ।
ततो वर्षसहस्रान्तेनान्त हि ददृशे तदा ॥२५
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतन ।
अजातशत्रुर्भगवान पितामहमथाब्रवीत् ॥२६
भगवन् आदि मध्यञ्च अन्त कालदशोर्न च ।
नाहमन्त प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूय पितामहमिद हरि ।
भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्यैतानन्नौपम्यान् द्विजोत्तम ॥२८

लोकों के कर्त्ता ब्रह्माजी ने परम आश्चर्य के साथ इस को सुन कर भगवान् ने विश्व सम्भव भगवान विष्णु को अनुज्ञात किया ॥२२॥ कौतूहल से वह महान् योगी ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गये । उस महान् तेज वाले ने प्रवेश

करके समुद्रों और पर्वतों के सहित इन अठारह द्वीपों को चारों ओर से समाकुल एवं सनातन ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों को सबको ब्रह्मा के उदर में देखकर महान् यश वाले विष्णु ने मन में सोचा, हो-हो, इसके तप का कितना आश्चर्य पूर्ण पराक्रम है ? इस के अनन्तर वे बार बार बोले ॥२३-२४॥ विष्णु अनेक लोक और विविध भाँति के आश्रमों का पर्यटन करते रहे पर एक सहस्र वर्षों के अन्त में भी उनका अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥२५॥ तब उस समय इनके मुख से पन्नगेन्द्रारि केतन अर्थात् पन्नग सर्पों के शिरोमणि के शत्रु गरुड के केतन वाले ने निकल कर अजात शत्रु अर्थात् ऐसे जिन का कोई शत्रु उत्पन्न ही न हुआ हो, भगवान् इसके अनन्तर पितामह ब्रह्माजी से बोले ॥२६॥ हे अनघ ? हे भगवान् ? आदि, मध्य और अन्तकाल और दिशा का अन्त तथा आपके उदर का अन्त मैं नहीं देख पारहा हूँ ॥२७॥ इस प्रकार से कह कर भगवान् हरि फिर पितामह से यह बोले-हे द्विजोत्तम ! ऐसे ही आप भी मेरे शाश्वत उदर में प्रवेश करके उपमा से रहित इन लोकों को देखें ॥२८॥

मनः प्रह्लादनी वाणी श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च।
श्रीपतेरुदरं भूय प्रविवेश पितामहः ॥२९
तानेव लोकान् गर्भस्थ पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रम।
पर्यटित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरेः ॥३०
ज्ञात्वागमन्तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः।
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे॥३१
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्य वै।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्या द्वारमविन्दत ॥३२
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामहः।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः।
विरराजारविन्दस्य पद्मगर्भसमद्युतिः ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कात्स्न्यं तं।
प्रवर्तमाने महर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥३४
ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः।

शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छद ।
आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः ॥३५

उनकी अनेकों प्रसन्नता प्रदान करने वाली इस वाणी को सुनकर तथा उसका भली भाँति अभिनन्दन करके पितामहने श्रीपति के उदर में प्रवेश किया था ॥२९॥ चिन्तन करने के योग्य विक्रम वाले भगवान् हरि ने गर्भ में स्थित होते हुए उन्हीं लोकों को देखकर और चारों ओर पर्यटन करके आदि देव हरि का अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥३०॥ उन पितामह के आगम को जान कर भगवन् विष्णु ने समस्त द्वारों को बन्द करके विभुने मन में यह करने की इच्छा की कि शीघ्र ही सुख पूर्वक इस महान् जलौघ में शयन कर जाऊं ॥३१॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी को समस्त द्वार पिहित दिखलाई दिये तब ब्रह्माजी ने अपने स्वरूप को सूक्ष्म बनाकर नाभि में द्वार प्राप्त किया था ॥३२॥ तब पितामह ने कमल सूत्र के अनुमार्ग के द्वारा अनुगमन करके फिर चतुरानन ने कमल से अपने रूप का उद्धार किया था। उस अरविन्द में स्थित होकर पद्म के गर्भ के समान द्युति वाले ब्रह्मा विशेष रूप से शोभित हुए ॥३३॥ इस बीच में उन दोनों में एक-एक को पूर्ण तथा हर्ष के उत्पन्न हो जाने से उस समुद्र के मध्य में पूर्ण समभाव हुआ था ॥३४॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमेय आत्मा वाले प्राणियों के स्वामी ईश्वर हैमचीराम्बर को धारण करने वाले शूल हाथ में लिये हुए महादेव वहाँ आगये जहाँ कि नागभोग के पति वह अनन्त हरि वर्त्तमान थे ॥३५॥

शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिताः ।
उद्धूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः ।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।
अबिन्दवो हि स्थूलोष्णाः कम्पते चाम्बुजं भृशम् ।
एतं मे संशयं ब्रूहि किन्त्वान्यत् त्वञ्चिकीर्षसि ॥३७

एतदेवविध वाक्य पितामहमुखोद्भवम् ।
श्रुत्वाप्रतिमकर्माहि भगवानसुरान्तकृन् ॥३८
किन्नु खल्वत्र मे नाभ्या भूतमन्यत्कृतालयम् ।
वदन्ति प्रियमत्यर्थं विप्रियेपि च ते मया ॥३९
इत्येव मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ।
किन्न्वत्र भगवांस्तस्मिन् पुष्करे जातसम्भ्रमः ॥४०
किं मया यत् कृत देव यन्मा प्रियमनुत्तमम् ।
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्वत ॥४१
एव ब्रुवाण देवेश लोकयात्रान्तु तत्वगाम् ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभासो ब्रह्मा वेदनिधि प्रभु ॥४२

शीघ्र विक्रम करने वाले उसके पादों से अत्यन्त पीडित आकाश मे मो मोटी जल की बिन्दु उद्भूत हुई थी । वे अत्यन्त उष्ण और अत्य त श थी । वहाँ पर वायु बहुत ही अधिक चलने लगी ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा जे महान् आश्चर्य देखकर भगवान विष्णु से कहा—ये परम स्थूल एव उष्ण की बूँदें इस कमल को बहुत ही अधिक कँपाती हैं । आप मेरे इस सशय बतलाइये, आप और क्या करना चाहते हैं ? ॥ ३७ ॥ पितामह के मु उद्भूत इस वाक्य को सुनकर असुरो के अन्त करने वाले अप्रतिम अर्थात् अ कर्म करने वाले भगवान बोले ॥ ३८ ॥ निश्चय ही मेरी इस नाभि मे अन्य प्राणी आलय करने वाले हैं ऐसा कहते हैं । मेरे द्वारा तुम्हारे अ विप्रिय होने पर भी इसे अत्यन्त प्रिय ही कहते हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार से से ध्यान करके यह उत्तर बोले । क्या यहाँ पर आप इस कमल मे सम्भ्रम हो गये हैं ॥ ४० ॥ हे देव ! मैंने जो किया है हे पुरुष श्रेष्ठ ! उस अ प्रिय को मुझे बोल रहे हैं आप किस लिये ऐसा कर रहे हैं ठीक-ठीक मुझे लाइये ॥ ४१ ॥ इस तरह बोलने वाले देवेश से अम्बुज की आभा वाले वेद निधि प्रभु ब्रह्मा जी ने तत्व वाली जो लोक यात्रा थी उसे बतलाया था ॥

योऽसौ तवोदर पूर्वं प्रविष्टोऽह त्वदिच्छया ।
यथा ममोदरे लोका. सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टा. कात्स्न्येंन मया लोकास्तवोदरे ॥४३

ततो वर्षमहस्रान्ते उपावृत्तास्य मेऽनघ ।
नूनं मत्सरभावेन मा वशीकर्तुमिच्छता ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥४४
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन चेतसा ।
लब्धो नाभ्या प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ॥४५
माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन ।
इत्येषानुगतिर्विष्णोः कार्याणामौपसर्गिकी ॥४६
यन्म यानन्तरं कार्यं मयाध्यवसितं त्वयि ।
त्वाञ्चाबाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ॥४७
न तेऽन्य थावमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽपकृतन्तव ।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्व पद्मादवतर प्रभो ॥४८
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुन्तेजोमयं गुरुम् ।
स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यम् ॥४९

आपकी इच्छा से जो मैंने पहिले आप के उदर में प्रवेश किया था तब मैंने आपके उदर मे पूर्ण रूप से, उसी रूप से समस्त लोक देखे जैसे कि हे प्रभो ! आपने मेरे उदर में सम्पूर्ण लोक देखे थे ॥ ४३ ॥ हे अनघ ! फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इधर-उधर वहाँ पर पर्यटन करने वाले मुझ को मात्सर्य के भाव से वश मे करने की इच्छा वाले आपने शीघ्र ही समस्त द्वार घटित कर दिये अर्थात् बन्द कर दिये थे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर मैंने अपने चित्त से सोच-विचारकर नाभि मे प्रवेश प्राप्त किया जिससे कि पद्मसूत्र से मेरा फिर विनिर्गम हुआ ॥ ४५ ॥ आपके मन को थोडा-सा भी किसी प्रकार का व्याघात न होवे, यह विष्णु के कार्यों की औपसर्गि की अनुगति होती है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जो मुझे करना चाहिए मैंने आप में अध्यवसित (निश्चित) कर लिया है। तुमको कोई भी बाधा न करने की इच्छा वाले मैंने यह इच्छा से क्रीड़ा-पूर्वक शीघ्र समस्त द्वार पुन. घटित कर दिये ॥ ४७ ॥ आपको इस विषय में

कुछ अन्य प्रकार की बात नहीं समझनी चाहिए। आप मेरे मान्य एवं पूजा करने के योग्य होते हैं। हे कल्याण स्वरूप ! आपका जो भी मैंने कुछ अपकार किया है उसे क्षमा कीजिये। हे प्रभो ! इसलिये मेरे द्वारा कहे हुए आप पद्म से अवतरण करें ॥ ४८ ॥ मैं तेजपूर्ण गुरु आपको सहन नहीं कर सकता हूँ। इस पर वह बोले—वर माँग लो, मैं पद्म से अवतरण करता हूँ ॥ ४९ ॥

पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनम्।
सत्य धनो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ॥५०
अद्यप्रभृति सर्वेश श्वेतोष्णीषविभूषणः।
पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि।
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सर्वलोकाधिप प्रभो ॥५१
तत. स भगवान् ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिनः।
एव भवतु चेत्यक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः ॥५२
प्रत्यासन्नमथायात बालार्काभं महाननम्।
भूतमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ॥५३
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरो रुहः।
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः ॥५४
लोकप्रभुः स्वय साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली।
मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम् ॥५५
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः।
व्याप्य सर्वा दिशो द्याञ्च इत एवाभिवर्त्तते ॥५६

भगवान् विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न ! मेरे पुत्र हो जाओ बहुत ही अच्छा आनन्द प्राप्त करोगे। सत्य धन वाले और महान् योगी आप प्रणव स्वरूप स्तुति करने के योग्य हैं ॥ ५० ॥ हे सर्वेश ! आज से लेकर श्वेत शिरोवेष्टन से विभूषित आप पद्मयोनि इस नाम से विख्यात हो जाओगे। हे प्रभो ! हे ब्रह्मन् ! हे समस्त लोकों के अधिप ! तुम मेरे पुत्र हो जाओ ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर उन भगवान् ब्रह्मा जी ने किरीटी (विष्णु) के वरदान को ग्रहण करके ... हो

गये थे ॥ ५२ ॥ समीप में आये हुए बाल सूर्य के समान आभा वाले महान् आनन (मुख) से युक्त हुए अत्यन्त अद्भुत नारायण को देखकर बोले— ॥ ५३ ॥ अप्रमेय अर्थात् समझ में नहीं आने के योग्य, महान् मुख से युक्त द्रष्ट्राधारी, ध्वस्त बालों वाले, दश भुजाओं से युक्त, त्रिशूल के चिह्न वाले, नेत्रों से विश्वतोमुख, स्वय लोकों के स्वामी, साक्षात् विकृत स्वरूप वाले, मूँज की मेखलाधारी, महान् ऊर्ध्व मेढ से ध्वनि करते हुए, हे विष्णो ! यह कौन ऐसा पुरुष है जो तेज की राशि और महाद्युति वाला है और समस्त दिशा में व्याप्त होकर इधर की ओर ही आ रहा है ॥ ५४-५५-५६ ॥

तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणम ब्रवीद् ।
पद्भयान्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।
वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ॥५७
छटाभिर्विष्णुतोऽप्यर्थं सिच्यते पद्म सम्भवः ।
घ्राणजेन च वातेन कम्पमान त्वया सह ।
दोधूयते महापद्म स्वच्छन्द मम नाभिजम् ॥५८
स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभु ।
भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्यु पतिष्ठाव गोध्वजम् ॥५९
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्ष ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
न भवान् नूनमात्मान लोकाना योनिमुत्तमम् ॥६०
ब्रह्माण लोककर्त्तार माञ्च वेत्ति सनातनम् ।
कोऽयं भो' शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥६१
तस्य तत् क्रोधज वाक्य श्रु त्वा विष्णुरभाषत ।
मा मैव वद कल्याण परिवाद महात्मन ॥६२
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रद ।
हेतुरस्याथ जगत पुराण पुरुषोऽव्यय ॥६३

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा— जिसके विक्रम से पदों के तल निपातन से समुद्र में महान् वेग से, आकाश में समस्त जलाशय व्यथित हो गये हैं, छटाओं के द्वारा विष्णु से भी अधिक पद्म-

सम्भव सिच्यमान होते हैं और घ्राण से उत्पन्न वायु से आपके साथ कम्पमान होकर मेरे नाभि से उत्पन्न इस स्वच्छ द महान् पद्म को भी कँपा रहे हैं यह यह भगवान् ईश हैं जो अनादि और अन्त करने वाले विभु हैं। मैं और आप इन गोध्वज की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करें ॥ ५७-५८-५९ ॥ इसके पश्चात् क्रोध युक्त ब्रह्मा अम्बुज की आभा वाले केशव से बोले—आप उत्तम लोकों की योनि, लोकों के करने वाले मुझको सनातन ब्रह्म या भूमा नहीं जानते हैं। यह शङ्कर कौन है जो हम दोनों से भी अधिक बन रहा है। ॥ ६०-६१ ॥ उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर विष्णु ने कहा—हे कल्याण! ऐसा महान् आत्मा वाले की परिवाद (निन्दा) मत कहो ॥ ६२ ॥ यह महान् मायायोग का ईश्वर, धर्म दुराधर्ष वर प्रदान करने वाले, इस जगत् के हेतु पुराण और अव्यय पुरुष हैं ॥ ६३ ॥

जीवः खल्वेष जीवाना ज्योतिरेकं प्रकाशते ।
बालक्रीडनकैर्देवं क्रीडते शङ्करः स्वयम् ॥६४
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ।
अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥६५
एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः ।
एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥६६
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥६७
ज्ञात्वा चैव समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा ।
इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥६८
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते ।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥६९
द्वैधीभावेन चात्मानं प्रविभज्य तु व्यवस्थितः ।
निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ॥७०

यह जीवों का निश्चय ही जीव है और एक ज्योति को प्रकाशित करते

यह देव शङ्कर स्वयं बच्चों के खिलौनों से क्रीडा किया करते हैं ॥ ६४ ॥
र ही प्रसव के धर्म वाले इनके प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तम
ाम कहे जाते हैं । वह कौन है जो दुःखों के आर्त्त होने वाले यतियों के द्वारा
ा जाया करता है ? वह यही शिव हैं ॥ ६५ ॥ यह बीज वाले हैं, आप
ं हैं, मैं योनि हूँ जो कि सनातन हूँ । इस प्रकार से कहे गये विश्वात्मा ब्रह्मा
बोले—॥ ६६ ॥ आप योनि हैं अर्थात् वह स्थान हैं जहाँ बीज पड़ा करता
में बीज हूँ और महेश्वर बीज वाले हैं, यह मुझे बहुत बड़ा संशय हो रहा है
लिये आप इस मेरे सन्देह का छेदन करने में समर्थ हो ॥ ६७ ॥ लोक-
श्री ब्रह्मा के द्वारा समुत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर भगवान हरि ने इस परम सा-
य प्रश्न को बतलाया था ॥ ६८ ॥ इससे अधिक महान् अन्य कोई भी भूत
ी है । शिव महान् का परम धाम और अध्यात्मवादियों का पद होता है
६९ ॥ अपने स्वरूप के दो विभाग कर प्रविष्ट होते हुए यह व्यवस्थित रहते
। सूक्ष्म अव्यक्त एक निष्कल स्वरूप है और दूसरा सकल अर्थात् कलाओं से
त महेश्वर स्वरूप होता है ॥ ७० ॥

अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिङ्गं भवद्वीज प्रथमं स्वादिसर्गिकम् ॥७१
मयि योनौ समायुक्तं तद्वीज कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमपारन्तद्योन्यामण्डमजायत ॥७२
शतानि दशवर्षाणामण्डंचाप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥७३
कपालमेक द्यौर्जज्ञे कपालमपर क्षितिः ।
उल्बन्तस्य महोत्सेध योऽसौ कनकपर्वतः ॥७४
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभु ।
हिरण्यगर्भो भगवानह जज्ञे चतुर्भुजः ॥७५
ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् ।
अनारार्केन्दुनक्षत्रं शून्य लोकमवेक्ष्य च ।
कोऽयमत्रे त्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवस्तदा ॥७६

प्रियदर्शनास्सुतनवो येऽनीता पूर्वजास्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।
भुवनानलसङ्काशा पद्मपत्रायतेक्षणा. ॥७७

इस माया की विधि को जानने वाले तथा अगम्य एव गहन का पहिले आदि सर्गिक प्रथम लिङ्ग बीज हुआ जो कि आप हैं ॥ ७१ ॥ काल के प्रभाव से वह बीज योनि स्वरूप मुझ में समायुक्त हुआ । वह उस समय योनि में अपार हिरण्मय अण्ड के रूप मे उत्पन्न हो गया था ॥ ७२ ॥ वह अण्ड दश सहस्र वर्ष तक जल मे ही प्रतिष्ठित रहा फिर अन्त में हजार वर्ष के बाद वह वायु के द्वारा दो कर दिया गया ॥ ७३ ॥ उसका एक कपाल अर्थात् आधा भाग ने द्यौ को उत्पन्न किया और दूसरे कपाल से क्षिति उत्पन्न हुई । उल्वन्त का महोत्सेध जो है वह यह कनक पर्वत है ॥ ७४ ॥ इसके पश्चात् उससे प्रबुद्ध आत्मा वाला देवों में श्रेष्ठ प्रभु देव हिरण्यगर्भ आप और चार भुजाओं वाला मैं उत्पन्न हुआ ॥७५ फिर एक सहस्र वर्ष के अन्त मे वायु ने पुन दो टुकडे किये । तारा, सूर्य चन्द्र से रहित द्यूलोक को देखकर यहाँ पर यह कौन है ऐसा अभिध्यान करने पर उस समय वे कुमार हुये ॥ ७६ ॥ देखने मे परम प्रिय, सुन्दर शरीर वाले आप के जो पहिले होने वाले पूर्वज थे वे ही एक सहस्र वर्षों के अन्त मे आपके आत्मज हैं । जो भुवन की अग्नि के समान तथा पद्मपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाले हैं ॥ ७७ ॥

श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्चं वोर्द्ध्वरेतसौ ।
सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दन ।
उत्पन्ना समकाल ते बुद्धयाऽतीन्द्रियदर्शना ॥७८
उत्पन्ना प्रतिघात्मानो जगदुश्च तदैव हि ।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिता ॥७९
अस्य सौम्य बहुक्लेश जराशोकसमन्वितम् ।
जीवित मरण चैव सम्भवश्च पुन पुन ॥८०
स्वप्नभूत पुन स्वर्गं दुखानि नरकास्तथा ।
विदित्वा चागम सर्वमवश्य भवितव्यताम् ॥८

ऋभुं सनत्कुमारश्च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा आत्मजाः सनकादयः ।
वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ॥८२
ततस्तेष्वपवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ।
भविष्यसि विमूढस्तु मायया शङ्करस्य तु ॥८३
एव कल्पे तु वैकल्पे सज्ञा नश्यति तेऽनघ ।
कल्पशेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ॥८४
सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता ।
स एष पर्वतो मेरुर्देवलोक उदाहृतः ॥८५

उन कुमारों में धीमान् सनत्कुमार तो ऋभु और ऊर्ध्वरेता थे और सनातन, सनक एव सनन्दन ये सब एक ही काल मे उत्पन्न हुये थे और बुद्धि से अतीन्द्रिय दर्शन वाले थे ॥ ७८ ॥ ये प्रतिघात्मा उत्पन्न होते ही उसी समय कहने लगे कि तीनो तापो से रहित रहते हुए कुछ भी कर्मो को आरम्भ नहीं करेगे ॥ ७९ ॥ इसके सौम्य और बहुत-से क्लेशो से पूर्ण तथा बुढापा एव शोक से युक्त जीवन और मरण को तथा बार-बार जन्म ग्रहण करना, स्वप्न के सदृश स्वर्ग में वास तथा दुख एव नरकों का जानकर तथा समस्त आगम और भविष्यता का ज्ञान प्राप्त करके और ऋभु सनत्कुमार को आपके वश मे रहने की स्थिति मे देखकर तीन जो सनकादिकुमार थे व गुणो को त्यागकर महान् ओज वाले वे तीनो वैवर्तमार्ग के ज्ञान से निवृत्त हो गये थे ॥ ८०-८१-८२ ॥ इसके अनन्तर उन तीनो सनकादिक के अपवृत्त हो जाने पर तुम शङ्कर की माया से विशेष रूप से मूढ हो जाओगे ॥ ८३ ॥ हे अनघ ! इस प्रकार से वैकल्प कल्प मे आप की सज्ञा नष्ट हो जाती है और कल्प मे शेष जो प्राणी हैं वे सूक्ष्म और पार्थिव हैं ॥ ८४ ॥ वह यह जगत् की ऐश्वरी माया कही गई है । और वह यह मेरु पर्वत जो है सो देवलोक बताया गया है ॥ ८५ ॥

तवैवेद हि माहात्म्य दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ।
ज्ञात्वा चेश्वरसद्भाव ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ॥८६
महादेव महायोग भूताना वरद प्रभुम् ।

प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्या जगद्गुरुम् ।
त्वाञ्च माञ्चैव संक्रुद्धो निःश्वासान्निर्द्हेदयम् ॥८७
एवं ज्ञात्वा महायोगं अभ्युत्तिष्ठन् महाबलः ।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ॥८८
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः ।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च ।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इद स्तोत्रमुदीरयत् ॥८९
नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥९०
अमेढ्रायोर्द्धमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ॥९१
नमो हृव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः ।
गह्वराय धनेशाय हैमचीराम्वराय च ॥९२

आपके ही इस माहात्म्य को तथा आत्मा से ही अपने आपको देखकर एवं ईश्वर के सद्भाव तथा अभ्युत्थान मुझको जानकर महान् योग वाले प्राणियों को वर देने वाले प्रभु महादेव को जो कि प्रणव के स्वरूप वाले हैं, प्राप्त करके जगत् के गुरु को नमस्कार करके यह संक्रुद्ध होकर तुमको और मुझको निश्वास से निर्दग्ध कर देते हैं ॥८६॥८७॥ इस प्रकार से महान् बल वाले इस महायोग का ज्ञान प्राप्त करके अभ्युत्थित होता हुआ मैं तुमको आगे करके उस अनल के समान प्रभा वाले की स्तुति करूँगा ॥८८॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गरुड़ध्वज विष्णु ने ब्रह्माजी को आगे करके अतीत (गुजरे हुए) आगे आने वाले तथा वर्तमान नामों से और छान्दसों के द्वारा इस स्तोत्र का उच्चारण किया था ॥८९॥ सुन्दर व्रत वाले, अनन्त तेज से युक्त भगवान् आपके लिये नमस्कार है। क्षेत्र के अधिपति बीज वाले शूली के लिये नमस्कार है ॥९०॥ मेढ़ से रहित तथा उर्द्ध मेढ़ वाले वैकुण्ठरेता आपके लिये नमस्कार है। ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रथम के लिये नमस्कार है ॥९१॥ हव्य पूज्य और सद्य उत्पन्न होने वाले के लिये नमस्कार है। गह्वर-धनेश और हैमचीराम्बर धारण करने वाले के लिये नमस्कार है ॥९२॥

नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥९३
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥९४
विद्युदशनिमेघानां गर्ज्जितप्रभवे नमः ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥९५
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ।
नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ॥९६
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥९७
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ।
नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥९८
निमेष प्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः ।
अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥९९

हमारे सदृश प्राणियों के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है। वेद-कर्म और अवदान द्रव्यों के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥९३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा सांख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है। ध्रुव निशीथ ऋषियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९४॥ विद्युत्-वज्र और मेघों तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है। समस्त समुद्रों को जन्म देने वाले तथा सम्पूर्ण द्वीपों को उत्पन्न करने वाले के लिये नमस्कार है ॥९५॥ पर्वतों के प्रभव स्थान के लिये तथा वर्षों के उत्पत्ति स्वरूप वाले के लिये नमस्कार है। नद और नदियों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९६॥ औषधियों के तथा वृक्षों के प्रभु के लिये नमस्कार है। धर्म के अध्यक्ष तथा धर्म स्वरूप एवं समस्त स्थितियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९७॥ समस्त रसों के तथा सम्पूर्ण रत्नों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है। क्षण और कलाओं के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९८॥ निमेष-काष्ठा अहोरात्र-अर्द्धमास और मासों के प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है ॥९९॥

अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥११४
नम. पाशाय हस्ताय नम स्वाभरणाय च ।
हुताय अपहुताय प्रहुतप्रशिताय च ॥११५
नमोऽस्त्विष्टाय मूर्त्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च ।
नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नम. ॥११६
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृयाय च ।
अहिंसायाय लोकाना पशुमन्त्रौषधाय च ॥११७
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ।
नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे ॥११८
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ।
सर्वत पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥११९

तप स्वरूप जनरूप और वरद के लिये नमस्कार है। वन्दना करने योग्य-मोक्ष स्वरूप जन और नरक के लिये नमस्कार है ॥११३॥ भव भजमा इष्ट, याजक, अभ्युदीर्ण, दीप्त, तत्त्व, निर्गुण के लिये नमस्कार है ॥११४॥ पाश हस्त और स्वाभरण के लिये नमस्कार है। हुत, अपहुत, प्रहुत तथा प्रशित के लिये नमस्कार है ॥११५॥ इष्ट मूर्त्त और अग्नि स्तोम ऋत्विज के लिये हमारा नमस्कार है। ऋत एव सत्य तथा भूतो के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥११६ सदस्य के लिये तथा दक्षिणावभृय के लिये नमस्कार है। अहिंसा के लिये तथ लोको के पशु-मन्त्र एव औषध के लिये नमस्कार है ॥११७॥ तुष्टि के प्रदान करने वाले त्र्यम्बक और सुन्दर गन्ध वाले के लिये नमस्कार है। इन्द्रियो के पति, परिहार तथा स्रग्धारी के लिये नमस्कार है ॥११८॥ विश्व-विश्वरू और विश्व से अक्षि मुख-सभी ओर हाथ और पद वाले, अप्रमित और रुद्र के लिये नमस्कार है ॥११९॥

नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः ।
नमः सिद्धाय मेघ्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥१२०
सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ।
सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२१

नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च ।
विरूपाक्षायत्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२२
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च ।
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२३
पिशिताय पिशङ्गाय पिताय च निषङ्गिणे ।
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः ॥१२४
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ।
नम श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥१२५
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे ।
नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥१२६

हव्य और कव्य तथा हव्य कव्य के लिये नमस्कार है। सिद्ध, मेध्य चेष्ट और अव्यय के लिये नमस्कार है ॥१२०॥ सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्य क्षोभण, सुमेधा, सुप्रजा, दीप्त और भास्कर के लिये नमस्कार है ॥१२१॥ सुपर्ण और तपनीय के तुल्य के लिये नमस्कार है विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, और महान् ओज वाले के लिये नमस्कार है ॥१२२॥ दृष्टि के हनन करने वाले के लिये नमस्कार है और सौम्य नेत्र वाले के लिये नमस्कार है। धूम्र, श्वेत, कृष्ण और लोहित के लिये हमारा नमस्कार है, ॥१२३॥ पिशित, पिशङ्ग, पीत और निषङ्ग वाले के लिये हमारा नमस्कार है विशेषता से युक्त तथा निर्विशेष के लिये नमस्कार है ॥१२४॥ पद्म जैसे वर्ण वाले, मृत्यु के नाश करने वाले तथा मृत्यु स्वरूप के लिये नमस्कार है। श्याम, गौर, कद्रु और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१२५॥ कान्त सन्ध्या के समान अभ्र वर्ण वाले तथा बहुत, से रूप वाले के लिये नमस्कार है। कपाल हाथ मे रखने वाले, दिशाओ के वस्त्र वाले अर्थात् तनग्न या कपर्दी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥

अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव विघ्राणाय कृशानवे ॥१२७
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ।
अर्कप्रभशरीराय वलिने रहसाय च ॥१२८

पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रमृताय च ।
सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥१२६
चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च ।
चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्व निहिताय च ॥१३०
नम क्षान्ताय शान्ताय वज्रसहनाय च ।
रक्षोघ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्द्ध रेतसे ॥१३१
अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च ।
समादाय प्रमोदाय इरिणायैव ते नम ॥१३२
प्रणवप्रणवेशाय भक्ताना शर्मदाय च ।
मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ॥१३३

अप्रमेय–शर्व, अवध्य, धर, आगे और पीछे विभ्राण, कृशानु के लिये नमस्कार है ॥१२७॥ दुर्ग, महान्, रोध, कपिल, सूर्य की प्रभा से युक्त शरीर वाले के लिये, बली और रहम के लिये नमस्कार है ॥१२८॥ पिनाकी, प्रसिद्ध, स्फीत, प्रमृत, सुमेधा अक्षो की माला वाले, दिग्वासा तथा शिखण्डी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥ चित्र चित्र वर्ण, विचित्र, धर, चेकितान, तुष्ट और अनिहित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३०॥

क्षान्त, शान्त, वज्र सहनन, राक्षसों के हनन करने वाले, मखो के नाशक, शितिकण्ठ और ऊर्ध्वरेता के लिये नमस्कार है ॥१३१॥ शत्रुओं के नाशक, कृतान्त, तीक्ष्ण आयुधो के धारण करने वाले, मोह के सहित, प्रमोह स्वरूप और और इरिण के लिये नमस्कार है ॥१३२॥ प्रणव के प्रणवेश, भक्तो को कल्याण प्रदान करने वाले, मृगव्याध, दक्ष और दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वस करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है॥१३३॥

सर्वभूताय भूताय सर्वेशातिशयाय च ।
सुरभेर्ते च शान्ताय सुगन्धाय वरेशवे ॥१३४
पुष्पवन्तस्वरूपाय भगनेत्रान्तकाय च ।
गालाय अरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ॥१३५

रवे. करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च ।
दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च ॥१३६
श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे ।
नमस्ते प्राणपालाय धवमालाधराय च ॥१३७
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च ।
नरनारीशरीराय देव्यः प्रियकराय च ॥१३८
(जटिने दण्डिने तुभ्य व्यालयज्ञोपवीतिने ।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियाय च ॥१३६
मन्यवे गीतशीलाय सुगीतिगायते नमः ।
कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च ॥१४०

सर्वभूत, भूत, सर्वेश के अतिशय के लिये, पुर के भेदन करने वाले, शान्त सुगन्ध और नरेश के लिये नमस्कार है ॥१३४। पुण्यवन्त स्वरूप, भग नेत्रान्तक, कणाद, वरिष्ठ और काम के अङ्गों को दहन करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३५॥ सूर्य के कराल चक्र के लिये तथा नागेन्द्र के दमन के लिये, दैत्यों के अन्तक के लिये और दिव्यों को आक्रन्द करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३६॥ श्मशान रति के लिये तथा त्र्यम्बकधारी के लिये नमस्कार है । प्राणों के पालन करने वाले, धवकी माला के धारण करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३७॥

प्रहीण शोक वाले अनेक भूतों के द्वारा परिवृत, नर और नारीके शरीर वाले तथा देवी के प्रिय करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३८।(जटाओं के धारण करने वाले, दण्डधारी, व्यालों (सर्पों) के यज्ञोपवीत पहिनने वाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ।(नृत्य करने के स्वभाव वाले तथा वाद्य एव नृत्य पर प्यार करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३६॥)मन्यु स्वरूप, शील के स्वभाव वाले तथा सुन्दर गीतों के गायन करने वाले, कटक कर, भीम और उग्ररूप धारण करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४०॥

विभीषणाय भीमाय भगप्रमथनाय च ।
सिद्धसङ्घानुगीताय महाभागाय वै नमः ॥१४१

घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपति ।
कवची पट्टिशी शङ्खी पाशहस्त परश्वभृत ॥१५७
अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दन ।
त्वा प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥१५८
अग्निस्त्व चार्णवान् सर्वान् पिबन्नेव न तृप्यसे ।
क्रोधागार प्रसन्नात्मा कामहा कामद प्रिय ॥१५९
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्व शिष्टपूजित ।
वेदानामव्यय कोशस्त्वया यज्ञ प्रकल्पित ॥१६०
हव्यञ्च वेद वहति वेदोक्त हव्यवाहन ।
प्रीते त्वयि महादेव वय प्रीता भवामहे ॥१६१
भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा,
लोकानान्त्व कर्त्ता त्वादिसर्ग ।
साङ्ख्या प्रकृतिभ्य परम त्वा विदित्वा,
क्षीणध्यानास्ते न मृत्यु विशन्ति ॥१६२
योगेन त्वान्ध्यानिनो नित्ययुक्ता,
ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वा प्रपन्ना विशुद्धास्ते,
कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते ॥१६३
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्म स्वशक्तित ।
कीर्तित तव माहात्म्यमपार परमात्मन ।
शिवो नो भव सवत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते ॥१६४

यह महेश्वर तप की राशि, गुरु के गुरु, नन्दन और नन्दिवर्धन हैं। ह
शीर्ष, धरा के धाता, विधाता तथा भूति को वहन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ ‘
बोध करने के योग्य, बोधन, नेता, पूर्वह, दुष्प्रधर्षक बृहद्रथ, भीम कर्म क
वाले, बृहत्कीर्ति और धनञ्जय हैं ॥ १५६ ॥ यह महेश्वर घण्टाप्रिय ध्वज
छत्रधारी, पताकाध्वजिनी के स्वामी, कवचधारी पट्टिशधारण करने वा
शङ्खधारी, हाथ में पाश ग्रहण करने वाले और परश्वभृत हैं ॥ १५७ ॥ ‘

अगम, अनघ, शूर, देवराज के शत्रुओ को मर्दन करने वाले हैं। आपको प्रसन्न कर हमने युद्ध मे पहिले शत्रुओ को मारा था ॥ १५८ ॥ आप अग्नि स्वरूप हैं समस्त समुद्रों का पान करते हुए भी तृप्त नही होते हैं। आप क्रोध के घर हैं, प्रसन्न आत्मा वाले हैं, काम के नाशक तथा काम के प्रदान करने वाले प्रिय हैं ॥ १५६ ॥ आप ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मचारी, गौओ का नियमन करने वाले तथा शिष्ट पुरुषो के द्वारा पूजित हैं। आप वेदो के अव्यय-कोश हैं और आपने यज्ञ की कल्पना की है ॥ १६० ॥ हव्य वेद का वहन करता है और हव्य वाहन वेदोक्त का वहन करता है। हे महादेव! आपके प्रसन्न होने पर हम सब प्रसन्न होते हैं ॥ १६१ ॥ आप भवानी के स्वामी, आदिमान् न होने वाले, ग्रामो के समूह, लोको के ब्रह्मा, आदिसर्ग और आप-कर्त्ता हैं। साख्य शास्त्र के ज्ञाता आपको प्रकृतियो से पर जान कर क्षीण ध्यान वाले वे मृत्यु मे प्रवेश नही करते है ॥ १६२ ॥ ध्यान करने वाले योग के द्वारा आप मे नित्य युक्त होते हुए जानकर फिर उन समस्त भोगो का त्याग कर देते हैं। जो अन्य मनुष्य आपकी शरणागति मे आते हैं वे विशुद्ध होकर कर्मों से दिव्य भोगो का सेवन किया करते हैं ॥ १६३ ॥ अप्रमेय तत्व को जैसे अपनी शक्ति से जानते हैं वैसे हो परमात्मा आपका अपार माहात्म्य का कीर्तन किया। आप जो भी कोई हों वह हो, हमारे लिये सर्वत्र शिव होवें। आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥ १६४ ॥

॥ प्रकर्ण २५—मधुकैटभ उत्पत्ति ॥

सपित्रमिव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षण ।
प्रहृष्टवदनोऽप्यथमभवच्च स्वकीर्त्तनात् ॥१
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः ।
पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचन ॥२
तत. स भगवान देवः श्रुत्वा वाक्यामृत तयोः ।
जानन्नपि महाभागः प्रीतपूर्वमथाब्रवीत् ॥३
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ।
समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥४

तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किञ्च तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ।
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारमृते त्वया ॥५
उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वा त्वा च कृष्ण वदाम्यहम् ॥६
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवन्तौ माननीयौ मे मम ह्यर्हतरावुभौ ।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उन दोनों को भली भाँति ध्यान करते हुए की भाँति देखकर मधु पिङ्ग एवं आयत नेत्रों वाले महेश्वर अपने कीर्तन से अत्यन्त प्रहृष्ट मुख वाले हो गये ॥ १ ॥ उमा के स्वामी, विरूप नेत्रों वाले, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले पिनाकधारी, खण्ड परशु, भूत ग्राम और तीन नेत्र वाले उन भगवान महादेव ने इन दोनों के वचनामृत को सुनकर फिर महाभाग जानते हुए भी प्रीति के साथ बोले—॥ २-३ ॥ इस घोर जल के विप्लव में परस्पर में हित के चाहने वाले महान् आत्मा वाले आप दोनों कौन हैं ? आप कमल के समान नेत्रों वाले यहाँ इकट्ठे होते कौन हैं ? ॥ ४ ॥ उन दोनों महात्माओं ने परस्पर में भली भाँति देखकर कहा—हे भगवान ! हे विभो ! तथ्य को जानने वाले आपके बिना अनन्त सुख इच्छाचार कहाँ हो सकता है ॥ ५ ॥ भगवान् देव मधुर और स्निग्ध वाणी से बोले—हे हिरण्यगर्भ ! हे कृष्ण ! मैं आप दोनों से कहता हूँ, मैं आपकी इस भक्ति से प्रसन्न हो गया हूँ जो कि शाश्वताक्षर से युक्त है । अब आप दोनों ही मेरे परम माननीय और अतियोग्य हो गये हैं । मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि वरों में अतिश्रेष्ठ क्या तुम दोनों को वरदान दूँ ॥ ६-७ ॥

तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीन् ।
ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ॥८
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि धूर्वहम् ।
ततः स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सु पुत्रलिप्सया ॥९

अथ विष्णुरुवाचेद प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
वीरमप्रतिम पुत्र यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥१०
पुत्रत्वेनाभियुड्क्ष्व त्व देवदेवं महेश्वरम् ।
स तस्य वाक्य सपूज्य केशवस्य पितामह ॥११
ईशान वरद रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ॥१२
यदि मे भगवान् प्रीत. पुत्रकामस्य नित्यशः ।
पुत्रो मे भव विश्वात्मन् स्वतुल्यो वापि धूर्वह. ।
नान्य वरमह वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥१३
तस्य तां प्रार्थना श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ।
निष्कल्मषममायश्च वाढमित्यब्रवीद्वच ॥१४

उनके द्वारा इस प्रकार से कहने पर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से बोले—हे महाभाग ! बोलो-बोलो जो भी वर आपको विवक्षित हो ॥ ८ ॥ हे विष्णो ! मैं प्रजा का कामना रखने वाला हूँ । मैं धुरी का वहन करने वाला पुत्र चाहता हूँ । इसके पश्चात् पुत्र की लिप्सा से वर की चाहना रखने वाले वह भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर प्रजा की इच्छा वाले प्रजापति से भगवान् विष्णु ने यह कहा—कि जो आप परम वीर और अनुपम धुरी के वहन करने वाला पुत्र चाहते हो तो आप देवो के देव महेश्वर को ही पुत्रत्व के रूप मे अभियुक्त करें । तब पितामह ने केशव भगवान् के इस वचन का आदर किया ॥ १०-११ ॥ कृताञ्जलि होकर वर देने वाले ईशान रुद्र को प्रणाम करके विष्णु के साथ ही पुत्र की कामना रखने वाले ब्रह्माजी ये वाक्य बोले ॥ १२ । यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो नित्य ही पुत्र की कामना रखने वाले मेरे हे विश्वात्मन् ! आप पुत्र होवें अथवा अपने ही सदृश धुरी का वहन करने वाला पुत्र दो । मैं इसके अतिरिक्त कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ । हे महेश्वर ! आप जब प्रसन्न हैं तो यही वरदान मुझे दें ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर भग के नेत्रों का हनन करने वाले भगवान् महेश्वर बिना किसी कल्मष तथा माया के 'अच्छा यही होगा' यह वचन बोले ॥ १४ ॥

यदा कार्यसमारम्भे कस्मिश्चित्तव सुव्रत ।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वां समुपेष्यति ।
आत्मैकादश ये रुद्रा निर्दिष्टा प्राण हेतवः ॥१५
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्त सहानुग ।
ऋषिर्मित्रो महात्मा वै ललाटाद्भविता तदा ॥१६
प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणस्तादृशं पुरा ।
विष्णु पुनरुवाचेदं ददामि च वरस्तव ॥१७
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ।
सर्वमेतत् कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ॥१८
एवमुक्तस्ततो देवस्तमभाषत केशवम् ।
विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहन्तव शाश्वत ॥१९
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गम स्थावरश्च यत् ।
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥२०
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम् ।
भवानृतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम् ॥२१

हे सुव्रत ! जब तुम्हारे किसी कार्य के समारम्भ मे कार्य की सिद्धि न होने पर आपको क्रोध आवेगा तब अपने एकादश रुद्र जो प्राणों के हेतु स्वरूप बनाये हैं वह मैं एकादश स्वरूप वाला हाथ में शूल धारण किये हुए अनुचरों के साथ महात्मा ऋषि मित्र उस समय ललाट से होऊँगा ॥ १५-१६ ॥ उस समय ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार का अतुल प्रसाद करके फिर विष्णु भगवान् से यह बोले—मैं आपको वरदान देता हूँ ॥ १७ ॥ तब महाभाग वह विष्णु भव अर्थात् महेश्वर से यह वचन बोले—हे देव ! यह सब किया गया है यदि मुझ पर आप अत्यन्त परितुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे अम्बुद वाहन ! आप मे मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति होवे ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से कहे हुए महादेव ने केशव से कहा—हे विष्णो ! हे शाश्वत ! हे देव ! आप सुनो मैं आप से बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ प्रकाश और अप्रकाश स्थावर और जङ्गम जो यह विश्व का रूप है

वह सब रुद्र और नारायण के स्वरूप वाला ही है ॥ २० ॥ मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं। आप रात्रि हैं तो मैं दिन हूँ। आप ऋत हैं तो मैं सत्य हूँ, आप ऋतु हैं तो मैं फल हूँ ॥ २१ ॥

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेय यज्जपित्वा सदा जनाः ।
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिण ।
आवाभ्या सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ॥२२
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुष शिवम् ।
भवानर्द्धशरीर मे त्वहन्तव यथैव च । २३
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्याम श्रीवत्सलक्षणम् ।
त्वञ्च वामेतर पार्श्वं त्वहं वै नीललोहित ॥२४
त्वञ्च मे हृदयं विष्णो तत्र चाहं हृदि स्थित. ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम् ॥२५
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ।
एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ॥२६
ततः सोऽन्तर्हिते देवे सम्प्रहृष्टस्तदा पुनः ।
अनेत शयने भूप प्रविश्यान्तर्जले हरिः ॥२७
त पद्मं पद्मगर्भाभ पद्माक्ष. पद्मसम्भवः ।
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्म तदासनम् ॥२८

आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु हूँ। जिसका जप करके सर्वदा मनुष्य जो सुकृत करने वाले हैं आपके प्रसन्न होने पर मुझ में प्रवेश किया करते हैं। हम दोनों के सहित ही गति है और युग के क्षय में अन्य कोई भी गति नहीं होती है ॥ २२ ॥ अपने आपको प्रकृति समझो और मुझ शिव को पुरुष जानो। आप मेरे आधे शरीर हैं और इसी प्रकार से मैं आपका भी आधा शरीर हूँ ॥ २३ ॥ मैं वाम पार्श्व हूँ और मेरे लिये श्याम श्रीवत्स का लक्षण है। और आप वाम से इतर अर्थात् दक्षिण पार्श्व हैं और मैं नील लोहित हूँ ॥ २४ ॥ हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदय में स्थित हूँ। आप समस्त कार्यों के कर्ता हैं और मैं उन सब का अधिदैवत हूँ ॥ २५ ॥ हे

वत्स ! हे अच्युत प्रभ ! सो अब आइये, आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। इस प्रकार से कहकर विष्णु के देव ईश्वर अन्तर्धान हो गये ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् महादेव के अन्तर्हित हो जाने पर वह भगवान् विष्णु फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर हे भूप ! हरि ने जल में अन्दर प्रवेश किया और अपनी शैया में शयन करने लगे ॥ २७ ॥ पद्म के समान नेत्र वाले पद्म से समुत्पन्न, सन्तुष्ट मन वाले ब्रह्माजी ने पद्मगर्भ की आभा वाले उस शाल्मु आसन पर शयन किया ॥ २८ ॥

जब कर्णिका घटन गति को नहीं जाना तो इसके उपरान्त उनने कमल नाल के द्वारा रसातल में अवतरण किया और वहाँ जल के भीतर कृष्णाजिन के उत्तरा सङ्ग वाले हरि का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ वहाँ उन्होने उनको बताया और विशेष रूप बुद्ध होने वाले उनमे यह कहा—हे देव ! मुझे भूतो से भय होता है, आप उठिये, मेरी रक्षा कीजिए और मेरा कल्याण करिये ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु जो कि शत्रुओं के दमन करने वाले हैं, हास के सहित बोले—आप को डरना नहीं चाहिए और डरो मत, यह वचन स्वयं मुनि ने कहे ॥ ३४ ॥ इससे पूर्व आपने कहा था कि भूतो से मुझे महान् भय हो रहा है सो भूतादि वाक्यो के द्वारा आप उन दोनों दैत्यो का नाश कर देंगे ॥ ३५ ॥

भूर्भुव स्वस्ततो देवं विविशुस्तमयोनिजम् ।
तत: प्रदक्षिण कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥३६
गते तस्मिंस्ततोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात् ।
विष्णु जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षनाय ।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमन पुन ॥३७
चक्राते रूप साहश्य विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ ।
कृतसादृश्यरूपौ तौ तावेवाभिमुखौ स्थितौ ॥३८
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माण दारुण वचः ।
अस्माकं युध्यमानाना मध्ये वै प्राश्निको भव ॥३९
ततस्तौ जलमाविश्य सस्तम्भ्याप. स्वमायया ।
चक्रतुस्तुमुल युद्धं यस्य येनेप्सित तदा ॥४०
तेषान्तु युध्यमानाना दिव्य वर्षशतङ्गतम् ।
न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्य सन्यवर्त्तत ॥४१
लक्षणद्वयमस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ।
सादृश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमन् ॥४२

इसके अनन्तर "भूर्भुवः स्व" ये उस अयोनिज देव के अन्दर प्रविष्ट हो गये । इसके पश्चात् उनने प्रदक्षिणा की और उसी आसन पर पुनः आ गये और बैठ गये ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् उस अनन्त मे दो भाई मुख से उद्गीर्ण

होकर विष्णु और जिष्णु से बोले ब्रह्मा को रक्षा करो क्योंकि पुन. उन दोनों मधु और कैटभ का आगमन जान लिया था ॥ ३७ ॥ विष्णु और जिष्णु के रूप को समानता उन दोनो ने बनाली थी और सादृश्य रूप वाले होकर उन दोनों के ही सामने मे स्थित हो गये थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दैत्य ब्रह्माजी से बोले और अत्यन्त दारुण वाक्य कहे कि हमारे युद्ध करने वालो के मध्य मे प्राश्निक बन जाओ ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् वे दोनो जल मे प्रविष्ट होकर अपनी माया से उन्होने जल को स्तम्भित कर दिया और फिर वहाँ उन दोनो ने उस समय तुमुल युद्ध जैसा भी जिसने चाहा किया था ॥ ४० ॥ उनको वहाँ युद्ध करते हुए दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अन्योन्य का युद्ध करने के मद को अधिकता का अभिमान कम नही हुआ ॥ ४१ ॥ लक्षण द्वय के सस्थान से रूप वाले वे स्थित इङ्गित वाले थे। उन दोनो के समान रूपता से व्याकुल मन वाले ब्रह्माजी ध्यान मे स्थित हो गये थे ॥ ४२ ॥

स तयोरन्तर बुद्धा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा ।
पद्मकेसरज सूक्ष्म ववन्ध कवचन्तयोः ।
आमेखलञ्च गात्रञ्च ततो मन्त्र मुदाहरत् ॥४३
जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता ।
पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ।
ता दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयाद्वर्णविवर्जितौ ॥४४
तत प्रोवाच ता कन्या ब्रह्मा मधुरया गिरा ।
काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥४५
साम्ना सपूज्य सा कन्या ब्रह्माण प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनी विद्धि मा माया विष्णो सन्देशकारिणीम् ॥४६
त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽह ब्रह्मन् प्राप्ता त्वरायुता ।
अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा गौण नाम चकार ह ॥४७
मया च व्याहृता यस्मात्त्वञ्चैव समुपस्थिता ।
महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यति ॥४८
उत्थिता च शिरो भित्त्वा धाधिता तेन चोच्यते ।

एकानशात् यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ॥४६

तब ब्रह्माजी ने उन दोनों का अन्तर समझ कर उन दोनों के पद्म केशर से उत्पन्न सूक्ष्म कवच बाँध दिया था । मेखला और गात्र तक इसके पश्चात् मन्त्र का उच्चारण किया ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर जप करते हुए उनके विश्वरूप से समुत्थित एक कन्या हुई जो कि पद्म हाथ में ग्रहण किये हुए और सती तथा पद्म एवं चन्द्र के समान मुख वाली थी । वे दोनों दैत्य उसे देखकर बहुत ही व्यथित तथा भय से वर्ण विवर्जित हो गये ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने मधुर वाणी से उस कन्या से कहा—हे अनिन्दिते ! आप कौन हैं ? और मैं आपको क्या समझूँ ? आप सत्य-सत्य मुझे बतलाने की कृपा करें ॥ ४५ ॥ तब उस कन्या ने सामवेद से ब्रह्मा की पूजा करके और प्राञ्जलि होकर कहा—मुझको आप विष्णु भगवान् की सन्देश का पालन करने वाली मोहिनी समझ लीजिए ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा सङ्कीर्त्यमान होती हुई मैं यहाँ बहुत ही शीघ्रता से प्राप्त हुई हूँ । तब प्रसन्न मन वाले ब्रह्माजी ने इसका गौण नाम किया ॥ ४७ ॥ क्योंकि आप मेरे द्वारा व्याहृत हुई हैं और अब यहाँ उपस्थित हो गई हैं इस लिये अब से आपका नाम महाव्याहृति संसार में प्रचलित हो जायगा ॥ ४८ ॥ वह शिर का भेदन करके उत्थित हुई थी इसलिये वह सावित्री इस नाम से भी कही जाती है । क्योंकि बिना अंश वाली एक हैं इसलिये अनेक अंश वाली भी हो जायगी ॥ ४९ ॥

गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च ।
नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादात् शुभानने ॥५०
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् ।
अनावृते नौ मरणं पुत्रत्वञ्च भवेत्तव ॥५१
तथेत्युक्त्वा नतस्तूर्णमनयद्यमसादनम् ।
अनयन् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ॥५२
एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ॥५३
पुत्रत्वमोघेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत ।

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ॥६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुखान् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रु विन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रु विन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे लक्ष्मिवर्धन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से सज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ गया था ॥ ६१ । जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पडी थी । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलङ्कृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पास्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसा मह्य फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ।
संक्षेपसम्प्लवङ्घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ॥५५
स तस्य वचसा देवः संहारमकरोत्तदा ।
मही निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थाश्च जङ्गमान् ॥५६

ये आपके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे शुभानने ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पीडित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो, यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया विष्णु कैटभ को और जिष्णु मधु को ले गये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ वे दोनों दैत्य मारे गये थे। तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ अब जिस तरह से अपने आपको पुत्रत्व के रूप में ईश ने दिया था वह समझ लो। तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कैटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी संक्षेप तथा सम्प्लव से घोर अपने स्थान को जाता हूँ ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था। इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भद्रन्ते क्षिप्तस्ते यादसां पतिः ।
ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मिवर्द्धन ॥५७
बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयोने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥५८
तन्तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनृणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥५९
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ॥६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रुबिन्दुवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे लक्ष्मिवर्धन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से सज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ गया था ॥ ६१ । जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदे निकल पडी थी । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलङ्कृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पास्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसा मह्य फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापतिः ॥६५
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात् कारुण्यपूर्वकम् ।
आत्मैकादश ते रुद्रा प्रोद्भूता रुदतस्तथा ।
रोदनात् खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत् ॥६६
ये रुद्रा खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मका. ।
प्राणाः प्राणभृतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः ॥६७
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ।
तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः ।
ललाटात् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मक. ॥६८
ब्रह्मणे सोऽददात् प्राणानात्मजः स तदा प्रभु ।
प्रहृष्टवदनो रुद्र किंचित् प्रत्यागतासवम् ।
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वच ॥६९
उपयाचस्व मा ब्रह्मन् स्मर्त्तुं मर्हसि चात्मन ।
मा च वेत्थात्मजं रुद्रं प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥७०

ब्रह्माजी ने सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले उन सर्पों को देखकर अपने आपको बहुत कुछ बुरा समझा था, अहो ! इस मेरे तप को धिक्कार है। यह मुझे ऐसा उसका फल मिला है कि मैंने सबसे पूर्व यह लोकों के विनाश करने वाली प्रजा ही आदि में उत्पन्न की है ॥६४॥ उस समय ब्रह्माजी को बहुत ही तीव्र मूर्छा हो गई जो कि क्रोध और अमर्ष से ही पैदा हुई थी। तब प्रजापति ने उस मूर्छा के अभिताप से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥६५॥ उनके उस अप्रतिम वीर्य वाले के देह से करुणा के साथ एकादश रुद्र रुदन करते हुए उत्पन्न हुए। क्योंकि वे रोदन कर रहे थे इसलिये ही उनमें रुद्रत्व के नाम की प्रसिद्धि हुई थी ॥६६॥ जो रुद्र हैं वे प्राण हैं और जो प्राण हैं वे तदात्मक हैं। समस्त भूतों में अवस्थित प्राणधारियों के उन्हें प्राण समझना चाहिए ॥६७॥ अत्यन्त उग्र महत्त्व और साधु से चरित उसके प्राणों को नीललोहित त्रिशूली ने फिर दे दिया था जो कि पद्मयोनि ब्रह्माजी के ललाट से एकादशात्मक प्रभु उत्पन्न हुए थे ॥६८॥ उस आत्मज प्रभु ने ब्रह्माजी को प्राणों को दिया था।

ौर कहा—हे प्रभो ! आप मुझको अपना आत्मज रुद्र समझें और मुझ पर सघता करें ॥७०॥

श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतश्च मनोगतम् ।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभे ॥७१
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७२
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ।
को भवान् विश्वभूतिस्त्व स्थित एकादशात्मकः ॥७३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ।
तत. प्रत्यवददुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजै. सह ॥७४
यत्ते वर महं ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ।
पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५
लोकेषु विश्रुतैः कार्यं सर्वविश्वात्मसम्भवैः ।
विपादन्त्वज देवेश लोकांस्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥७६
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् ।
रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥७७

ब्रह्माजी ने इस परम सुन्दर वचन को सुनकर जिसे कि मन में वे चाहते ही थे, पितामह को बहुत ही प्रसन्नता हुई और उनके नेत्र विकसित कमलों के समान हो गये थे ।।७१।। इसके अनन्तर प्रत्यागत प्राणों वाले भगवान् ब्रह्मा विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले होकर अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर वाणी से बोले ।।७२।। हे महाभाग ! आप मेरे मन को बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं । आप अब मुझे बतलाइये कि एकादश स्वरूप वाले विश्व की भूति स्वरूप आप कौन हैं ? ।।७३।। इस प्रकार से भगवान् ब्रह्मा के द्वारा कहे गये जो कि ब्रह्माजी अनन्त तेज से उस समय युक्त थे, भगवान् रुद्र ने अपने आत्मजों के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम करके उत्तर दिया था ।।७४।। हे ब्रह्मन् ! आपने भगवान् विष्णु के साथ मुझसे जो वरदान माँगा था कि आप स्वयं या आपके ही तुल्य धुरी को वहन करने वाला मेरा पुत्र होवे ।।७५।। हे देवेश !

आप लोको मे समस्त विश्वात्म सम्भव एव विभूतो के द्वारा जो काय लोकों क सृजन का करना चाहते हैं उसे अब विषाद को त्याग कर करें ॥७६॥ इस तरह से कहे हुए ब्रह्माजी के मन को बडी प्रसन्नता हुई और फिर भगवान ब्रह्म लोकान्त मे नील लोहित रुद्र से कहने लगे ॥७७॥

साहाय्य मम कालेऽर्थे प्रजा सृज मया सह ।
बीजी त्व सर्वभूताना तत्प्रपन्नस्तथा भव ।
बाढमित्येव ता वाणी प्रतिजग्राह शङ्कर ॥७८
तत स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषित ।
मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूताना धारणा तत ।
जिह्वा सरस्वतीञ्चैव ततस्ता विश्वरूपिणीम् ॥७९
भृगुमङ्गिरस दक्ष पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ।
वसिष्ठञ्च महातेजा ससृजे सप्त मानसान् ॥८०
पुत्रानात्मसमानन्यान् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ।
तेषा भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८१
ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवता ।
एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामह ॥८२
दक्षाद्यान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ।
प्रजा सृजत भद्र वो रुद्रेण सह धीमता ॥८३
अनुगम्य महात्मान प्रजाना पतयस्तदा ।
वयमिच्छामहे देव प्रजा स्रष्टु त्वया सह ।
ब्रह्मणस्त्वेष सन्देशस्तव चैव महेश्वर ॥८४

आप अब मेरी सहायता करें और मेरे साथ में रहकर मेरे कार्य के लिए प्रजा का सृजन करो । आप समस्त प्राणियो के बीज हैं । अब आप उसी रूप में प्रपन्न हो जावें । तब तो 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने ब्रह्माजी की इस वाणी को ग्रहण कर लिया था ॥७८॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने जो कि कृष्णाजिन से विभूषित थे, सबसे आगे मन का सृजन किया फिर देव ने प्राणियों की धारणा का सृजन किया । इसके उपरान्त विश्व

रूपिणी जिह्वा तथा सरस्वती की सृष्टि की थी ॥७९॥ इसके अनन्तर भृगु अङ्गिरा, दक्ष पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रों को महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया ॥८०॥ फिर उनने अपने ही तुल्य अन्य विश्व सम्भव पुत्रों का सृजन किया फिर उनके अनुमाय ने मुख से गौओं को जन्म दिया ॥८१॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ओङ्कार की प्रमुखता वाले वेदों को तथा अन्य देवताओं को और इस प्रकार से यथाप्रोक्त इन सबको उत्पन्न किया। ॥८२॥ भगवान् प्रभु ने इन सृजन किए हुए दक्ष आदि मानस पुत्रों से कहा—आप सब धीमान् रुद्र के साथ प्रजा का सृजन करो। आपका कल्याण होगा ॥ ॥८३॥ तब उस समय प्रजाओं के पति सब महान् आत्मा वाले के पास जाकर पहुँचे और कहा—हे देव ! हम सब आपके साथ प्रजा का सृजन करने की इच्छा करते हैं। हे महेश्वर ! यह ब्रह्माजी का तथा आपका सन्देश है ॥८४॥

तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्र प्रोवाच तान् प्रभु ।
ब्रह्मणश्चात्मजा मह्य प्राणान् गृह्य च वै सुरा ॥८५
इत्वाप्रजाप्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान् ।
भवन्त स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति व ॥८६
तेनैवमुक्ता प्रत्यूचु रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम् ।
यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥८७
अनुमान्य महादेव प्रजाना पतयस्तदा ।
ऊचुर्दक्ष महात्मान भवान् श्रेष्ठ प्रजापति ।
त्वा पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजा स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८
एवमस्त्विति वै दक्ष प्रत्यपद्यत भाषिनम् ।
तै सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकाम प्रजापति ।
मगस्थिते तत स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजन् ॥८९
अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतु ।
ऋभु सनत्कुमारश्च तपो लोकनिवासिनौ ।
ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत प्रभु ॥९०

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उनसे कहा—आप सब देवता ब्रह्माजी के पुत्र हो सो तुम सब मेरे लिये प्राणों को ग्रहण करो। मेरे आत्मज आगे जन्म लेने वाले इन अग्रज ब्राह्मणों को पहिले करके मेरे स्वरूप वाले ब्रह्मादि से स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों की आप लोग सृष्टि करने के योग्य होते हैं। मेरे इस वचन से आपका कल्याण होगा ॥८५॥८६॥ इस तरह रुद्र के द्वारा कहे गये उन्होंने आद्य त्रिशूली रुद्र से कहा—हे देव ! जैसी भी आप आज्ञा प्रदान करते हैं वही सब किया जायगा ॥८७॥ तब समस्त प्रजापतियों ने महादेव का सम्मान करके महात्मा दक्ष से कहा कि आप सबमें परम श्रेष्ठ प्रजापति हैं। हम सब आपको ही आगे करके प्रजा का सृजन करेंगे। आपका भद्र हो ॥८८॥ तब दक्ष प्रजापति ने कहा—ऐसा ही होगा और प्रजा की कामना वाले दक्ष ने उन सबके साथ सृष्टि करने को काम का आरम्भ कर दिया। सर्ग के स्थित होने वाले स्थाणु से फिर ब्रह्माजी ने सर्ग का सृजन किया था ॥८९॥ इसके अनन्तर सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर तपोलोक के निवास करने वाले ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। फिर इसके पश्चात् प्रभु ने अन्य मानस महर्षियों का सृजन किया था ॥९०॥

॥ प्रकर्ण २६—स्वरोत्पत्ति वर्णन ॥

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते ।
त्वयोक्तानि यथातत्त्व लोकानुग्रहकारणात् ॥१
तत्र वै संशयो मह्यमवता (वा) रेषु शूलिनः ।
किं कारण महादेव कलिं प्राप्य सुदारुणम् ।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतार करोति वै ॥२
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो ।
अवतार कथन्त्वके एतदिच्छामि वेदितुम् ॥३
न तेऽस्त्यविदित किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
भक्तानामुपदेशार्थं विनयात् पृच्छतो मम ।
कथय त्व महाप्राज्ञ यदि श्राव्य महामतम् ॥४
एव पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रत. ।

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ।
अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् ॥११
अथोत्तम स लोकेषु स्वमूर्त्तिञ्चापि पश्यति ।
ध्यायन्वै स तदा देवमथैनं पश्यते पुन. ॥१२
तं श्वेतमथ रक्तञ्च पीत कृष्ण तदा पुन ।
वर्णस्थ तत्र पश्येत न स्त्री न च न पुंसकम् ॥१३
तत्सर्वं सुचिर ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षर ॥१४

इस तरह चिन्ता मे मग्न रहते हुए उसके कुमार प्रादुर्भूत हुए जो कि दिव्य गन्ध वाले और सुधापेक्षी थे तथा दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहे थे ॥ ॥८॥ चतुर्मुख देव ने शब्द-स्पर्श और रूप से रहित अन्त वाली तथा गन्धहीन एव रस वर्जित श्रुति का उच्चारण करते हुए लाभ किया था ॥९। इसके पश्चात् ध्यान मे सयुक्त होकर भैरव तपश्चर्या मे स्थित होकर मन से सोचने लगे कि यह त्रितय कौन है ॥१०॥ उनके चिन्तन करते हुए शब्द स्पर्श रूप से रहित तथा रस और गन्ध से वर्जित वह अक्षर प्रादुर्भूत हुआ ॥११॥ इसके अनन्तर उसने लोको मे अपनी मूर्ति को देखा। तब देव का ध्यान करते हुए पुनः इस देव को ही देखा ॥१२॥ पहिले श्वेत फिर रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण मे स्थित उसको वहाँ देखा, न तो वहाँ कोई स्त्री थी और न कोई पुरुष ही था। ॥१३॥ उस सबका बहुत समय तक ध्यान करके और उस अक्षर का चिन्तन करते हुए उसके चिन्तन करने वाले के कण्ठ से अक्षर उठता है ॥१४॥

एकमात्रो महाघोष श्वेतवर्ण. सुनिर्मल ।
स ओंकारो भवेद्वेदः अक्षर वै महेश्वरः ॥१५
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षर वै स्वयम्भुव ।
प्रादुर्भूतन्तु रक्तन्तु स देवः प्रथम स्मृतः ॥१६
ऋग्वेदं प्रथमं तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ।
एता दृष्ट्वा ऋच ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ।
तदक्षरं महातेजा. किमेतदिति लोकद्दृक् ॥१७

तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वरः ।
द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥१८
ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम् ।
प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥१९
इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः ।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजुः स्मृतम् ॥२०
ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ।
द्विमात्रं चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षरं पुनरीश्वरः ॥२१

एकमात्र–महाघोष–श्वेत वर्ण वाला तथा सुनिर्मल वह ओङ्कार अक्षर को महादेव ने वेद समझा था ॥१५॥ उस अक्षर का चिन्तन करने वाले स्वयम्भू के रक्त प्रादुर्भूत हुआ और वह प्रथम देव कहा गया है ॥१६॥ उसके प्रथम ऋग्वेद को "अग्निमीले पुरोहितम्" इस ऋचा को ब्रह्माजी ने देखा और फिर चिन्तन मे लग गये, महान् तेज वाले तथा लोकों के कर्त्ता ने विचार किया कि यह अक्षर क्या है ? ॥१७॥ इस प्रकार से उसके चिन्तन करते हुए महेश्वर ने उसमे ईश्वर मे दो मात्रा वाला द्विमात्र अक्षर उत्पन्न किया ॥१८॥ इसके पश्चात् फिर द्विमात्र अक्षर का चिन्तन किया । फिर उसके छेदन मे रक्त वर्ण वाला यजुः प्रादुर्भूत हुआ ॥१९॥ जिसकी ऋचा यह है—"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुन." । ऋग्वेद तो एकमात्र है और यजु द्विमात्र कहा गया है ॥२०॥ इसके पश्चात् वेद को द्विमात्र देखकर फिर ईश्वर ब्रह्मा उस अक्षर को द्विमात्र चिन्तन करने मे सलग्न हो गये थे ॥२१॥

तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कारः सम्बभूव ह ।
ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओङ्कारं समचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम् ।
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ।
विन्ध्यित्वा च भगवांस्त्रिसन्ध्य यस्त्रिरक्षरम् ।
त्रियर्णं यत् त्रियक्षणमोङ्कारं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२४

ततश्चैव त्रिसयोगात् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ।
लक्ष्यालक्ष्यप्रहृश्य च सहित त्रिदिव त्रिकम् ॥२५
त्रिमात्र त्रिपद चैव त्रियोग चैव शाश्वतम् ।
तस्मात्तदक्षर ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभु ॥२६
तस्मात्तदक्षर सोऽथ ब्रह्मरूप स्वयम्भुव ।
चतुर्दशमुख देव पश्यते दीप्ततेजसम् ।
तमोङ्कार स कृत्वादौ विज्ञेय स स्वयम्भुव ॥२७
चतुर्मुखमुखात्तस्मादजायन्त चतुर्दश ।
नानावर्णा स्वरा दिव्यमाद्य तच्च तदक्षरम् ।
तस्मात् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवा स्मृता ॥२८॥

इस प्रकार से उनके चिन्तन करते हुए ओङ्कार समुत्पन्न हुआ । इसके पश्चात् उस अक्षर ओङ्कार का ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२२॥ इसके अनन्तर समुत्थित पीत वर्ण वाली ऋचा को देखा जिसका स्वरूप है—"अग्न आयाहि वीतये गृणा नो हव्य दातये" ॥२३॥ इसके पश्चात् उस महान तेज वाले ने समुपस्थित वेदों को देखकर भगवान् ने तीनो सन्ध्याओ मे जो त्रिरक्षर था उसका चिन्तन किया जोकि तीन वर्ण वाला त्रिधवण ब्रह्म की सज्ञा से युक्त ओङ्कार था ॥२४॥ इसके पश्चात् तीन के सयोग से तीन वर्ण वाला वह अक्षर लक्ष्य और अलक्ष्य से प्रहृश्य, हित के सहित, त्रिदिव, त्रिक, त्रिमात्र, त्रिपद त्रियोग और शाश्वत वह अक्षर था उसका प्रभु ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२५॥२६॥ इसमे वह स्वयम्भू के ब्रह्म रूप उस अक्षर को चतुर्दश मुख वाले देव को जोकि दीप्त तेज वाला था देखा । उसने उस ओङ्कार को आगे करके उसे स्वयम्भू का ही जानना चाहिए ॥२७॥ उस चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुख से चौदह उत्पन्न हुए और नाना वर्ण वाले स्वर तथा आद्य वह दिव्य अक्षर उत्पन्न हुए । इसप्रकार अकार प्रभव तिरेसठ वर्ण कहे गये हैं ॥२८॥

तत साधारणार्थाय वर्णानान्तु स्वयम्भुव ।
अकाररूप आदौ त स्थित स प्रथम स्वर ॥२९
ततस्तेभ्य स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखा ।
मनव सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वरा ॥३०

चतुर्द्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः ।
ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ॥३१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनुः स्वायम्भुवः स्मृतः ।
अकारस्तु स विज्ञेयः श्वेतवर्ण स्वयम्भुव. ॥३
द्वितियात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुखःस्मृतः ।
नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्णः पाण्डुर उच्यते ॥३३
तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषा वरः ।
यजुर्मय. स चादित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ॥३४
ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापयान् ।
तत क्षत्रं प्रवर्त्तन्ति तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः ॥३५

इसके अनन्तर वर्णों के साधारण अर्थ के लिये स्वयम्भू का अकार रूप आदि में स्थित हुआ जोकि प्रथम स्वर कहा जाता है ॥२६॥ इसके उपरान्त उन स्वरों से चौदह महामुख मनु उत्पन्न होते हैं जोकि मन्वन्तर में दिव्य स्वर हैं ॥३०॥ चतुर्दश मुख वाला जो अकार है वह ब्रह्मा की संज्ञा से युक्त है ब्रह्म-कल्प अर्थात् ब्रह्मा के ही सदृश, सर्व वर्ण और प्रजापति कहा गया है ॥३१॥ उसके प्रथम मुख से स्वायम्भुव मनु कहा गया है वह अकार तो स्वयम्भू का श्वेत वर्ण जानना चाहिए ॥३२॥ द्वितीय उसके मुख से आकार मुख कहा गया है वह नाम स्वारोचिष है और उसका वर्ण पाण्डुर कहा गया है ॥३३॥ उसके तीसरे मुख से यजु में श्रेष्ठ इकार है। वह आदित्य यजुर्मय है इसीसे वह यजुर्वेद कहा गया है ॥३४॥ ईकार प्रताप वाला रक्तवर्ण से युक्त मनु जानने के योग्य है। इससे क्षत्र प्रवृत्त होता है। इसीलिये क्षत्रिय रक्त होता है ॥३५॥

चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वर उच्यते ।
वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्र स मनुस्तामसः स्मृतः ॥३६
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ।
पीतको वर्णं तश्चैव मनुश्चापि चरिष्णव. ॥३७
ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कारः कपिलः स्मृतः ।
वरिष्ठश्च ततः षष्ठो विजयः स महातपाः ॥३८

सप्तमात्त् मुखात्तस्य ततो वैवस्वतो मनु.।
ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णन कृष्ण उच्यते ॥३६
अष्टामात्त् मुखात्तस्य ऋकार श्यामवर्णत.।
श्यामाक्षरसवर्णश्च तत सावर्णिरुच्यते ।।४०॥
मुखात् नवमात्तस्य लृकारो नवम स्मृत ।
धूम्रो वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ॥४१
दशमात्त् मुखात्तस्य लृकार प्रभुरुच्यते ।
समश्चैव सवर्णश्च वभौ सावर्णिको मनु ॥४२

उसके चतुर्थ मुख से उकार स्वर कहा जाता है। यह वर्ण से ताम्र कहा गया है और वह तामस मनु प्रसिद्ध हुआ है ॥३६॥ उसके पंचम मुख से ऊकार नाम वाला उत्पन्न होता है। यह वर्ण से पीत तथा चरिष्णु मनु कहा गया है ॥३७॥ इसके पश्चात् उसके छठे मुख से ओङ्कार हुआ जो कपिल कहा गया है। वह षड् नव मे चरिष्ठ विनय और महान् तप वाला है ॥३८॥ उसके सप्तम मुख से वैवस्वत मनु हुए जिसका स्वर ऋकार है और वर्ण कृष्ण कहा जाता है ॥३६॥ उसके अष्टम मुख से ऋकार हुआ वर्ण श्याम है। श्यामाक्षर सवर्ण होता है इसी लिये वह सावर्णि कहा जाता है ॥४०॥ नवम मुख से उसके लृकार हुआ जो नवम कहा गया है। यह वर्ण से धूम्र होता है और धूम्र मनु ही कहा जाता है ॥४१॥ उसके दशम मुख से लृकार होता है जोकि प्रभु कहा जाता है। यह सम और सवर्ण है इसी लिये सावर्णिक मनु इस नाम से कहा गया है ॥४२॥

मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते ।
पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥४३
द्वादशात्त् मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ।
पिशङ्गो भस्मवर्णाभ पिशङ्गो मनुरुच्यते ॥४४
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ।
पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तम ॥४५
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ।
कर्बुरो वर्णतश्चैव मनु सावर्णिरुच्यते ॥४६

इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः ।
विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ॥४७
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् श्रुता हि वै ।
तस्मात्तेषां सवर्णत्वाद न्वयस्तु प्रकीर्तित ॥४८
सुवर्णा सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः ।
तस्मात् प्रजाना लोकेऽस्मिन् सवर्णा सर्वसन्धय ॥४९
भविष्यन्ति यथाशैल वर्णाश्च न्यायतोऽर्थत ।
अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ॥५०

एकादश मुख मे उसके एकार हुआ जो मनु कहा जाता है। वर्ण से ह पिशङ्ग होता है इसी लिये पिशङ्ग इस नाम से कहा जाता है ॥४३॥ उसके ारहवें मुख से ऐकार नाम वाला हुआ। यह पिशङ्ग और भस्म के वर्ण की ाभा के समान आभा वाला था इसे पिशङ्ग मनु कहा जाता है ॥४४॥ उसके रहवें मुख से ओकार वर्ण उत्पन्न हुआ है। यह पञ्च वर्णों से युक्त उत्तम र्ण ओकार है ॥४५॥ उसके चौदहवें मुख से औकार वर्ण हुआ। यह वर्ण े कर्बुर और सावर्णी मनु कहा जाता है ॥४६॥ ये मनु स्वर और वर्ण कल्प े जानने चाहिए। ये स्वर और वर्ण से ही यथातत्व और हैं ॥४७॥ क्योंकि पर पर स्वर मे सवाङ्कित हुए हैं। इसीलिये उनके सवर्ण होने से अन्वय कहा या है ॥४८॥ ये सवर्ण और कल्प मे होने वाले सदृश उत्पन्न हुए हैं। इसलिये स लोक मे प्रजाओ के सर्व सन्धि वाले ये सवर्ण होते हैं ॥४९॥ यथाशैल न्याय े और अर्थ से ये होगे। अभ्यास से सन्धियाँ भी हैं इसी से इन्हें स्वर जानना चाहिए ॥५०॥

॥ प्रकर्ण २७—ऋषि वंश कीर्त्तन ॥

भृगो ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदु खयोः ।
शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तर विचारणौ॥१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

सा तु नारायण देव पतिमासाद्य शोभनम् ।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साही व्यजायत ॥२
तस्यास्तु मानसा पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः ।
ये वहन्ति विमानानि देवाना पुण्यकर्मणाम् ॥३
द्वे तु कन्ये स्मृते भार्य्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ॥४
पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशो सनातनौ ।
मनस्विन्या मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो वभूव ह ॥५
मुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायतः ।
पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकरा स्मृता. ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः । ६
पाण्डोश्च पुण्डरीकाया द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नो द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावभौ ।
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणा परस्परम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽनीते मरीचेः शृणुत प्रजा. ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भृगु से ख्याति ने सुख दुख के स्वामी समस्त प्राणधारियों को शुभ तथा अशुभ को ग्रहण करने वाले, मन्वन्तर के विचार करने वाले धाता और विधाता दो देव उत्पन्न किये थे ॥ १ ॥ उनकी ज्येष्ठ भगिनी लोकभाविनी श्री देवी थी । उसने नारायण देव को अपना पति प्राप्त किया जो कि परम शोभन थे । उस साध्वी देवी से नारायण के पुत्र बल और उत्साह उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ उसके अन्य दिव्यचारी मानस पुत्र थे जो कि पुण्य-कर्म करने वाले देवों के विमानों का वहन किया करते हैं ॥ ३ ॥ दो कन्याऐं हुई जो विधाता और धाता की भार्या हुई थी । उन दोनों के आयति और नियति नाम वाले दृढव्रत दो पुत्र हुए ॥ ४ ॥ पाडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उसका पुत्र वेदशिरा हुए जो मूर्द्धन्या से उत्पन्न हुआ था । वेदशिरा से पीवरी मे वंश चलाने वाले पुत्र कहे गये हैं । ये सब वेद के पारगामी ऋषिगण मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुए ॥ ६ ॥

पाण्डु से पुण्डरीका में द्युतिमान आत्मज हुआ। द्युतिमान और सृजमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों के पुत्र और पौत्र आपस में भार्गवों के हुए। स्वायम्भुव के अन्तर व्यतीत हो जाने पर अब मरीचि की प्रजा के विषय में श्रवण करिये ॥ ७ ॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम् ।
प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत ।
तुष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥८
पूर्णमासः सरस्वत्या द्वौ पुत्रावुदपादयत् ।
विरजश्चैव धर्मिष्ठं पर्वसश्चैव तावुभौ ॥९
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः ।
सुधामसुतवैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ॥१०
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान् ।
पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टः स महायशाः ॥ ११
पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ ।
यज्ञवामश्च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१२
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ॥१३
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।
तथैव भरताग्निश्च कीर्तिमन्तश्च तावुभौ ॥१४

मरीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास उत्पन्न होता है। और उसके जो कन्याएं हुई उन्हें समझ लो। तुष्टि, पुष्टि, त्विषा, अपचिति और शुभा ये कन्याएं हुईं ॥ ८ ॥ पूर्णमास ने सरस्वती में दो पुत्र उत्पन्न किये थे जिनका नाम विरज और धर्मिष्ठ पर्वस था। ये दोनों पुत्र थे ॥ ९ ॥ विरज का पुत्र बड़ा विद्वान सुधामा इस नाम से विश्रुत था। सुधामा का पुत्र वैराज था जो कि पूर्व दिशा का आश्रय लेकर स्थित रहता था ॥ १० ॥ लोकपाल, सुधर्मात्मा और प्रताप वाला गौरी पुत्र पर्वस

समस्त गणो मे प्रविष्ट हुआ और वह महान यश वाला था ॥ ११ ॥ पर्वस पर्वसा में दो पुत्र उत्पन्न किये। श्रीमान यशवाम और दूसरा सुत काश्यप था उन दोनो के गोत्र वर वे धर्म निश्चित पुत्र हुए ॥ १२ ॥ अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने दो पुत्र पैदा किए और चार परम पवित्र तथा लोक विश्रुत कन्या उत्पन्न की थी ॥ १३ ॥ जिन कन्याओं के नाम सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति या तथा दो पुत्र कीर्तिमान और भरताग्नि थे ॥ १४ ॥

अग्ने पुत्रन्तु पर्जन्य सहूती सुषुवे प्रभुम् ।
हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयन् ।
आभूतसम्प्लवस्थायी लोकपाल. स वै स्मृत. ॥१५
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ ।
वरिष्ठ धृतिमन्तश्चाप्युभावङ्गिरसा वरौ ॥१६
तयो पुत्राश्च पौत्राश्च येऽतीता वै सहस्रशः ।
अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रे यानकल्मषान् ॥१७
कन्याञ्चैव श्रुति नाम माता शङ्खपदस्य या ।
कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापते ॥१८
सत्यनेत्रश्च हव्यघ्न आपोमूर्ति. शनीवर ।
सोमश्च प चमस्तेपामासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
यामेऽतीते सहातीता प चात्रेया प्रकीर्तिता. ॥१९
तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा वै महात्मना ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे यामे शतशोऽथ सहस्रश ॥२०
प्रीत्या पुलस्त्यभार्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत् ।
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्य स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रय । २१

अग्नि से सहूती ने प्रभु पर्जन्य पुत्र का प्रसव किया था। पर्जन्य रीचि में हिरण्यरोमा उत्पन्न किया जो कि वह आभूत सम्प्लव तक स्थायी रहने वाला लोकपाल कहा गया है ॥ १५ ॥ धेनुका ने कीर्तिमान से दो कल्मष रहित पुत्र उत्पन्न किये। वरिष्ठ और धृतिमान ये दोनो आङ्गिरसों मे परम श्रेष्ठ

थे ॥ १६ ॥ उन दोनो के सहस्रो पुत्र तथा पौत्र थे जो अतीत हैं । अनसूया ने भी अकल्मष पाँच अत्रियो को जन्म दिया ॥ १७ ॥ और एक कन्या उत्पन्न की जिसका नाम श्रुति था और जो शङ्खपद की माता थी जो प्रजापति पुलह कर्दम की पत्नी थी ॥ १८ ॥ पाँचो के नाम—सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनिवर और पाँचवाँ सोम उनन से था जो कि स्वायम्भुव अन्तर मे थे । याम के व्यतीत होने पर ये पाँच आत्रेय जो कहे गये हैं सहातीत हो गये थे ॥ १६ ॥ उनके पुत्र और पौत्र महात्मा अत्रि ने स्वायम्भुवान्तर याम मे सैकडो तथा सहस्रो उत्पन्न किये थे ॥ २० ॥ पुलस्त्य की भार्या प्रीति मे उसका पुत्र दत्तात्रि हुआ था । पूर्व जन्म में स्वायम्भुव अन्तर मे वह अगस्त्य कहा गया है । मध्यम वेदबाहु और विनीत नाम वाला, ऐसे ये तीन हैं ॥ २१ ॥

स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता ।
पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी ह्यग्नेः स्मृता शुभा ॥२२
पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः ।
दत्तोले सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन् बहून् सुतान् ।
पौलस्त्या इति विख्याता स्मृता स्वायम्भुवऽन्तरे ॥२३
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः ।
ते चाग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥२४
कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः ।
ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीवरी ॥२५
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यः जनयत्सुतान् ।
पुत्रं शङ्खपदं चैव कन्यां काम्यां तथैव च ॥२६
स वै शङ्खपदः श्रीमान् लोकपालः प्रजापतिः ।
दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्वा प्रियव्रते ॥२७
काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान् ।
दशकन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्तितम् ॥२८

उनकी भगिनी छोटी सद्वती नाम वाली प्रसिद्ध है । जो पर्जन्य की शुभ्रा माता और अग्नि की शुभा पत्नी कही गयी है ॥ २२ ॥ पुलस्त्य ऋषि के भी

प्रीति पुत्र धीमान दत्तात्रि की पत्नी ने सुजङ्घादि बहुत-से पुत्रों का प्रसव किया था। वे सब स्वायम्भुवान्तर में पौलस्त्य इस नाम से विख्यात् तथा कहे गये थे ॥ २३ ॥ क्षमा ने प्रजापति पुलह के पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सब ही अग्निवर्चस थे जिनकी कीर्त्ति लोकों में प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ वे कर्दम, आब-रीष और सहिष्णु ये तीन हैं और धनक पीवान ऋषि तथा पीवरी शुभ कन्या थी ॥ २५ ॥ कर्दम की पत्नी श्रुति आत्रेयी ने पुत्रों को जन्म दिया। पुत्र शङ्खपद था तथा काम्या कन्या थी ॥ २६ ॥ वह श्रीमान शङ्खपद लोकों का पालक और प्रजापति था। दक्षिण दिशा में रत होकर काम्या को प्रियव्रत के लिये दे दिया था। काम्या ने प्रियव्रत से स्वायम्भुव के समान पुत्रों की प्राप्ति की थी। पुत्र दश थे और दो कन्या उनमें थी जिन्होंने यहाँ क्षत्र को सम्प्रवृत्त किया था ॥ २७–२८ ॥

पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुतः ।
यशोधारी विजज्ञे वै कामदेवः सुमध्यम. ॥२९
क्रतोः क्रतुसमः पुत्रो विजज्ञे सन्ततिः शुभा ।
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध रेतसः ।
षष्टयं तानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ॥३०
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ।
आभूतसम्प्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिणः ॥३१
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते ।
पर्वसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै ॥३२
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे ।
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ॥३३
जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया ।
अस्यां त्विमे यवीयासो वासिष्ठाः सप्त विश्रुताः ॥३४
रजः पुत्रोऽर्द्धबाहुश्च सवनश्चापनश्च यः ।
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ॥३५
रजसो माप्यजनयन्मार्कण्डेयो यशस्विनी ।

प्रतीच्यां दिशि राजन्य केतुमन्तं प्रजापतिम् ॥३६
गोत्राणि नामभिस्तेषा वासिष्ठाना महात्मनाम् ।
स्वायम्भुवेन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु श्रृणुत प्रजाः ॥३७
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्ध. प्रकीर्तित. ।
विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु श्रृणुत प्रजाः ॥३८

पुत्र धनक धीवान् था जो सहिष्णु के नाम से विश्रुत हुआ। यशोधारी ने सुमध्यम कामदेव को उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ ऋतु का क्रतु के तुल्य ही पुत्र हुआ और वह शुभा सन्तति थी । इनकी कोई भी भार्या नहीं थी और न इनका कोई पुत्र ही था क्योंकि वे सभी ऊर्द्ध्वरेता थे । ये सब साठ हजार थे जो वालखिल्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३० ॥ सूर्य को परिवृत करके ये अरुण के आगे जाया करते हैं और भूत सम्प्लव में लेकर ये सब पतङ्ग (सूर्य) के ही सहचरण करने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ भगिनी दो छोटी थी जिनका नाम पुण्या और आत्म सुमति था । वे दोनो पर्वस की स्नुषा थी जो कि पूर्णमास का पुत्र था ॥ ३२ ॥ ऊर्जा मे वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी ॥ ३३ ॥ वह द्युतिमान् की माता थी और पाण्डु की प्यारी रानी थी । इसमे वे यवीयान् सात वासिष्ठ प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३४ ॥ रज, पुत्र, अर्द्धबाहु, सवन, अधन सुतपा और शुक्ल ये सब सप्तर्षि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥ यशस्विनी मार्कण्डेयी रज से जनन किया । प्रतीची दिशा मे प्रजापति राजन्य केतुमान् को उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ उन महात्मा वासिष्ठो के नामो से गोत्र हैं । ये स्वायम्भुव अन्तर मे अतीत हो गये हैं । अब अग्नि की प्रजा का श्रवण करो ॥ ३ ॥ यह ऋषियो का सर्ग अनुबन्ध के सहित कह दिया गया है । अब विस्तार से तथा आनुपूर्वी के साथ अग्नि की प्रजा को सुनो ॥ ३८ ॥

॥ प्रकर्ण २८—अग्नि वंश वर्णन ॥

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ॥१
पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः ।

शुचिः शौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्राक्षयस्तुते ॥२
निर्म्मथ्य पवमानस्तु शुचि. शौरस्तु यः स्मृतः ।
पावका वैद्युताश्चैव तेषां स्थानानि यानि वै ॥३
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते ।
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ॥४
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितृणां कव्यवाहनः ।
सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नयः ॥५
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु ।
वक्ष्यामि नामतस्तेषां प्रविभाग पृथक् पृथक् ॥६
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुत. ।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ॥७

स्वायम्भुवान्तर में जो वह अग्नि था वह बहुत अभिमान वाला था। वह ब्रह्माजी का मन से उत्पन्न होने वाला मानस पुत्र था उससे स्वाहा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ यह पावक, पवमान और पावमान, इन नामों से कहा गया है। शुचि, शौर और विज्ञेय ये तीन स्वाहा के पुत्र थे ॥ २ ॥ पवमान निर्मथन करके शुचि और शौर जो कहा गया है। पावक और वैद्युत उनके ये स्थान हैं ॥ ३ ॥ पवमान का आत्मज कव्यवाहन कहा जाता है। पावक से सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह था ॥ ४ ॥ देवों का जो अग्नि है वह हव्यवाह होता है और पितृगण का जो अग्नि होता है वह कव्यवाहन कहा जाता है। सहरक्ष नामक जो अग्नि है वह असुरों का कहा गया है। इस प्रकार इन तीनों के पृथक्-पृथक् तीन ये अग्नि होते हैं ॥ ५ ॥ इनके जो पुत्र तथा पौत्र हैं वे उनचास हैं। उनके पृथक्-पृथक् प्रविभाग नाम से बतलाये जायेंगे ॥ ६ ॥ वैद्युत नामक जो अग्नि है वह लौकिक अग्नि है और प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मौदन अग्नि उसका पुत्र है जो भरत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ७ ॥

वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः ।
अमृतोऽथर्वणा पूर्वं मथितः पुष्करोदधौ ।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ् चाथर्वणः सुतः ॥८

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वणः सुतः ।
तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ् चाथर्वणः सुत. ॥६
अथ य. पवमानोऽग्निर्निर्मन्थ्यः कविभिः स्मृतः ।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तस्य पुत्रद्वयं स्मृतम् ॥१०
शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यः स्मृतो हव्यवाहनः ।
द्वितीयस्तु सुत. प्रोक्त. शुक्रोऽग्निर्यः प्रणीयते ॥११
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्ने सुतावुभौ ।
शंस्यास्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहनः ।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजः स्मृतः ॥१२
कावेरी कृष्णवेणीञ्च नर्मदा यमुनान्तथा ।
गोदावरी वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशा कौशिकीञ्चैव शतद्रु सरयूंस्तथा ।
सीता सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनी पावनी तथा ॥१४

उसका वैश्वानरगुप्त, महद काव्य और अपारण, अमृत ये नाम हैं पहिले अथर्वणो ने पुष्करोदधि मे मथन किया था । यह अथर्वा लौकिक अग्नि है जो दध्यङ् चाथर्वण का पुत्र है ॥ ८ ॥ अथर्वा भृगु को समझना चाहिए । अङ्गिरा अथर्वण का पुत्र है । उससे वह लौकिक अग्नि दध्यङ् चाथर्वण पुत्र है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर जो पवमान अग्नि है वह कवियों के द्वारा निर्मन्थ्य कहा गया है । वह गार्हपत्य अग्नि जानना चाहिए । उसके दो पुत्र कहे गये हैं ॥१०॥

आत्मान व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ॥१५
धिष्ण्यो दिव्यभिचारिण्यस्तामूत्पन्नास्तु धिष्णयः ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्त्तिताः ॥१६
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः ।
तान् शृणुध्व समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥१७
ऋतुः प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विधीयन्ते यथास्थान सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥१८
अनिर्देश्यान्यवाच्यानामग्नीना शृणुत क्रमम् ।
सम्राडग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ॥१९
सम्राडग्निः स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजा. ।
अधस्तात्पर्षदग्न्यस्तु द्वितीयः सोऽत्र दृश्यते ॥२०
प्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२१

इन उपर्युक्त सोलह नदियों में अपने आपको सोलह में पृथक्-पृथक् विभाग करके उनमे अपने आपको धर दिया और वह धिष्णीयु हो गया ॥१५। उनमें धिष्ण्य दिव्यभिचारिण्य जो उत्पन्न हुए वे धिष्णय हुए। क्योंकि वे धिष्णीपुत्रों में उत्पन्न हुए थे इससे वे धिष्णय कहे गये हैं ॥ १६ ॥ इतने ये नदी पुत्र हैं जो धिष्णीयु में ही उत्पन्न हुए थे। उनमे विहार करने के योग्य जो उपस्थेय अग्नि हैं अब उनको संक्षेप से कहे जाने वालों को यथा तथा श्रवण करो ॥१७॥ ऋतु प्रवाहण, अग्नीध्र और पहिले दूसरे धिष्ण्य सौत्य दिवस में सवन के क्रम से यथा स्थान किये जाते हैं ॥ १८ ॥ अनिर्देश्य अन्य वाच्य अग्नियों के क्रम को सुनो। द्वितीयोत्तर वेदिक जो कृशानु होता है वह सम्राट् अग्नि है ॥ १९ ॥ आठ सम्राट् अग्नि कहे गये हैं जिनका कि द्विज उपस्थान किया करते हैं। नीचे अन्य पर्षद् तो यहाँ पर वह द्वितीय दिखलाई देता है ॥ २० ॥ प्रतद्वोचे नभो नाम वाला वह चार विभावित होता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २१ ॥

हव्यसूर्य्याद्यसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते ।
विश्वस्याथ समुद्रोग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्यते ॥२२
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्य्यां स कीर्त्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२३
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः ।
अनुद्देश्योप्यहिर्बुध्न्यः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ॥२४
शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ।
ततो विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥२५
क्रतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विह्रियन्ते यथास्थानं सौत्योह्नि सवनक्रमात् ॥२६
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः ।
शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ॥२७
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।
अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ॥२८

हव्य सूर्यादि से असंसृष्ट यह शामित्र कर्म में प्रकट होता है। विश्वस्याथ समुद्र अग्नि वह ब्रह्म स्थान में कीर्त्तित किया जाता है ॥ २२ ॥ ऋतु धामा और सुज्योति अग्नि जो होता है वह औदुम्बरी में कहा जाता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २३ ॥ अजैक पादुपस्थेय शालामुखीयक वह अनुद्देश्य भी अहिर्बुध्न्य वह अग्नि गृहपति कहा गया है ॥ २४ ॥ ये सब शस्य के ही पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने के योग्य कहे गये हैं। अब इसके अनन्तर विहरणीय आठ उसके पुत्र हैं उन्हें बतलाते हैं ॥ २५ ॥ ऋतु, प्रवहण, अग्नीध्र और वहाँ पर स्थित दूसरे धिष्णि जो यथा स्थान विहरणीय होते हैं और सौत्य दिवस में सवन के क्रम से हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् पौत्रेय जो हव्यवाहन कहा गया है, शान्ति और प्रचेता अग्नि द्वितीय सत्य कहा जाता है ॥ २७ ॥ तथा विश्वदेव अग्नि जो है वह तो ब्रह्म स्थान में कहा जाता है। अवक्षु और अच्छावाक तो भुवः स्थान में विभावित (प्रकट) होता है ॥ २८ ॥

उशीराग्निः सवीर्यस्तु नैष्ठीयः संविभाव्यते ।
अष्टमस्तु व्यरत्तिस्तु मार्जालीयः प्रकीर्तितः ॥२९
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनान्येन चैव हि ।
तयोर्यः पावको नाम स चापां गर्भ उच्यते ॥३०
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयः सम्यक् प्राप्याप्सु हूयते ।
हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणां स्थितः ॥३१
मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निः सुतः स्मृतः ।
परस्परोच्छ्रितः सोऽग्निर्भूतानां ह विभुर्महान् ॥३२
पुत्रः सोऽग्नेर्मन्युमतो घोरः संवर्त्तकः स्मृतः ।
पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः ॥३३
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते ।
सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ॥३४
क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ।
इत्येते पावकस्याग्नेः पुत्रा ह्येवं प्रकीर्तिताः ॥३५

सवीर्य उशीराग्नि तो नैष्ठीय सम्भावित होता है । जो आठवाँ व्यरत्ति है वह तो मार्जालीय कहा गया है ॥ २९ ॥ जो धिष्ण्य विहरणीय अन्य सौम्य के द्वारा होते हैं उनमें एक पावक नाम वाला है वह अपां गर्भ कहा जाया करता है ॥ ३० ॥ वह अवभृथ अग्नि जानना चाहिए जो भली-भाँति प्राप्य जलों में हूयमान किया जाता है । उसका पुत्र हृच्छय अग्नि होता है जो मनुष्यों के जठर में स्थित होता है ॥ ३१ ॥ जठर की रहने वाली जाठर अग्नि का विद्वान् मन्युमान् अग्नि सुत कहा गया है । परस्पर में उच्छ्रित वह अग्नि भूतों का महान् विभु होता है ॥ ३२ ॥ वह मन्युमान् अग्नि का पुत्र घोर सम्वर्त्तक कहा गया है । वह जल का पान करता हुआ बडवामुख समुद्र में निवास किया करता है ॥ ३३ ॥ समुद्र में निवास करने वाले का पुत्र सहरक्ष विभावित होता है । सहरक्ष का पुत्र क्षाम होता है वह मनुष्यों के घरों को जला दिया करता है ॥ ३४ ॥ क्रव्याद अग्नि उसका पुत्र है जो मरे हुए मनुष्यों के शव का भोजन किया करता है । इतने ये पावक अग्नि के पुत्र हैं जो कि इस प्रकार से कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

ततः शुचेस्तु यैः सोरेर्गन्धर्वैरसुरावृतः ।
मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिध्यते ॥३६
आयुर्नामाथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्र. स शावान्नामतः सुतः ॥३७
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः ।
पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः ॥३८
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान् स्मृतः ।
प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुंक्ते हविः सदा ॥३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।
अनीकवान् वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ।
सुरभिर्वसुरत्नादो प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश ।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥४१
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिन. ॥४२

इसके अनन्तर शुचि सोरि का जिन असुरावृत गन्धर्वों के द्वारा अरणी मे मथन किया हुआ अग्नि है वह अग्नि समिद्ध किया जाता है ॥ ३६ ॥ वह भगवान् आयु नाम वाला होता है जो पशु मे प्रणीत किया जाता है । आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् पुत्र है वह शावान् नाम वाला पुत्र कहा गया है ॥ ३७ ॥ पाक यज्ञों मे जो अभिमानी अग्नि है वह सवन कहा गया है । सवन अग्नि का पुत्र वह महान् यश वाला अद्भुत होता है ॥ ३८ ॥ अद्भुत अग्नि का भी पुत्र विविचि होता है जो कि महान् कहा गया है । वह भीमो के प्रायश्चित्त में सर्वदा हवन किये हुए हवि को खाया करता है ॥ ३९ ॥ विविचि अग्नि का पुत्र अर्क है उसके पुत्र ये होते हैं जिनके नाम अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पितृ कृत् और सुरभि हैं जो रुक्मवान् वसुरत्नादि में प्रविष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ ये शुचि नामक अग्नि की प्रजा हैं और चौदह वह्नि हैं । ये वह्नि कहे गये हैं जो कि अध्वरो मे प्रणीत होते हैं ॥ ४१ ॥ सुरोत्तम यामो के साथ

आदि सर्ग में अतीत हुए हैं जो स्वायम्भुव अन्तर मे पहिले जो अग्नि थे व अभिमानी थे ॥ ४२ ॥

एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ।
स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहना. ॥४३
काम्यनैमित्तिकाजस्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः ।
पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लैर्यामैः सुतैः सह ।
देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४४
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ।
तैरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ।
सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथा स्तथा ।
प्रजाना पतयः सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृताः ॥४६
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनं. ॥४७
वर्तन्ते वर्त्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नयः ।
अनागतै सुरै. सार्द्धं वर्त्स्यन्तेऽनागताग्नय. ॥४८
इत्येष विनयोऽग्नीना मया प्रोक्तो यथातथम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पितृणा वक्ष्यते तत ॥४९

ये सब यहाँ पर चेतन और अचेतनो मे विहरणीय अग्नि हैं। ससार मे स्थानाभिमानी हव्यवाहन पहिले थे ॥ ४३ ॥ ये सब कामना वाले काम्य-कर्म तथा नैमित्तिक एव अजस्र कर्मों मे अवस्थित रहा करते हैं। पहिले अतीत मन्वन्तर मे शुक्ल याम पुत्रो के साथ तथा मनु के जो कि प्रथम था उसके अन्तर मे पुण्यशील महात्मा और देवो के साथ था ॥ ४४ ॥ ये सब मैंने स्थानियों के स्थान बतला दिये हैं उनके द्वारा ही अतीत और अनागतो मे भी प्रसङ्ख्यात हैं ॥ ४५ ॥ समस्त मन्वन्तरो मे जातवेदो के लक्षण कहे गये हैं। ये सब तपस्वी और सभी अवभृथ थे । ये सब प्रजाओ के पति और ज्योतिष्मान् कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ स्वारोचिष आदि और सावर्ण्य अन्त वाले सातो मन्वन्तरो मे सब

ात उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ मधु आदि ये छै ऋतुऐं हैं उनको पितृ कहते है। "ऋतु पितर और देव हैं" इस प्रकार वाली यह वैदिकी श्रुति है ॥ ४ ॥ समस्त व्यतीत हुए तथा अनागत मन्वन्तरो मे भी शुभ स्वायम्भुव मन्वन्तर में ये मब पहिले उत्पन्न हुये हैं ॥ ५ ॥ ये नाम से अग्निष्वात्त तथा वर्हिषद कहे गये हैं। उनके अयज्वा गृहमेधी थे। जो अनाहित अग्नि थे वे अग्निष्वात्त कहे गये हैं ॥ ६ ॥ उनमे जो यज्वा थे वे सोमपीथी पितर थे। वे अग्निहोत्री पितर वर्हिषद कहे गये हैं। ऋतु पितर और देव हैं, यह इस शास्त्र मे निश्चित मत होता है ॥ ७ ॥

मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ ।
नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेताव् दाहृतौ ॥८
इषश्चैव तथोर्जश्च सुधावन्ताव् दाहृतौ ।
सहश्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ ।
तपश्चैव तपस्यश्च घोरावेनौ तु शैशिरौ ॥९
कालावस्थास्तु पट् तेपाम्मासाख्या वै व्यवस्थिता. ।
त इमे ऋतव प्रोक्ताश्चेतनाचेतनास्तु वै ॥१०
ऋतवो ब्रह्मण: पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिन: ।
मासार्द्धमासस्थानेपु स्थान च ऋतवोर्त्तवा: ॥११
स्थानाना व्यतिरेकेण ज्ञेया: स्थानाभिमानिन: ।
अहोरात्रं च मासाश्च ऋतवश्चायनानि च ॥१२
संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिन: ।
निमेपाश्च कला: काष्ठा मुहूर्त्ता वै दिनक्षपा: ॥१३
एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिता: ।
तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥१४

मधु और माधव रस जानने के योग्य हैं। शुचि और शुक्र शुष्मी हैं। न और नमस्य ये दोनो जीव उदाहृत हुए हैं ॥ ८ ॥ इष और ऊर्ज ये दोनों ावान् कहे गये हैं। सह और सहस्य ये दोनो मन्युमान् कहे गये हैं। तप और स्य ये दोनो घोर शैशिर कहे गये हैं ॥ ९ ॥ उनके काल की अवस्था छै ती हैं जो कि मासों के नाम से व्यवस्थित हैं। वे ही ये ऋतु,चेतन और अचे-

दन कही गई हैं ॥ १० ॥ ऋतुऐं अभिमानी ब्रह्मा के पुत्र हैं ऐसा जानना चाहिए। मासार्द्धमास स्थानों में ऋतुओं का स्थान है ॥ ११ ॥ स्थानाभिमानी के स्थानों के व्यतिरेक से ही अहोरात्र, मास, ऋतु और आयन होते हैं ॥१२॥ कालावस्थाभिमानी के सम्वत्सर स्थान होते हैं। इसी प्रकार से निमेष कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन और क्षपा स्थान होते है ॥ १३ ॥ इनमें जो स्थानी हैं वे सब कालावस्थाओं में अवस्थित हैं। तन्मय होने से वे तदात्मा होते हैं उनको अब कहता हूँ सो भलीभाँति समझ लो ॥ १४ ॥

पर्वाण्यास्तिथयः सन्ध्या पक्षा मासार्द्धसंज्ञिता ।
द्वावर्द्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते ॥१५
ऋतुत्रय चायन द्वे अयने दक्षिणोत्तरे ।
संवत्सर सुमेरुस्तु स्थानान्येतानि स्थानिनाम् ॥१६
ऋतवः सुमेरुपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट् ।
ऋतुपुत्राः स्मृता पञ्च प्रजास्त्वार्त्तवलक्षणाः ॥१७
यस्माच्चार्त्तवेयास्तु जायन्ते स्थाणुजङ्गमाः ।
आर्त्तवाः पितरश्चैव ऋतवश्च पितामहाः ॥१८
सुमेरुात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः ।
तस्मात् स्मृत प्रजाना वै सुमेरु प्रपितामह ॥१९
स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्तिताः ।
तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मनाश्च ते स्मृताः ॥२०
प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मत ।
संवत्सर स्मृतो ह्यग्नि ऋतमित्युच्यते द्विजै. ॥२१

पर्वस्थ तिथियाँ होती हैं। सन्ध्या पक्ष मास का अर्धभाग है, इस संज्ञा वाला होता है। दो अर्धमास ही एक मास होता है अर्थात् दो पक्षों का एक मास होता है। और इसी प्रकार से दो मासों का एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और वे दक्षिण तथा उत्तर इन नाम से दो अयन होते हैं। दो अयनों का एक सम्वत्सर होता है। स्थानियों के ये ही स्थान होते हैं ॥ १५–१६ ॥ ऋतु सुमेरु के पुत्र जानने चाहिए वे आठ प्रकार हैं। ऋतुओं के पुत्र आर्त्तव लक्षण वाले पाँच होते हैं ॥ १७

आर्तवेय स्थाणु जङ्गम उत्पन्न होते हैं। आर्तव पितर हैं और ऋतु पितामह होते हैं ॥ १८ ॥ ये सब सुमेरु से प्रसूत होते हैं और प्रजाति करते हैं। इसी लिये सुमेरु जो होता है वह प्रजाओं का प्रपितामह कहा गया है ॥ १९ ॥ ये स्थानों मे स्थानी और स्थाना मा कहे गये हैं। तन्मय होने से उसी नाम के आख्यान और सदात्मा कहे गये हैं ॥ २० ॥ जो इनका प्रजापति कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। सम्वत्सर अग्नि कहा गया है और द्विजो के द्वारा ऋत भी वह कहा जाता है ॥ २१ ॥

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः ।
मासाः षड्तवो ज्ञेयास्तेषां पञ्चार्तवाः सुताः ॥२२
द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव पक्षिससर्पतामपि ।
स्थावराणां च पञ्चानां पुष्पं कालार्तवं स्मृतम् ॥२३
ऋतुत्वमार्तवत्वं च पितृत्वं च प्रकीर्तितम् ।
इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्तवाश्च ये ॥२४
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे ।
तस्मादेतेऽपि पितर आर्तवा इति नः श्रुतम् ॥२५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिताः कालाभिमानिनः ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसंयमात् ॥२६
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः ।
जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥२७
मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम् ।
पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददुः शुभे ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे ॥२८

ऋत इस नाम से ही उससे ऋत उत्पन्न हुए हैं। मास छैं ऋतुऐं समझनी चाहिए और उनके पाँच आर्त्तव पुत्र होते हैं ॥ २२ ॥ द्विपद, चतुष्पद पक्षी, सर्पण करने वाले और स्थावर इन पाँचो को पुष्प कालार्त्तव कहा गया है ॥ २३ ॥ ऋतुत्व, आर्तवत्व और पितृत्व कहा गया है। ये सब ऋतु और जो आर्त्तव हैं वे सब पितर जानने के योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ उनसे ही समस्त

प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये आर्त्तव भी पितर हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २५ ॥ समस्त मन्वन्तरो मे ये कालाभिमानी तथा स्थानाभिमानी प्रसयम से यहाँ रहा करते हैं ॥ २६ ॥ अग्निष्वात्त और वर्हिषद ऐसे ये दो प्रकार के पितर कहे गये हैं। इन पितरो से लोक प्रसिद्ध दो कन्याऐ उत्पन्न हुई थी ॥ २७ ॥ जिनका नाम मेना और धारिणी है। जिन दोनो के द्वारा ही यह समस्त विश्व धारण किया हुआ होता है। पितरों ने वे अपनी दोनो कन्याओ को धर्म के लिए दे दिया था। वे शुभ दोनो ही ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थी ॥ २८ ।

अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषा मेना तु मानसी ।
धारणी मानसी स्चैव कन्या वर्हिषदा स्मृता ॥२६
मेरोस्तु धारणी नाम पत्न्यर्थ व्यसृजन् शुभाम् ।
पितरस्ते वर्हिषद स्मृता ये सोमपीथिन ॥३०
अग्निष्वात्तास्तु ता मेना पत्नी हिमवते ददु ।
स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥३१
यस्ते हिमवत पत्नी मैनाक सान्वसूयत ।
गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधे ।
मैनाकस्यानुज क्रौञ्च क्रौञ्चद्वीपो यत स्मृत ॥३२
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ।
मन्दर सुषुवे पुत्र तिस्र कन्याश्च विश्रुता ॥३३
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायति पुनः ।
धातुश्चैवायति पत्नी विधातुर्नियति स्मृता ॥३४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वे कीर्तिता प्रजा ।
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥३५
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनवर्हिष ।
सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनवर्हिष ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगा ॥३६

जो अग्निष्वात्त कहे गये हैं उनकी मेना मानसी है और धारणी तथा

मानसी कन्या वर्हिपदों की है ॥ २९ ॥ मेरु के लिये धारणी नाम वाली शुभ कन्या को पत्नी बनाने के लिये देदी । वे वर्हिपद पिता जो थे वे सोमपीथि कहे गये हैं ॥ ३० ॥ अग्निष्वात्तो ने उस मेना कन्या को हिमवान् को पत्नी बनाने के लिये दे दिया था । वे दौहित्र कहलाये गये हैं अब उसके दौहित्रों को जान लो ॥ ३१ ॥ हिमाचल की पत्नी मेना ने मैनाक का प्रसव किया । सरिताओं मे श्रेष्ठ जो गङ्गा थी वह लवणोदधि की पत्नी थी । मैनाक का छोटा भाई क्रौञ्च था जिससे क्रौञ्चद्वीप कहा गया है ॥ ३२ ॥ मेरु पर्वत की पत्नी धारणी थी जिसने दिव्य ओपधियो से युक्त मन्दर गिरि को पुत्र रूप मे उत्पन्न किया और तीन प्रसिद्ध कन्यायें भी उत्पन्न की थी ॥ ३ ॥ जिन तीनो कन्याओं के वेला, नियति और तीसरी आयति य नाम थे । आयति धाता की पत्नी हुई, विधाता की पत्नी नियति कही गई है ॥ ३४ ॥ स्वायम्भुव अन्तर मे पूर्व मे उन दोनो की सन्तति कहदी गई है । वेला ने सागर से एक अनिन्दित अर्थात् बहुत अच्छी क या का प्रसव किया था । सार्वाणि केद्वारा प्र चीन वर्हिष को सामुद्री पत्नी हुई । वह सवर्णा थी इसलिय सामुद्री थी । दश प्राचीन वर्हिष थे । वे सब धनुर्वेद के पारङ्गत प्रचेतस नाम वाले थे ॥ ३५--६ ॥

॥ देववंश वर्णन ॥

त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
देवा यामा इति ख्याता पूर्वं ये यज्ञसूनवः ॥१
अजिता ब्रह्मण पुत्रा जिता जिदजिताश्च ये ।
पुत्रा स्वायम्भुवस्यैते शुकनाम्ना तु मानसा ॥२
तृप्तिमन्तो गणा ह्येते देवानान्तु त्रय स्मृता ।
छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिशत्समवें स्वायम्भुवस्य ह ॥३
यदुर्ययातिर्द्वौ देवो दीधय स्रवसो मति
विभासश्च क्रतुश्चैव प्रजातिर्विशतो द्युति
वायसो मङ्गलश्चैव यामा द्वादश कीर्तित
अभिमन्युरुग्रदृष्टि सपयोऽथ शुचिश्रवा ।
केवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ॥

तुरीयोनिर्हंपुश्च व युक्तो ग्रावाजिनस्तु ते ।
यमिनो विश्वदेवाद्यं यविष्ठोऽमृतवानपि ॥६
अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽय दिदेहक ।
श्रुतिश्रृणो वृहच्छुक्रो देवा द्वादश कीर्तिताः ॥७

त्रेतायुग मुख मे पहिले स्वायम्भुव अन्तर में जो देव थे वे यामा इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं और जो पहिले यज्ञ सूनु थे ॥ १ ॥ ब्रह्मा के अजित पुत्र थे और जित और जिरजिता जो पुत्र थे वे स्वायम्भुव के थे और शुक्र नाम से मानस पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ ये तृसिमन्त देवो के तीन गण कहे गये हैं और छान्दोग तो सख्या मे तेतीस सब हैं जो स्वायम्भुव के होते हैं ॥ ३ ॥ यदु और ययाति दो देवता, दीधय, स्रवस, मति, विभास क्रतु प्रजापति, विशव, द्युति, वायव, मङ्गल ये बारह याम कहे गये हैं । अभिमन्यु उग्र दृष्टि, समय, शुचि-श्रवा, केवल, विश्वरूप सुपक्ष, मधुप तुरीय, निर्हंपु युक्त और ग्रावाजिन ये यामिन हैं । विश्वदेवाद्य यविष्ठ, अमृतवान् अजिर विभु विभाव, मृलिक, दिदेहक, श्रुति भृण, वृहच्छुक्र ये द्वावश देव कीर्तित हुए हैं ॥ ४-५-६-७ ॥

आसन् स्वायम्भुवस्यैते अन्तरे सोमपायिन ।
त्विपिमन्तो गणा ह्येते वीर्यवन्तो महाबला ॥८
तेपामिन्द्र सदा ह्यासीद्विश्वभुक् प्रथमो विभु ।
असुरा ये तदा तेपामासन् दायादबान्धवा ॥६
सुपर्णयक्षगन्धर्वा पिशाचोरगराक्षसा ।
अष्टौ ते पितृभि सार्द्धं नासत्या देवयोनय ॥१०
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीता प्रजास्त्वासा सहस्रश ।
प्रभावरूपसम्पन्ना आयुषा च बलेन च ॥११
विस्तरादिह नोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह ।
स्वायम्भुवो निसर्गश्च विज्ञय साम्प्रत मनु ॥१२
अतीते वर्त्तमानेन दृष्टो वैवस्वतेन स ।
प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभि पितृभि सह ॥१३
तेपा सप्तर्षय पूर्वमासन्ये तान् निवोधत ।

भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१४
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अग्नीध्रश्चातिवाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥१५
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ॥१६

ये सब स्वायम्भुव अन्तर में सोमपायी थे । ये त्विषिमान्, महान् बल वाले और वीर्यशील गण थे ॥ ८ ॥ उनमें इन्द्र सदा विश्व का भोग करने वाला प्रथम विभु था । जो असुर थे वे उनके दाय प्राप्त करने वाले बान्धव थे ॥ ९ ॥ सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच उरग, राक्षस ये आठ पितृगण के साथ मानस्य देवयोनि है ॥ १० ॥ स्वायम्भुव अन्तर में इनकी सहस्रों प्रजा व्यतीत हो गई जो कि प्रभाव, रूप आयु और बल से सम्पन्न थे ॥ ११ ॥ यहाँ उनका पूर्ण विस्तार से वर्णन नहीं किया जाता है । यहाँ उनका प्रसङ्ग न होवे । स्वायम्भुव निसर्ग अब मनु जानना चाहिए ॥ १२ ॥ अतीत में वर्त्तमान वैवस्वत ने उसे देखा था जो कि प्रजाओं के, देवताओं के, ऋषियों के और पितरों के साथ में था ॥ १३ ॥ उनमें महर्षि पहले जो थे अब उनके विषय में समझ लो भृगु अङ्गिरा, मरीचि पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ये सात स्वायम्भुव अन्तर में थे । अग्नीध्र अतिबाहु, मेधा मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र ये स्वायम्भुव मनु के महान् ओज वाले दश पुत्र थे ॥ १४-१५-१६ ।

वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे ।
सासुरन्तरसगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
सपिशाचमनुष्यञ्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम् ॥१७
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तु वर्षशतैरपि ।
बहुत्वान्नामधेयाना सङ्ख्या तेषा कुले तथा ॥१८
या वै प्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कालेन बहुनातीता अयनाब्दयुगकर्मः ॥१९
क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः ।

वस्य योनि किमादिश्च किन्तत्त्व स किमात्मज ॥२०
किमस्य चक्षु का मूर्ति के चास्यावयव स्मृता ।
किंनामधेय कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥२१

प्रथम मन्वन्तर मे वायु के द्वारा कहे हुए महान् सत्त्व वाले राजा थे । वह सुरो के सहित गन्धर्वो से युक्त, यक्ष, उरग और राक्षसो के सहित, पिशाचो से युक्त तथा मनुष्यो के सहित और सुपर्ण तथा अप्सराओ के गण से युक्त था ॥ १७ ॥ बहुत, से नामो की सख्या उनके कुल मे थी क्योकि बहुत सारे नाम थे उन सब का आनुपूर्वी के साथ वर्णन करने का कार्य सौ वर्ष मे भी पूर्ण नही किया जा सकता है ॥ १८ ॥ जो व्रज कुल के नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर मे थे वे अयन वर्ष और युग के क्रम से बहुत अधिक काल मे अतीत हो गये हैं ॥१९॥ ऋषियों ने कहा—यह भगवान् काल जो कि समस्त प्राणियो के अपहरण करने वाला है कौन है ? किसका यह योनि है ? इसके आदि मे क्या था ? इस का वास्तविक तत्त्व क्या है ? और यह किस का आत्मज है ? ॥ २० ॥ इसके नेत्र क्या हैं ? इसकी मूर्त्ति कैसी है ? और इसके अन्य शरीरावयव कैसे कहे गये हैं ? इसका नाम क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? हम सब यह बात आप से पूछ रहे हैं, कृपा कर हम आप यह सब बताइये ॥ २१ ॥

श्रूयता कालसद्भाव श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
सूर्ययोनिर्निमेषादि सङ्ख्याचक्षु स उच्यते ॥२२
मूर्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च स ।
सवत्सरशत त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापति ॥२३
पञ्चाना प्रविभक्ताना कालावस्था निबोधत ।
दिनार्द्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ॥२४
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ॥२५
वत्सर पञ्चमस्तत्र काल स युगसज्ञित ।
तपास्तु तत्त्व वक्ष्यामि कीर्त्यमान निबोधत ॥२६

(श्रीसूतजी ने कहा— अब आप सब लोग इस काल का सद्भाव मुझसे श्रवण करें और उसको भुनकर हृदय में अवधारण भी करें। इसकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं। इसकी संख्या चक्षु निमेष आदि होते हैं जो कि कहा जाता है ॥२२॥ अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्र ही इसकी मूर्ति है और निमेष ही इसकी मूर्ति के अवयव होते हैं। कलात्मक सो सम्वत्सर ही इसका नाम होता है। वर्त्तमान-भूत और भविष्य के स्वरूप वाला वह प्रजापति है ॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से विभज्य पाँचों को ही काल की अवस्था जान लो जोकि पाँच विभाग दिन-अर्धमास (पक्ष) ऋतु-मास और अयन ये होते हैं इन्हीं पाँचों का विभाग है और उसी से काल की अवस्था होती है ॥२४॥ सम्वत्सर प्रथम होता है—दूसरा परिवत्सर तृतीय इद्वत्सर, और चौथा अनुवत्सर तथा पञ्चम वत्सर होता है। उनका जो काल होता है वही युग इस संज्ञा से युक्त होता है। अब उनका मैं तत्त्व बतलाता हूँ आप लोग उसे भली भाँति समझ लेवें ॥२५॥२६॥)

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः।
आदित्ये यस्त्वसौ सारः कालग्निः परिवत्सरः ॥२७
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः।
स इडावत्सरः सोमः पुराणे निश्चलो मतः ॥२८
यश्चायं तपते लोकास्तनुभिः सप्तसप्तभिः।
आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥२९
अहङ्कारात् रुदन् रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणश्च यः।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विज्ञेयो नीललोहितः।
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३०
अङ्गप्रत्यङ्गसयोगान् कालात्मा प्रपितामहः।
ऋक्साम यजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥३१
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः।
प्रोक्तः सवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥३२
यस्मात् कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि।

ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुः कर्मणां तथा ।
योजितः प्रविभागाना दिवसानाञ्च भास्करः ॥३३

जो ऋतु अग्नि कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। यह आदित्य का सार है, कालाग्नि परिवत्सर होता है ॥२७॥ शुक्ल कृष्ण गति है और जलों का सारमय स्वग है। वह इडावत्सर सोम है जो कि पुराण में निश्चय किया गया है ॥२८॥ जो यह सत-सप्त तनुओं से लोगों को तपता है वह लोक का शाश्वत्ता वायु है और वत्सर होता है ॥२९॥ अहङ्कार से रुदन करता हुआ रुद्र ब्रह्मा से सद्भूत हुआ। वह रुद्र उनका नीललोहित वत्सर उत्पन्न हुआ। अब मैं उनका कहा गया तत्त्व बतलाता हूँ जिसे आप समझ लेवें ॥३०॥ अङ्गों और प्रत्यङ्गों के संयोग से कालात्मा अर्थात् काल के स्वरूप वाला प्रपितामह है जो कि ऋक् साम और यजु का जन्मस्थान है और पाँचों का पति ईश्वर है ॥३१॥ वह अग्नि यजु और सोम है वह प्रजापति है। जो सम्वत्सर कहा गया है और मनीषियों के द्वारा जो अग्नि सूर्य कहा गया है ॥३२॥ क्योंकि काल के विभागों का, मास, ऋतु और अयन का तथा ग्रह, नक्षत्र शीत, उष्ण वर्षा, आयु कर्मों का और प्रविभाग दिवसों का भास्कर ही योजित है ॥३३॥

वैकारिकः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ।
एकैनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः ॥३४
आदित्य सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः ।
प्रभवश्चात्यय यश्चैव भूताना तेन भास्करः ॥३५
साराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः ।
सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामह ॥३६
आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः ।
अवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः ॥३७
तिथीनां पर्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि ।
योनिर्निशा करो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापतिः ॥३८
तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मकः ।

प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ॥३९
कर्मभि प्राणिना लोके सर्वचेष्टाप्रवर्त्तक ।
प्राणापानसमानाना वायूनाञ्च प्रवर्तक ॥४०

वैकारिक–प्रसघ अ त्मा वाला, ब्रह्मा पुत्र प्रजापति हैं । एक दिन, मास और ऋतु पितामह वह ॥३४॥ आदित्य सविता भानु, जीवन और ब्रह्मा के द्वारा सत्कार प्राप्त होने वाला, प्रभव और प्राणियों का अत्यय वह होता इसीसे भास्कर कहा जाता हैं । ॥३५॥ ताराभिमानी तीसरा परिवत्सर जानना चाहिए । सोम समस्त औषधियों का स्वामी होता है इसी कारण से वह प्रपितामह होता है या कहा गया है ॥३६॥ यह समस्त जीवों का आजीव है योग क्षेम के करने वाला और ईश्वर है । सर्वदा निरीक्षण करता हुआ इस जगत् का किरणों के द्वारा भरण किया करता है ॥३७। तिथियों का तथा पर्व सन्धियों का एव पूर्णिमा और दर्शक का भी जो निशाकर योनि होता है और जो अमृतात्मा एव प्रजापति है ॥३८॥ उसमे वह पितृमान ऋक् यजु और छन्द स्वरूप वाला सोम प्राणापान समानादि तथा व्यान और उदानात्मक कर्मों के के द्वारा लोक में प्राणियो को समस्त चेष्टाओं का प्रवर्त्तक होता है और प्राण अपान एव समान वायुओं का प्रवर्त्तक होता है ॥३९॥४०॥

पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृति जलात्मनाम् ।
समानकालकरण क्रिया सम्पाद्यन्निव ॥४१
सर्वात्मा सर्वलोकानामावह प्रवहादिभि ।
विधाता सर्वभूताना क्षमी नित्य प्रभञ्जन ॥४२
यानिरग्नेरपा भूमे रवेश्चन्द्रमसश्च य ।
[illegible]ु प्रजापतिर्भूत लोकात्मा प्रपितामह ॥४३
[illegible]पति मुखैर्देवं सम्यगिष्टफलार्थिभि ।
[illegible]भेरेव कपालैस्तु त्र्यम्बकैरोषधिक्षये ।
[illegible]स्ते भगवान् यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ॥४४
[illegible]त्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव या स्मृता ।
[illegible]रा नामत प्रोक्ता योनय सवनस्य ताः ॥४५

ताभिरव्यत्वभूताभिस्त्रिविधाभि स्त्ववीयत ।
त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रि कपाल स वै स्मृत. ॥४६
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युग प्रोक्त मनीपिभि, ।
यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्त सवत्सरो द्विजे ।
सैक पट्क विजज्ञेऽय मध्वादीनृतव किल ॥४७

पाँचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जनानश्का का समान काल करने वाला तथा क्रियाओं को मानों सम्पादन करता हुआ- सर्वात्मा और प्रवहादि के द्वारा समस्त लोकों का आवहन करने वाला तथा समस्त भूतों का विधाता और सभी प्रभञ्जन नित्य होता है ॥४१॥४२॥ जो अग्नि, जल, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा का जन्म स्थान योनि है वह वायु भूतों का प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह है ॥४३॥ भली भाँति इष्ट फला के अर्थी प्रजापति प्रधान देवों के द्वारा तथा तीनों ही कपाला के द्वारा और औपधि धायमे अम्बर्दों के द्वारा भगवान् का यजन किया जाता है इसी कारण से वह त्र्यम्बक इस नाम से कहे जाते हैं ॥४४॥ गायत्री, त्रिष्टुप् जगती जो कही गई हैं और नाम से त्र्यम्बका कही गई है वे सवन की योनि है ॥४६। एकत्वभूत उन तीनों प्रकार वाली स अवन वीय से तीन साधन के पुरोडाश वाला है इसी लिए वह त्रिकपाल कहा गया है ॥४६॥ यह इतना पाँच वर्ष का मनीषियों ने युग कहा है और यही पञ्च प्रकार के स्वरूप वाला द्विजों के द्वारा सम्व तर कहा गया है। वह एक पट्क पैदा किया जोकि मधु आदि ऋतुएँ हैं ॥४७॥

ऋतुपुनार्तव पञ्च इति सर्ग समासत ।
इत्येप पवमानो वै प्राणिना जीवितानि तु ॥४८
नदी वेगसमायुक्त कालो धावति सहरन् ।
अहोरात्रकरस्तस्मान् स वायुरभवत्पुन ॥४६
एते प्रजाना पतय प्रधाना सर्वदेहिनाम् ।
पितर सवलोकाना लोकात्मान प्रकीर्तिना ॥५०
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्यन् समभवद्भव ।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामह ॥५१

ईश्वर. सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते ।
आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भव ॥५२
अग्निः सवत्सर सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च ।
युगाभिमानी कालात्मा नित्य सक्षेपकृद्विभु ।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स इद्वत्सर उच्यते ॥५३
रुद्राविष्टो भगवना जगत्यस्मिन् स्वतेजसा ।
आश्रयाश्रयसयोगात्तनुभिर्नाम भिस्तथा ॥५४

ऋतुओ के पुत्र आर्त्तव पाँच हैं। सक्षेप से यही सर्ग होता है। यह प्राणियो के जीवनो का पवमान होता है ॥४८॥ नदी के वेग के समान ही काल सबका सहार करता हुआ दौड़ा करता है, अहोरात्र करने वाला हैं इससे वह फिर वायु हो गया था ॥४९॥ ये सब प्रजाओ प्रधान पति हैं, और समस्त देह-धारियो के पति है और समस्त लोको के पितर है अतएव वे लोकात्मा प्रकलित हुए हैं ॥५२॥ ध्यान मे स्थित ब्रह्माजी के मुख से भव उत्पन्न हुए थे जो के ऋषि, विप्र, महादेव, भूतात्मा और प्रपितामह है। ॥५०॥ समस्त प्राणियो के ईश्वर प्रणव के लिये उत्पन्न होते हैं। आत्म वेश मे भूतो के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सम्भव होते हैं ॥५२॥ अग्नि, सम्वत्सर, सूर्य, चन्द्रमा और वायु ये युगाभिमानी काल के स्वरूप वाले विभु और नित्य ही सक्षेप करने वाले होते हैं उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं वह इद्वत्सर कहे जाते है। ५३॥ आश्रयाश्रय के सयोग मे तनुओ से तथा नामो के द्वारा इह जगती तल मे भगवान के द्वारा अपने तेज रुद्राविष्ट होते हैं ॥५४॥

ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम् ।
द्वितीय भद्रसयोग सन्ततस्यैककारकम् ॥५५
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ।
तस्माद्‌ सर्वथा भद्रस्तद्‌द्भिरभिपूज्यते ॥५६
पतिः पतीना भगवान् प्रजेशाना प्रजापतिः ।
भवन सर्वभूताना सर्वेषा नीललोहितः ।
ओषधीः प्रतिसन्धत्ते रुद्र. क्षीणाः पुन पुन ॥५७

इत्येषा यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः ।
बहुत्वात् परिसङ्ख्यातु पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥५८
इम वंश प्रजेशाना महता पुण्यकर्मणाम् ।
कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीना महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥५९

इसके अनन्तर उसके वीर्य से लोकों पर अनुग्रह करने वाला सन्तत का एक करने वाला द्वितीय भद्र संयोग होता है ॥ ५५ ॥ देवत्व, पितृत्व और इसका कालत्व मत्पर है उससे सर्वथा भद्र उसी के भांति विद्वानों के द्वारा अभिपूजित होते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान् पतियों के भी पति और प्रजा के ईशों के भी प्रजापति तथा समस्त प्राणियो जन्म स्थान एवं नील लोहित हैं । रुद्र पुनः पुनः क्षीण हुई ओषधियों का सन्धान करते हैं ॥ ५७ ॥ इनकी जो सन्तति है वह प्रमाण के स्वरूप मे नही नही जा सकती है । बहुत होने के कारण उनकी परिसख्या भी नही की जा सकती है क्योंकि पुत्र और पौत्रों का कुछ भी अन्त नही है ॥ ५८ ॥ महान् एवं पुण्य कर्म वाले इन प्रजेशों का जो यह वंश है जिनकी कि कीर्त्ति स्थिर है उसका कीर्त्तन करते हुए महती सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

॥ प्रकर्ण ३०—युगधर्म निरूपण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ।
ओङ्कारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णत्वादितः स्मृतम् ॥१
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ।
चतुर्द्दश महात्मानो देवानां ये तु दैवताः ॥३
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित् ।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥४
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभिः सह ।
अक्षरान्निसृता सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥५
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं पदम् ।

पूर्वमेव मयाख्याते कालस्तु युगसंज्ञितः ॥६
कृत त्रेता द्वापरश्च युगादि कलिना सह ।
परिवर्त्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥७
देवतास्तु तदोद्विग्ना कालस्य वशमागताः ।
न शक्नुवन्ति तन्मान संस्थापयितुमात्मना ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय करते हैं। ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और यह आदि से तीन वर्ण वाला कहा गया है ॥१॥ जो जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वैसा ही ऋक् यजु साम, वायु अग्नि और जल होता है ॥ २ ॥ उस अक्षर से ही फिर ये उत्पन्न हुए हैं। ये चौदह महान् आत्मा वाले हैं जो दिव्यों के भी देवता हो हैं ॥ ३ ॥ उनमे सवगत, सत्व और सवयोग का वेत्ता लोगों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए आदि, मध्य तथा अन्त कहा जाता है ॥ ४ ॥ महर्षि इन्द्र और जो देव हैं वे पितरों के साथ सब अक्षर देवों के देव महेश्वर से ही निःसृत हुए हैं ॥ ५ ॥ यहाँ और परलोक मे हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं। मैंने युग की संज्ञा से युक्त काल पहिले ही बतला दिया है ॥ ६ ॥ कृतयुग त्रेता द्वापर युगादि इन कलियुग के साथ परिवर्त्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रमण होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश मे आ गये और अपने से उस मान की संस्थापना न कर सके हैं ॥ ७ ८ ॥

तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै ।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपाः ॥९
समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेवं भीता कालस्य वै तदा ॥१०
अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः ।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ॥११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्त तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह वा व काग प्रदीयताम् ॥१२
तत्र रिष्याम्यहं सर्वं न वृथाय परिश्रमः ।

उवाच देवो भगवान् स्वयङ्कालः मृत्युञ्जय ॥१३
यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते ।
एतत् कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ।
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ॥१४

उस समय के वाक्य अर्थात् मौन द्वारा मन्वन्तर के आदि में देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रों परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समाहित करके तब काल से डरे हुए महादेव के शरण में प्राप्त हुए ॥ ९-१० ॥ यह चार मूर्त्ति तथा चार मुखों वाला देवों का उग्र काल था। हे महेश्वर ! हे महादेव ! अगाध इसको कौन जानता है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उस चार मुखों वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत। आपका क्या काम है मुझे बताओ ॥ १२ ॥ मृत्युंजय स्वयं भगवान् कालदेव ने कहा—यह सब मैं तुम्हारा कार्य करूँगा। यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा ॥ १३ ॥ और यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है। यह सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्मा देव हैं और वैवस्वत मुख है ॥ १४ ॥

यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया ।
त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत् त्रेतायुगं द्विजाः ॥१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ।
ततोऽत्र दृश्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः ।
इष्टा चैवाग्नयो विप्रा कालजिह्वा प्रवर्तिनी ॥१६
यदेतद्धि मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ॥१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम् ।
एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ॥१८
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयङ्करम् ।
कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम नोपमम् ॥१९
न मुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे ।

वालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥२०
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥२१

जो यह रक्त वर्ण की आभा वाला मेरे द्वारा आपका तृतीय कहा गया है तीन जीभ वाला इसको चाटता हुआ है द्विजो ! वह त्रेतायुग है ॥ १५ ॥ यहाँ पर भगवान् महेश्वर से यज्ञ करने में प्रवृत्ति होती है । सब से यहाँ यज्ञ का याजन किया जाता है । तीन जीभ और तीन ही अग्नि हैं । हे द्विजो ! अग्नि यजन करके काल जिह्वा की प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥ यह जो दो जीभ वाला रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाला भयानक मुख है यहाँ दो पाद वाला हो जाऊँगा । यह द्वापर नाम वाला युग है ॥ १७ ॥ यह जो चतुर्थ कृष्ण वर्ण की आभा वाला रक्त लोचन एक जीभ वाला अधिक श्याम को बार-बार चाटने वाला है वह घोर समस्त लोकों को भयङ्कर कलियुग है । यह चौथा कल्प का भीषण मुख है ॥ १८ ॥ इस युग में न तो कोई सुख ही होता है और न निर्वाण (मोक्ष) ही होता है । इस युग में प्रजा भी सब काल से ग्रस्त रहा करेगी ॥ २० ॥ कृतयुग में ब्रह्मा पूज्य व मान्य होते हैं । त्रेता में यज्ञ कहा जाता है । द्वापर में विष्णु पूजे जाते हैं और मैं चारों में पूज्य होता हूँ ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलात्रयः ।
सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥२२
अहं जनो जनयिता (च) कालः कालप्रवर्त्तकः ।
युगार्त्ता तथा चैव परं परपरायणं ॥२३
तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात् ।
धर्मार्थश्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४
सदा गम्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः ।
तस्माद्भयं न कार्यं च कलिं प्राप्य महौजसः ॥२५
एवमुक्तास्ततः सर्वा देवता ऋषिभिः सह ।
प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६
महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युतिः ।

भीषण सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ॥२७
एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः ।
लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८

ब्रह्मा, विष्णु और यम ये तीनो काल की ही कलाऐं हैं। समस्त कालों मे चतुर्मूर्ति महेश्वर होते हैं। २२॥ मैं जन हूँ हमारा जनन करने वाला काल है जो काल का प्रवर्त्तक होता है तथा वह युग का करने वाला और पर परायण होता है ॥ २३॥ इससे लोकों के हित कारण से कलियुग को प्राप्त करके दोनों लोकों मे देवों का समयार्थ हूँ ॥ २४॥ हे सुरोत्तमो ! तब उस समय मैं भव्य और पूज्य हो जाऊँगा। इससे महान् ओज वालो ! कलियुग को पाकर कुछ भी भय नहीं करना चाहिए ॥ २५॥ इस प्रकार से ऋषियों के साथ समस्त देव कहे गये और उन्होंने शिर से देव को प्रणाम करके फिर वे जगत् के पति से बोले ॥ २६॥ देवर्षियों ने कहा—महान् तेज वाला, महान् काय वाला और महान् वीर्य वाला तथा महाद्युति से युक्त समस्त प्राणियों के लिये भीषण काल चार मुखो वाला कैसे हुआ है ॥ २७॥ श्री महादेव जी ने कहा—यह काल चार मूर्तियों वाला, चार दाढों वाला और चार मुख वाला लोकों के संरक्षण के लिये सभी ओर से अतिक्रमण करता है। २८॥

नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे ।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ॥२९
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ।
तस्मात्तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा ॥३०
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्तति ।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तायुगक्रमात् । ३१
एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः ।
यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२
एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।
नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३
एवं स काले भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।

पुन पुन सहरते मृजते च पुन पुन ॥३४
अतो मन्वन्तर चैव दर्वापितृदानवै ।
पूज्यते भ।वानीशो भयान् कालस्य तस्य वै ॥३५

समस्त चराचर मे इसको कुछ भी असाध्य नहीं होता है । यह का ही प्राणियो का सृजन किया करता है और यही क्रम से उनका सहार कर है ॥ २६ ॥ सभी काल के वश मे जाने वाले होते हैं किन्तु यह काल किसी भी वश मे रहने वाला नही होता है । इसीलिये समस्त प्राणियो का यह का सदा कलन किया करता है ॥ ३० ॥ इसके विक्रम के इकहत्तर पद हैं जो पहि कह गये है । ये यहाँ परिवृत्त युगो के क्रम से मन्वन्तर होते हैं ॥ ३१ ॥ ए पद का परिक्रम करके जो वि इकहत्तर पद हैं । जब काल प्रक्रमण किया कर है तब मन्वन्तर का क्षय होता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से भगवान् ने देवर्षि ि और मानवो से कहा और उस कहने के पश्चात् उन सबके द्वारा नमस्कृत हो। वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गए ॥ ३३ ॥ इस प्रकार से वह भगवान् काल ने दे ऋषि, पितर और मानवो को पुन पुन सृजन किया करते हैं और बार ब सहार भी किया करते हैं ॥ ३४ ॥ इसीलिये उस काल के भय से मन्वन्तर देवर्षि पित दानवो के द्वारा भगवान् ईश पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥

सप्तर्षिभिश्चैव सार्द्ध भाव्ये त्रेतायुगे पुन ।
गोत्राणा क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्तिता ॥४०
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह ।
कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।
नरा. पातकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृता ॥४१
मन्वन्तराणा सप्ताना सान्तानार्थो श्रुतिः स्मृतिः ।
एवमेतेपु सर्वेपु युगक्षयक्रमस्तथा ॥४२

इसीलिये द्विज को इस कलियुग मे समस्त प्रयत्नो से तपश्चर्या करनी चाहिए। महादेव की शरणागति मे जाने वाले को उसके पुण्य का महान् फल होता है । इससे देवता स्वर्ग मे जाकर फिर इस भूतल मे अवतरित होते है ॥ ३६ ॥ ऋषिगण और देववृन्द इस सुदारुण कलियुग को पाकर धर्म परायण होते हुए बहुत अधिक तप करने की इच्छा किया करते हैं और इस कलियुग को प्राप्त करके पुनः पुन अवतारो को किया करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से कलान्तर मे हजारो ही जो सब हैं वे अतीत हो गये हैं । इसी तरह से इस वैवस्वत अन्तर मे देवराजर्षि अतीत हो गये हैं ॥ ३८ ॥ देवापि पौरव राजा मनु और इक्ष्वाकु के वश मे जन्मने वाले जो कि महान् योग के बल से युक्त थे कालान्तर की उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥ उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग के तिष्य होने पर फिर सप्तर्षियो के साथ भाव्य त्रेता युग मे गोत्र और क्षत्रियो के भविष्य प्रकीर्त्तित किये गये हैं ॥ ४० ॥ द्वापर के अन्त मे ऋषियो के साथ क्षत्रिय प्रतिष्ठित होते है । कृतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर इस कलियुग मे मनुष्य जो है वे सब पातकी होते है ऐसा कहा गया है ॥ ४१ ॥ सात मन्वन्तरो की सान्तानार्थ श्रुति और स्मृति है । तथा इसी प्रकार से इन सब मे युगो के क्षय होने का क्रम होता है ॥ ४२ ॥

परस्पर युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ।
यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्ताना यथा क्षयम् ॥४३
जामदग्न्योन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।

दिव गतानह तुभ्य नीर्त्त यिप्ये निवोधत ।।४४
ऐडमिक्ष्वाकुवशस्य प्रकृति परिचक्षते ।
राजान श्रोणिबन्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया भुवि ।।४५
ऐडवशेऽथ सम्भूता यथा चेक्ष्वाकवो नृपाः ।
तेभ्य एव शत पूर्ण कुलानामभिषेचितम् ।।४६
तावदेव तु भोजाना विस्तरो द्विगुण स्मृत ।
भोजन्तु त्रिशत क्षत्र चतुर्द्धा तद्यथादिशम् ।।४७
तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत ।
शत वै प्रतिविन्ध्याना हैहयाना तथा शतम् ।।४८
धार्त्तराष्ट्रास्त्वेकशत अशीतिर्जनमेजया ।
शत वै ब्रह्मदत्ताना कुलाना वीर्यिणा शतम् ।।४९

परस्पर मे युगो का और ब्रह्म क्षत्र का उद्भव होता है उनके लिये जैसी प्रवृत्ति होती है और प्रवृत्तो का जैसे क्षय होता है तथा जमदग्नि के पुत्र राम के द्वारा समस्त क्षत्रियो का निविशेष हो जाने पर इस भूमि के अधिप क्षत्रियो ने समस्त स्त्रियाँ कुलटा करदी थी उन दिवगतो के विषय मे हम कहेंगे सो तुम श्रवण करो ।। ४३-४४ ।। इक्ष्वाकु वश की ऐड प्रकृति बतलाई जाती है। राजा लोग श्रेणी मे बद्ध तथा भूमि पर अन्य क्षत्रिय हुए ।। ४५ ।। ऐड वश मे जिस प्रकार से इक्ष्वाकु वश वाले राजा हुए थे उनके ही सैकड़ों कुल यहाँ अभिषिक्त हुए थे ।। ४६ ।। तभी फिर भोज वश वालो का दुगुना विस्तार कहा गया है। भोज वश के तीन सौ क्षत्रिय चारो ओर सब दिशाओं मे थे ।। ४७ ।। उनमे समाप्त होने पर जो राजा लोग व्यतीत हुए उनके विषय मे बोलते हुए मुझसे श्रवण करो। सौ प्रतिविन्ध्यो के तथा सौ वश हैहयो के हुए ।। ४८ ।। धार्त्तराष्ट्र एक सौ राजा हुए और अस्सी जनमेजय के वशज हुए। फिर सौ ब्रह्मदत्तों के वश वाले तथा वीर्यी कुलो के एक सौ राजा हुए थे ।।४९।।

शत शतन्तु पौलाना शत काशिकुशादय ।
तथापर सहस्रन्तु येऽतीता शशबिन्दव. ।
ईजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणै ।।५०

एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु ।
वक्तुं राजर्षय कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैं सह ॥५१
एते ययातिवंशस्य वंशबुर्वंशवर्द्धना ।
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान् धारयन्ति वै ॥५२
लभन्ते च वरान् पञ्च दुर्लभान् ब्रह्मलौकिकान् ।
आयु पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्यं भूतिरेव च ॥५३
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य धीमताम् ।
तथोक्ता लौकिकाश्चैव ब्रह्मलोकं व्रजन्ति वै ॥५४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविध ॥५५
कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते ।
तस्माच्चतुःशत सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥५६

इसके अनन्तर पौल वश बाप्पो के सौ और काशि कुशादिक सौ हुए । इसके पीछे दूसरे हजारो हुए और शशविन्दु वाले अतीत हुए ये सब अश्वमेध यज्ञों का यजन करने वाले थे जिन यज्ञो में नियुतों की सख्या मे दक्षिणा दी गई थी ॥ ५० ॥ इस तरह से हमने इन सब का वर्णन सक्षेप में ही किया है क्योंकि इनका विस्तार के साथ वर्णन किया नही जा सकता है । जो राजर्षि समस्त उन युगों के साथ अतीत हो गये हैं उनका भी विस्तार से कथन नही हो सकता है ॥ ५१ ॥ ये सब ययाति राजा के वंश के बढाने वाले हुए थे । उन द्युतिमानों के विषय में वर्णन किया गया है जो लोकों को धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्म लौकिक पाँच वरो को प्राप्त किया करते हैं । ये पाँच वर आयु पुत्र, धन, कीर्ति और ऐश्वर्य विभूति हैं ॥ ५३ ॥ इन धीमानों के पञ्च वर्ग के ध्यान से तथा धारण एवं श्रवण करने से यथोक्त लौकिक भी वे ब्रह्मलोक को जाया करते हैं ॥ ५४ ॥ कृतयुग चार सहस्र वर्षों का था उसकी उतनी ही शती सन्ध्या थी और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का था ॥ ५५ ॥ कृत में प्रक्रिया पाद चार सहस्र वाला कहा जाता है । इसका चार शत सन्ध्या तथा उसी प्रकार का सन्ध्यांश था ॥ ५६ ॥

त्रेतादीनि सहस्राणि सन्ध्यया मुनिभिः सह ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशस्त्रिशतः स्मृतः ॥५७
अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु सङ्ख्यया ।
द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणां सम्प्रकीर्तितम् ॥५८
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशो द्विशतस्तथा ।
उपोद्‌घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ॥५९
कलिं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ।
तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशः शतमेव च ।६०
संहारपादः सङ्ख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे ।
ससन्ध्यानि सहांशानि चत्वारि तु युगानि वै ॥६१
एतद् द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ।
एवं पादे सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च ॥६२
सन्ध्यासन्ध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे ।
एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ॥६३
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम् ।
यथा युगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम् ।
चतुष्पादं पुराणान्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ॥६४

त्रेतादि युग मुनियों के साथ सन्ध्या से सहस्र थे । उसकी त्रिशती सन्ध्या तथा त्रिशत वाला सन्ध्यांश कहा गया है ॥ ५७ ॥ त्रेता का अनुषङ्ग पाद सन्ध्या से तीन सहस्र वाला था । द्वापर में दो सहस्र वर्ष रहे गये हैं ॥ ५८ ॥ उस द्वापर युग की भी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्यांश भी दो सौ वाला था । उपोद्‌घात तीसरा द्वापर में पाद कहा जाता है ॥ ५९ ॥ सङ्ख्या के ज्ञाता विद्वज्जन कलियुग को एक सहस्र वर्ष वाला बताते हैं । उसकी भी सन्ध्या एक सौ वाली शतिका है और उसका सन्ध्यांश भी उसी प्रकार वाला एक सौ का है । कलियुग में चतुर्थ संहार पाद होता है । इस तरह सन्ध्या के साथ तथा अंशों के सहित चार युगों का वर्णन किया गया है ॥ ६१ । यह बारह सहस्र का है जिसको कि अब बतलाया गया है । इसी प्रकार से पादों से

ों के पाँच पाँच सहस्र हैं ॥ ६२ ॥ तथा सन्ध्या और सन्ध्यांशकों के द्वारा रे दो सहस्र होते हैं इस तरह से कवि लोग पुराणों को बारह सहस्र वाले ा करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस तरह वेद चार पादों वाला है उसी प्रकार से युग चार पादों वाला होता है। जिस तरह विधाता ने स्वयं युग को चार पाद ना बनाया है उसी तरह से पहिले ब्रह्माजी ने सुरों के भी चतुष्पाद का र्माण किया था ॥ ६४ ॥

॥ प्रकर्ण ३१—स्वायम्भुव-वंश-कीर्तन ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिन सर्वे जायन्ते नामरूपत ॥१
देवाश्च त्रिविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपा. ।
ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिन ॥२
महर्षिसर्गे प्रोक्तो वै वंश स्वायम्भुवस्य तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमान निबोधत ॥३
मनो. स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समा ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥४
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षंनिवेशिता ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तै. पौत्रै स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥६
प्रियव्रतात् प्रजावन्त वीरान् कन्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों में सब में यहाँ पर सब नाम और रूप से तुल्याभिमानी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ अनेक देव जो कि उस मन्वन्तर में अधिप थे ऋषिवृन्द और मानवगण ये सभी तुल्य अभिमान वाले थे ॥ २ ॥ स्वायम्भुव का वंश महर्षियों का सर्ग कह दिया गया है। अब विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से वर्णन किये जाने वाले का श्रवण करो ॥३॥ स्वायम्भुव मनु के उसी के समान दश पुत्र थे जिनके द्वारा यह सातों द्वीपों से

समन्वित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ यह भूमि प्रतिवर्ष निवेशित होती समुद्र तथा आकरो वाली है। स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले आद्य त्रेतायुग में उस समय यह पृथ्वी इसी तरह से युक्त थी ॥ ५ ॥ राजा प्रियव्रत के पुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्रों के द्वारा यह प्रजा का सर्ग, तपश्चर्या और योग निवेशित की गई थी ॥ ६ ॥ राजा प्रियव्रत से जो कि प्रजा वाला एवं वीर कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या महान् भाग्य वाली थी जो प्रजापति कर्दम को ब्याही गई थी ॥ ७ ॥

कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे।
तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ॥८
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सर्व एव च ॥९
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान्।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपास्ताश्च निबोधत ॥१०
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम्।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥११
शाल्मली तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ॥१२
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरश्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रतः ॥१३
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभुः।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत्।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४

दो कन्या, सौ पुत्र और सम्राट् कुक्षि वे दोनों थे, उन दोनों के प्रजापति के समान शूर भाई दस थे ॥ ८ ॥ उनके नाम ये हैं—अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् हव्य, सवन और सर्व ये दस हैं। राजा प्रियव्रत ने सात इन राजाओं का सात द्वीपों में अभिषेक करके उन में धर्म से नियुक्त कर दिया था, उन द्वीपों के विषय में अब श्रवण करो ॥

जम्बूद्वीप में महान् बल वाले अग्नीध्र को वहाँ का स्वामी बनाया था। प्लक्ष द्वीप में उसने मेधातिथि को वहाँ का राजा नियुक्त किया था ॥ ११ ॥ शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को राजा अभिषिक्त किया था। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् को प्रियव्रत प्रभु ने राजा बनाया था ॥ १२ ॥ क्रौञ्चद्वीप में द्युतिमान् को राजा होने की आज्ञा दी थी। प्रियव्रत ने शाकद्वीप में हव्य को वहाँ का राजा बनाया था ॥ १३ ॥ पुष्कर द्वीप में सवन का अभिषेक किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का भी महावीत नाम वाला पुत्र हुआ था। और एक धातकि पुत्र था ये दोनों पुत्र पुत्रवालों में परम श्रेष्ठ थे ॥ १४ ॥

महावीत स्मृत वर्ष तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ॥१५
हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपश्वरान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ।
वसुमोद सुमोदाक सप्तमञ्च महाद्रुमम् ॥१६
जलदं जलदस्याथ वर्ष प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥१७
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्तितम् ।
मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ॥१८
वसुमोदस्य वै वर्ष पञ्चमं वसुमोदकम् ।
मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ॥१९
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ।
एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ॥२०
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्ण पीवरश्चान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु च ॥२१

महावीत महात्मा ने उस नाम से वर्ष स्थापित किया था और [illegible] नाम से भी धातकीखण्ड कहा जाता है ॥ १५ ॥ हव्य ने [illegible]वामी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सात पुत्र थे जिनके नाम,

सुकुमार, मणिचक, वसुमोद, सुमोदाक और सातवाँ महाद्रुम है। ये सातों पुत्रों के नाम हैं ॥ १६ ॥ जलद का जलद प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार दूसरा वर्ष कहा गया है ॥ १७ ॥ तृतीय सुकुमार का सुकुमार इसी नाम वाला वर्ष कहा गया है। मणिचक का चौथा मणीचक वर्ष है इसी नाम से कहा जाता है ॥ १८ ॥ पाञ्चवाँ वसुमोदका वसुमोदक और मोदाक का छठा मोदाक वर्ष कहा गया है ॥१९॥ सातवाँ महाद्रुम के नाम का महाद्रुम वर्ष है। ये इनके नामों से सात वर्ष होते हैं ॥ २० ॥ क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हुए उनके नाम, कुशल, मनुग उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि ये द्युतिमान् राजा के पुत्र हुए थे ॥ २१ ॥

तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः ॥२२
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते।
मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः।
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ॥२३
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त ते सुमहौजसः।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः।
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२४
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्।
तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लावणं स्मृतम् ॥२५
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम्।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥२६
तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु।
आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलंकृताः ॥२७
शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ॥२८

इन सातों द्युतिमान् के पुत्रों के अपने २ नामों से क्रौञ्चद्वीप के ... आश्रय वाले शुभ देश हुए। उष्ण का उष्ण, पीवर का पीवर इस नाम के

देश था ॥२२॥ अन्धकारक के देश का नाम भी अन्धकार ही कहा जाता है। मुनि का मुनि देश और दुन्दुभि का दुन्दुभि इसी नाम वाला देश था। ये सात जनपद क्रौञ्च द्वीप मे परम भास्वर अर्थात् देदीप्यमान थे ॥२३॥ इसी तरह कुश द्वीप मे महान् ओज वाले ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है ॥२४॥ उद्भिद ने प्रथम वर्ष-वेणुमण्डल, दूसरा-तृतीय स्वैरथाकार-चौथा लवण-पाँचवां धृतिमान्-छठा प्रभाकर और सप्तम कपिल इस नाम वाला वर्ष था जो कि इन्हीं नामो से सत्र प्रसिद्ध हैं ॥२५॥२६॥ उनके कुश द्वीप में द्वीप उन्हीं के समान हुए थे जो कि आश्रम एवं आचार से युक्त प्रजाओं से समलङ्कृत थे ॥२७॥ शाल्मलि द्वीप के वपुष्मान् के सात पुत्र हुए जो उसी द्वीप के अधिप हुए थे। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस और सुप्रभ ये नाम वाले थे ॥२८॥

श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः।
जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारित ॥२९
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानस स्यापि मानसः।
सुप्रभ सुप्रभस्यापि सप्त ते देशपालकाः ॥३०
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम्।
सप्त मेधातिथे पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपा ॥३१
ज्येष्ठ शान्तभयस्तेषा सप्तवर्षाणि तानि वै।
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२
तानि तेषा सनामानि सप्तवर्षाणि भागश ।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥३३
मेधातियेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभि ।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ॥३४
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै।
ज्ञेय पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥३५

श्वेत का श्वेत देश था तथा रोहित का रोहित, जीमूत का जीमूत,

हरित का हारित, वैद्युन का वैद्युन, मानस का मानस और सुप्रभ का सुप्रभ दश था और ये सातो पुत्र देशों के पालक थे जो कि देश उन्हीं सातों के नामों से प्रसिद्ध हैं ॥२६॥३०॥ जम्बू द्वीप के बाद मे मान द्वीप कहूँगा। मेधा तिथि के सात पुत्र हुए थे जो कि प्लक्ष द्वीप के स्वामी राजा हुए थे ॥३१॥ उनमें जो सबसे बड़ा था वह शान्तमय था। उनके भी सात पुत्र हुए थे। फिर शान्तमय के पीछे शिशिर, सुखोदय, आनन्द, ध्रुव, क्षेमक और सातवां शिव ये नाम वाले सात पुत्र थे ॥३२॥ उन सातो के नामों से ही विभाग पूर्वक सात वर्ष हुए। उन्होंने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर मे उन सातो को निवेशित किया था ॥३३॥ मेधा तिथि के उन सात द्वीपो मे निवास करने वाले पुत्रो ने वर्णों तथा आश्रमो के आचार से युक्त प्लक्ष द्वीप मे प्रजा का सृजन किया था ॥३४॥ प्लक्ष द्वीपादि मे तथा शाक द्वीपान्तरों मे पाँचो मे वर्णाश्रम के विभाग से धर्म जानने के योग्य है ॥३५॥

सुखमायुश्च रूपञ्च वलं धर्मश्च नित्यशः ।
पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वं साधारणं स्मृतम् ॥३६
सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत ।
आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥३७
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः ।
ज्येष्ठो नाभि रिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ॥३८
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हिरण्मान् षष्ठ उच्यते ॥३९
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः ।
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ॥४०
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वन्तु पिता ददौ ।
हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किम्पुरुषाय तत् ॥४१
नैषधं यत् स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ ।
मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥४२

सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य ही इन पाँचों द्वीपों में समस्त कारण रूप में स्थित रहे गये हैं ॥३६॥ सात द्वीपों से परिक्रान्त जम्बू द्वीप जानना चाहिए। राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र, ज्येष्ठदायाद, कन्या पुत्र और बल को उस जम्बू द्वीप में वहाँ का राजा अभिषिक्त करके बनाया था।३७। के पुत्र भी प्रजापति के समान ही ओज वाले हुए थे। उनमें जो सबसे बड़ा पुत्र था वह 'नाभि'—इस नाम से प्रसिद्ध था। उसका छोटा भाई किम्पुरुष था ॥३८॥ तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य और षष्ठ हरिण्मान् और सातवाँ कुरु एवं अष्टम भद्राश्व कहा गया है, नवम केतुमाल था। अब उनके देशों के विषय में बतलाया जाता है उसका श्रवण करो ॥३९॥४०॥ पिता ने नाभि को हिम नाम वाला दक्षिण देश दिया था और जो हेमकूट वर्ष था वह किम्पुरुष को दिया था ॥४१॥ नैषध जो वर्ष था वह हरिवर्ष को दिया और सुमेरु के मध्यम था वह उसने इलावृत को दे दिया था ॥४२॥

नीलन्तु यत् स्मृतं वर्ष रम्यायैतत् पिता ददौ ।
श्वेत यदुत्तर तस्मात् पित्रा दत्तं हरिण्मते ॥४३
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ।
वर्षं माल्यवतश्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ॥४४
गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत् ।
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः ॥४५
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत ।
यथाक्रम स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ॥४६
इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपा निवेशिताः ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तै. पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ॥४७
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ।
तेषां स्वभावत. सिद्धि सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥४८
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्मिन् युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ॥४९

जो नील इस नाम वाला वर्ष था, वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र के दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हिरण्मान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर में वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ॥४४॥ गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था। ये सब महान् भाग में जो वर्ष हैं ॥४५॥ उन सबको आग्नीध्र ने उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और सबको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातों ने समस्त सप्त द्वीप निवेशित किये थे, ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे हा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ आठ वर्ष थे उनमें स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उन किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृ से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था। उनमें कोई भी धर्म त अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमें कोई भी उत्तम मध्यम तथा अधम वाली बात भी नहीं थी। उनमें कोई भी युग की अवस्था नहीं थी और ह को किसी भी क्षेत्र में ऐसा नहीं होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत ।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्र मेरुदेव्या महाद्युति ।
ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताग्रज ।
सोऽभिषिच्याथ भरत पुत्र प्राव्राज्यमास्थित ॥५१
हिमाह्व दक्षिण वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्मात्तद्भारत वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिक ।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्य भरत सन्ययोजयत् ।
पुत्र सक्रामितश्रीको वन राजा विवेश स ॥५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् ।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुत ॥५४
परमेष्ठा सुतश्चाथ निधने तस्य शोभन ।

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भुवस्तस्य सुतः स्मृतः ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्ताविश्चापि तत्सुतः ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व मे आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी में पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियो का पूर्वज तथा राजाओ मे परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रो मे सबसे बडा था। वह भरत भी, अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वयं सन्यास की अवस्था मे स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र मे राज्यश्री को सक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने सन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्रद्युम्न इस नाम से ससार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और शोभन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल मे उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता–इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रस्तावि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रस्तावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ॥५७
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ॥५९

अग्निजस्य रज पुत्र शतजिद्रजसो मत ।
तस्य पुत्रशत त्वासीद्राजान सर्वं एव ते ॥६०
विश्वज्योति प्रधाना यैस्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
तैरिद भारतं वर्ष सप्तखण्ड कृत पुरा ॥६१
तेषा वशप्रसूतैस्तु भुक्तेय भारती धरा ।
कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्तति ॥६२
येऽतीतास्तैर्युगै सार्द्ध राजानस्ते तदन्वया ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं शतशोऽथ सहस्रश ॥६३
एष स्वायम्भुव सर्गो येनेद पूरित जगत् ।
ऋषिभिर्देवतैश्चापि पितृगन्धर्वराक्षसैं ॥६४
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभि ।
तेषा सृष्टिरिय लोके युगै सह विवर्त्तते ॥६५

प्रतावि का पुत्र विभु और इसका पुत्र पृथु हुआ । पृथु का पुत्र नक्त हुआ और नक्त का आत्मज गय नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५७॥ गय का पुत्र नर हुआ और नर का आत्मज विराट नाम वाला उत्पन्न हुआ था । विराट का पुत्र महावीर्य हुआ तथा उसका पुत्र धीमान् उत्पन्न हुआ ॥५८॥ धीमान् का सुत महान् और महान् का पुत्र भौवन नामक उत्पन्न हुआ था । भौवन का सुत त्वष्टा और इसका पुत्र अग्नि नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥५६॥ अग्नि का पुत्र रज हुआ और शतजित रज का पुत्र हुआ । उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए वे सभी राजा हुए थे ॥६०॥ ये सब विश्व ज्योति के प्रधान वाले थे और उनके द्वारा ये सन्तति पर्याप्त रूप से वर्द्धित हुई थी, उन्होंने ही इस भारतवर्ष को सात खण्डो वाला पहिले किया था ॥६१॥ उनके वश मे प्रसूत होने वालों के द्वारा इस भारत की भूमि का पूर्ण रूप से भोग किया गया । कृत त्रेतादि से युक्त इकहत्तर युग नाम वाल पर्यन्त इस भारती भूमि को भुक्त किया था ॥६२॥ उन युगो के साथ जो राजा अतीत हो गये थे वे उस अन्वय (वश) वाले थे जो स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले सैकडो और सहस्रो की सख्या मे हुए थे ॥६३॥ यह स्वायम्भुव सर्ग है जिससे यह समस्त जगतीतल पूरित हो रहा है जिनमे ऋषि, देवता, पितृगण, गन्धर्व और राक्षस सभी हैं । इनके अतिरिक्त यक्ष, भूत, पिशाच

मनुष्य, मृग और पक्षी आदि सब हैं। इनकी यह सृष्टि लोक में युगों के साथ विवर्तित होती है ॥६५॥

॥ भुवन विन्यास ॥

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥१
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषामब्रवील्लोमहर्षणः ॥२
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम्।
एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः ॥३
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि।
पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ॥४
तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ।
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ॥५
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम्।
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥६
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ।(७)

ऋषियों ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु प्रजा के सर्ग में होते हैं ॥१॥ हे सत्तम ! हम इस जानना चाहते हैं सो आप यह हमें बतलाइये। ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोमहर्षण महर्षि उनसे कहने लगे ॥२॥ उस समय में महात्मा ऋषियों से पौराणिक सूतजी फिर पूर्ण तया समाहित होकर यह सब विषय विस्तारपूर्वक उनसे बोले ॥३॥ श्रीसूत जी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! पूर्वपश्चायत् इस दक्षिण हिमवान् पर्वत के पुण्य तीर्थ में दक्षिण की ओर से जो जनपद हैं उनका पूरा विस्तृत वर्णन आप सब सुनने के योग्य होते हैं। यहाँ पर भारतवर्ष में जो प्रजा है वह

धाराके सामने मैं वर्णन करूँगा ॥५॥ शुभ और अशुभ के फल का स्वरूप यह तो मध्यम चित्र होता है जोकि समुद्र के उत्तर मे और हिमालय दक्षिण मे है ॥६॥ यह जो वर्ष है उसका नाम भारत है और यहाँ जो प्रजा निवास किया करती है वह भारती प्रजा कही जाती है। प्रजाओं के भरण करने के कारण से मनु भी भरत ऐसा कहा गया है। निरुक्त करने के वचन से भी वर्ष कहा गया है ॥७॥

ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥८
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदाः प्रकीर्तिताः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥९
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥१०
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥११
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥१२
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१४॥

इससे यहीं स्वर्ग मोक्ष और मध्य अन्त पर्यवसान होता है अर्थात् प्राप्त किया जाता है। मरण भूमि में मनुष्यों का निश्चय ही कर्म का विधान नहीं होता है ॥८॥ इस भारतवर्ष के भी भेद कहे गये हैं जोकि समुद्र से अन्तरित हैं ऐसा समझना चाहिए और वे परस्पर में अगम्य होते हैं ॥९॥ इन्द्रद्वीप कसेरु ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और यह जो सागर से संवृत नवम द्वीप है यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन का होता है ॥१०-११॥ यह कुमारी से गंगा उद्गम तक आयत है और [illegible]

उत्तर मे नौ सहस्र विस्तीर्ण होता है ॥१२॥ यह द्वीप नित्य ही अन्तो: मे म्लेच्छों से उपविष्ट है । पूर्व मे इसके अन्त मे किरात लोग हैं और पश्चिम मे यवन कहे गये हैं ॥१३॥ मध्य मे इसके भाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जोकि इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि के द्वारा अपना वर्त्तन करते हुए व्यवस्थित रहते हैं ॥१४॥

तेषां संव्यवहारोऽय वर्त्तते तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णाना तु स्वकर्मसु ॥१५
सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणा यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी । १६
यस्त्वय नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येन स सम्राडिह कीर्त्यते ॥१७
अय लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोक पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥१८
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः ।
महेन्द्रो मलयः सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वता. ॥१९
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ।
अभिजाताः सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानवः ॥२०
मन्दरः पर्वत श्रेष्ठो वैहारो दर्दु रस्तथा ।
कोलाहलः ससुरसः मैनाको वैद्युतस्तथा ॥२१

उनका परस्पर मे ऐसा सुन्दर व्यवहार रहता है कि वर्णों का अपने अपने कर्मों में धर्म, अर्थ और काम से युक्त व्यवहार रहता है ।१५॥ सङ्कल्प पञ्चम आश्रमो की विधि के अनुसार यहाँ पर जिन मे स्वर्ग तथा अपवर्ग के लिये मानवी प्रवृत्ति रहा करती है ॥१६। जो यह नवमद्वीप है वह तिर्यक् (टेढा) आयत है ऐसा कहा जाता हूँ । इस पूरे को जो जीत कर शासन किया करता हूँ वही यहाँ पर सम्राट कहा जाता हूँ ॥१ ॥ यह लोक तो सम्राट् और अन्तरिक्ष विराट कहा गया है और जो अन्य लोक हैं वह स्वराट्

कहे गये हैं। उसका विस्तार फिर कहा जायगा ॥१८॥ इसमें सात सुवर्ण कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य और पारियात्र हैं। ये ही सात कुल पर्वत कहे गये हैं ॥१९॥ इन सात कुल पर्वतों के समीप में रहने वाले सहस्रों अन्य पर्वत हैं जोकि अभिनव [सुन्दर-नूतन] समस्त गुणों से युक्त, विपुल और चित्र शिखरों वाले हैं ॥२०॥ मन्दर पर्वतों में बहुत ही श्रेष्ठ पर्वत है। वैहार, दर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक, वैद्युत पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुर पर्वतः।
गन्तुप्रस्थ कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ॥२२
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा।
श्रीपर्वतश्च कारश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ॥२३
अन्ये तेभ्य परिज्ञाता ह्रस्वा स्वल्पोपजीविनः।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यशः ॥२४
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धु सरस्वती।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥२५
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पाद निःसृता ॥२७॥
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च।
वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥२८
परा चर्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृता. ॥२९

इनके अतिरिक्त वातन्धम नाम वाला गिरि है तथा पाण्डुर पर्वत है गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोधनगिरि, पुष्पगिरि, उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, कार, कूटशैल गिरि हैं ॥२३॥ उन से अपर जो पर्वत हैं वे छोटे और स्वल्प उपजीवी परिज्ञात हुए हैं। जनपद उनसे मिले हुए हैं जो नित्य ही आर्य और

म्लेच्छों से युक्त रहते हैं ॥ २३-२४ ॥ जिसके द्वारा ये नदियाँ पाई जाती हैं उन नदियों के नाम—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धुतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षु और लोहित ये सब नदियाँ हिमवान् के पाद से निकली हुई हैं। २५-२६-७ ॥ वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सदोरा, महती, परा, चर्मवती, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा, अवन्ती—ये पारियात्राश्रया कही गई हैं ॥२८-२९॥

शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ॥३०
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥३१
सितेरजा शुक्तिमती मकुणा त्रिदिवा क्रमात् ।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ॥३२
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ॥३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वैण्यथ वन्जुला ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिः सृताः ॥३५

और शोण महान् नद है तथा नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पली, विपाशा, जम्बुला, बालुवाहिनी, सितेरजा, शुक्तिमती, मकुणा, त्रिदिवा, ये सब नदियाँ ऋक्षपाद नामक पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली और मणि के समान स्वच्छ जल वाली नदियाँ हैं ॥ ३०-३१-३२ ॥ तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मद्रा, निषधा नदी, वेन्वा, वैतरणी, शितिबाहु, कुमुद्वती, तोया महागौरी दुर्गा अन्तशिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्याचल के पाद से प्रसूत होने वाली और शुभ तथा परम

पवित्र जल वाली हैं ॥ ३३-३४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिण पथ की ओर वाली तथा सह्याद्रि पर्वत के पाद से निकली हुई हैं ॥ ३५ ॥

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजला. शुभाः ॥३६
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला. त्रिदिवा च या ।
लाङ्गुलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८
सर्वा पुण्या. सरस्वत्यः सर्वा गङ्गा. समुद्रगा. ।
विश्वस्य मातर सर्वा जगत्पापहराः स्मृता. ॥३९
तासा नद्युपनद्य ऽपि शतशोऽथ सहस्रश. ।
तास्त्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधा. शतपथेश्वरैः ।
वत्साः किसष्णा. कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशला. ॥४१
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिता. ॥४२

कृतमाला, ताम्रवर्णा, पुष्पजाती, उत्पलावती, ये समस्त नदियाँ मलयाचल से उत्पन्न होने वाली तथा शुभ एवं शीतल जल वाली हैं ॥ ३६ ॥ त्रिसामा, ऋतुकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वंशधरा] महेन्द्र तनया अर्थात् ये सब महेन्द्राचल से उत्पन्न होने वाली नदियाँ कही गई हैं ॥ ३७ ॥ ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा, पलाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से प्रसूत होने वाली हैं ॥ ३८ ॥ ये सभी नदियाँ पुण्य अर्थात् परम पवित्र हैं. सरस्वती हैं और सब गङ्गा एवं समुद्र में जाने वाली हैं। ये सब विश्व की माताएं और जगती तल के समस्त पापों का हरण करने वाली कही गई है ॥ ३९ ॥ इन नदियों से निकलने वाली उपनदियाँ भी सैकड़ों तथा सहस्रों ही हैं। वे ये सब कुरुपाञ्चाल, शाल्व और सजाङ्गल हैं ॥ ४० ॥ शूरसेन.

द्रकारा और शतपथेश्वरो के द्वारा बोधा वत्सा किसष्णा, कुल्या, कुन्तला, ाशिकोसला है ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर पार्श्व में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं मध्यदेश मे ये प्राय जनपद कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरम ॥४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मित ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽय वृक्षा ओषधयस्तथा ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ।
अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम ॥४५
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा. कालतोयकाः ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिका ॥४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ।
शका ह्रदा कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिका. ॥४७
रमटा रद्धकटकाः केकया दशमानिकाः ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥४८
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा. प्रियलौकिकाः ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरुका ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडै सह । ५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातय. ।
तोमरा हसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ॥५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ॥५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी मे और समस्त इस भूमण्डल मे यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है। यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एव ओषधियाँ सत्र भरद्वाज मुनि

ने ही उसके प्रिय करने के लिये अवतरित किये है। अन्तःपुर वन का दृश्य उसने परम सुन्दर उत्पन्न किया है ॥ ४४ ४५ ॥ वाह्लीक, वाटधान, आभीर कालतोयक, अपरीत, पह्लव और चर्म खण्डिक शूद्र जाति वाले लोग होते हैं। गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, हृद, कुलिन्द, परित, हारपूरिक रमट, रद्ध कटिक, केकय, दशमानिक य क्षत्रियोपनिवश तथा वैश्य एवं शूद्र कुल हैं ॥ ४६-४७ ४८ ॥ काम्बोज दरद, बर्बर, प्रियलौकिक, पीन तुषार, पह्लव और बाह्यतोदर हैं। आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरक, लम्पाक, तलगा तथा जुहुडो के सहित पीडिक, अपग और अलिमद्र ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर, हसमाग, काश्मीर, तङ्गण, चूलिक आहुक तथा पूर्ण दर्व ये सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे होने वाले प्रदेश होते हैं। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा म होने वालों को श्रवण करो ॥ ४९ ५०-५१-५२ ॥

अन्ध्रवाका मुजरका अन्तर्गिरिवहिर्गिरा ।
तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्तिन ॥५३
ब्रह्मोत्तरा- प्रविजया भार्गवा गेयमर्षका ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्तामलिप्तका ।
माला मगधगोविन्दा प्राच्या जनपदा स्मृता ॥५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथ वासिन ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोल्या कुल्यास्तथैव च ॥५५
सतुरा मूषिकाश्चैव युमना वनवासिका ।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्वश ॥५६
अभीरा सह चैषीका आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकै सह ॥५७
पौनिका मौनिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धना ।
नैर्णिका कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिका ॥५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ।
शूर्पाकारा कोलवना दुर्गा कालीतकै सह ॥५९
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसै सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षरा ॥६०

अन्ध्रवाक सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिर, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्त्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमथक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, ताम्रलसक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा मे कहे गये हैं। ५३ ५४ ॥ इसके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्डय, केरल, चौल्य कुल्य, सेतुक मूषिक, कुमन, वनवासिक है। महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, वैषीक, आटव, वरा, पुलिन्द्र, विन्ध्य भूलीक और दण्डकों के सहित वैदर्भ, पौलिक, मौलिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं। इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो। शूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, मूराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परक्षर हैं॥ ५५- ६।५७-५८-५६-६० ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदा ।
भानुकच्छा. समा ह्येया. सहसा शाश्वतैरपि ॥६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्रश्च अनर्त्ताश्चार्बुदं सह ।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्व विन्ध्यवासिन ॥६२
मालवाश्च करुपाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजा किष्किन्धकैः सह ॥६३
तोसला कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव पटमुरा निषधै सह ॥६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तय ।
एत जनपदाः सर्वे विन्ध्य पृष्ठनिवासिन ॥६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निगर्हरा हसमार्गा क्षुपणास्तङ्गणाः खसा ॥६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वा. सहूदका ।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसै सह ॥६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदु ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।
तेषा निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥६८

नासिक से आद्य लेकर जो नर्मदा के अन्तर में है वे शाश्वतों के द्वा
द्वारा भानुकच्छ के समान हेय हैं । कच्छीय, सुराष्ट्र, आवर्त, अर्बुद ये
परीत होते है। अब विन्ध्य वासियो को श्रवण करो। मालव, करूष मेक
कल, उत्तमर्ण दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर तथा वैदि
पुर, तुम्बुर, षट्सुर, निषध, अनुप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र, अवन्ती ये सम
नपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ६१-६२-६३-६४-६५
सके आगे जो पर्वताश्रयी देश हैं उन्हें बतलाया जाता है निगर्हर, हमसा
रण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व सहूदक, त्रिगर्त, मालव, किरा
मस ये पर्वतो पर आश्रय वाले प्रदेश हैं । कवि लोग भारतवर्ष मे चार
हते हैं उनके नाम कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार होते हैं। उन
सर्ग बतलायेंगे। ऊपर से जानलो ॥ ६६-६७-६८ ॥

॥ प्रकर्ण ३३–ज्योतिष प्रचार (१) ॥

अथ प्रमाण मूर्द्धञ्च वर्ण्यमान निबोधत ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पचमम् ।
अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिता ॥१
जननी सर्वभूताना सर्वभूतधरा धरा ।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रया स्थिता ।
पर्वताकाशसस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्चया ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्नि. सर्वलौकिक ।
अनन्त. पठ्यते चैव व्यापक सर्वसम्भवः ॥५
तथाकाशमनान्म्व रम्य नानाश्रय स्मृतम् ।
अनन्त प्रथित सर्वं वायुश्चाकाशसम्भव ॥६
आप पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता ।
आकाशञ्चापरमधः पुनर्भूमि पुनर्जलम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अध प्रमाण और ऊर्द्ध जो कि
द्वारा वर्ण्यमान होगा उसका श्रवण करें। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और
रवी ज्योति ये अनन्त धातुऐ हैं जो व्यापक कही गई हैं ॥ १ ॥ समस्त
णियो क जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतो को धारण करने वाली
। होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदो से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार
अधिष्ठान एव नगरो वाली है ॥ २ ॥ इस धरा मे नाना भाति के नद, नदी
। पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियों स यह समाकुल हो रही है। यह
थ्वी देवी अनन्त एव बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ॥ ३ ॥ नदी, नद
र समुद्र मे रहने वाले तथा छोटे छोटे आश्रमो मे स्थित, पर्वत एव आकाश
रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर मे रहने वाले जल भी अनन्त हैं उन्हें
बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक मे रहने वाला
अग्नि भी व्यापक एव सर्व मम्भव तथा अनन्त पढा जाता है ॥ ४ ५ ॥ इसी
ार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सु दर एव अनेको का आश्रय कहा
ा है। यह सब अनन्त प्रथित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है
६ ॥ जल पृथिवी म है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश
र है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ॥ ७ ॥

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते।
पुरा सुरैरभिहित निश्चितन्तु निबोधत ॥८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ॥९
दशयोजनसाहस्रमेकमौम रसातलम्।
साधुभि परिविख्यातमेकेक बहुविस्तरम् ॥१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु तत परम्।
तत परतर विद्याद्वितल बहुविस्तरम् ॥११
ततो गभस्तल नाम परतश्च महातलम्।
श्रीतलञ्च तत प्राहु पाताल सप्तम स्मृतम् ॥१२
कृष्णभौमञ्च प्रथम भूमिभागञ्च कीर्तितम्।

पाण्डुभौम द्वितीयन्तु तृतीय रक्तमृत्तिवम् ॥१
पीतभौमश्चतुर्थन्तु पंचमं शर्करातलम् ।
षष्ठं शिलामयञ्चैव सौवर्ण सप्तमन्तलम् ॥१

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है । पहिले देवो ने जो कहा है अब आप जो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ॥ ८ ॥ भूमि, जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है । इस समय रसातल में यह स्थिति जानने के योग्य होती है ॥ ९ ॥ दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है । साधु पुरुषो के द्वारा यह एक-एक बहुत विस्तार से युक्त परिविख्यात है ॥ १० ॥ इनमे जो प्रथम है वह अतल नाम वाला है । इसके आगे सुतल होता है । इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है ॥ ११ ॥ इस के आगे गभस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है । इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ॥ १२ ॥ प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्तित किया गया है । पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है । तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमे लाल मिट्टी है ऐसा भाग है । पीतभौम चौथा भाग होता है । पाचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओं से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ॥ १ -१४ ॥

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ॥१५
पुरञ्च शंकुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसकुलम् ॥१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गाना नगरं श्वापदस्य तु ॥१७
धनञ्जयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः ।
कालियस्य च नागस्य नगरं वरागस्य च ॥१८
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥१६
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ।
महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ॥२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शखाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ॥२१

इनमें जो प्रथम तल है उसमें असुरों के स्वामी का मन्दिर ख्यात है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ॥ १५ ॥ शंकुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यों से सङ्कुल अर्थात् घिरा हुआ है ॥ १६ ॥ अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्षक लिङ्गों का और श्वापद का नगर है ॥ १७ ॥ माहेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कलश का वहाँ पर नगर है ॥ १८ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल में ही जानने के योग्य होते हैं और इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १६ ॥ हे विप्रो ! द्वितीय तल में भी दैत्यों के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ॥ २० ॥ और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शख नाम वाले और गोमुख का पुर एवं नगर है ॥ २१ ॥

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुरुआदस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रूपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥२३
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ॥२४
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ।
अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥२५
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

च्यवनस्य च विज्ञेय राक्षसस्य च मन्दिरम् ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७
विराधस्य च क्रूरस्य पुग्मुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥२८

इसके अतिरिक्त वहाँ पर नील, मेघ और क्रथन राक्षस का पुर है तथा कुरपाद और महोष्णीप का आलय है ॥ २२ ॥ कम्बल नाम का और अश्वतर का पुर है । कद्रू के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल मे ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डुभौम इस नाम वाला है। इसमें भी तनिक सशय नही है ॥ २४ ॥ तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा दैत्येन्द्र अनुह्लाद का नगर है ॥ २५ ॥ वहाँ पर इसके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर, त्रिशिरा का पुर, और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से समाकुल शिशुमार का पुर है ॥ २६ ॥ वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर है सो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ॥२७॥ तथा अत्यन्त क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एव हेमक, नाग तथा पाण्डुरक के भी वहाँ पर पुर हैं ॥ २८ ॥

मणिमन्त्रस्य च पुर कपिलस्य च मन्दिरम् ।
नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥२९
एव पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिस्तले विप्राः पीतभौमे न सशयः ॥३०
चतुर्थे दैत्यसिहस्य कालनेमेर्महात्मनः ।
गजकर्णस्य च पुर नगर कुञ्जरस्य च ॥३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुर सुमालेर्बहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥३२
बहुयोजनसाहस्र बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगर वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥३३
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ।

विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाल का मन्दिर है ॥ २९ ॥ हे विप्रो! इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोकनाथ वृषवक्र के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल घिरा हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कम्बलस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्वण सुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षष्ठे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पातालं सर्वपश्चिमे ।

पुरं वन्ने प्रमुदित नरनारीसमाकुलम् ॥४१
असुराशीविषैः पूर्णमुद्धतैर्देवशत्रुभि
मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै नगर महत् ॥४२

राक्षसेन्द्र एव शाली महामेघ का पुर है। तथा इसी तल में कमदि, नाग, स्वस्तिक तथा जय के भी पुर हैं ॥३६॥ इस प्रकार से पाँचवें शर्करा निलय मे नाग, दानव तथा राक्षसों के सहस्रो ही पुर स्थित हैं सो जानने चाहिए ।।३७॥ अब छठा तल जो है इसमे दैत्यो के पति केसरी का उत्तम नगर है। एव सुपर्वा, सलोमा और महिष के नगर हैं। राक्षसेन्द्र महात्मा उत्क्रोश का नगर है ॥३८॥ वहाँ पर छठे तल मे सुरसा का पुत्र और शतशीर्ष बडी ही प्रसन्नता से युक्त हैं और वहाँ कश्यपका पुत्र श्रीमान् नागराट् वासुकि नाम वाला है ॥३९॥ इस छठे शिलाभौम विख्यात रसातल मे नाग, दानव और राक्षसों के हजारो ही पुर हैं ॥४०॥ अब सातवें तल मे जोकि सब से पीछे वाला है पाताल नाम वाले मे नर और नारियो ने समाकुल बलि का बहुत ही प्रमुदित नगर है ॥४१॥ वहाँ पर असुर और आशीविषो से पूर्ण और उद्धत देवों के शत्रुओं से युक्त मुचुकुन्द दैत्य का एक बहुत बडा नगर है ॥४२॥

अनेकैर्दितिपुत्राणा समुदीर्णैर्महापुरै ।
तथैव नागनगरैर् ऋद्धिमद्भि. सहस्रशः ॥४३
दैत्यानां दानवानाञ्च समुदीर्णैर्महापुरै ।
उदीर्णै राक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ॥४४
पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने ।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामर ॥४५
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुजः ।
विशालभागो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ॥४६
रुक्मशृङ्गारवदातेन दीप्तास्येन विराजता ।
प्रमुर्मुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ॥४७
स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलार्चिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्त कैलासः इव लक्ष्यते ॥४८

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता ।
बालसूर्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ॥४९

वहाँ सप्तम तल मे अनेक दिति के पुत्रों के समुदीर्ण महान् पुरो से, तथा नागो के नगरो मे जोकि बहुत ही ऋद्धिमान् हैं और संख्या मे भी सहस्रो हैं, दैत्य और दानवो के समुदीर्ण महान् पुरो से तथा उदीर्ण राक्षसो के आवास स्थानो से:जोकि बहुत से हैं यह सप्तम तल समाकुल है ॥४३॥४४॥ हे विप्रेन्द्रो बहुत योजनो के विस्तार वाले इस पतालान्त में महात्मा अजरामर रक्तार विम्बाक्ष है ॥४५॥ वहाँ पीन शङ्खोरस्त्रु, नीलवासा, महाभुज, विशालभोग, द्युतिमान्, चित्रमालाधर, बली, रुक्मशृङ्ग से अवदात (प्रदेश) दीप्तमुख से विराजमान सहस्र मुख से प्रभुकुण्डलो शोभा देता है ॥४६॥४७॥ वहाँ पर वह देव लोल (चचल) ज्वाला के अनल की अर्चि वाली जिह्वाओं की माला से परिक्षिप्त कैलास की भाँति दिखाई देते हैं ॥४८॥ वहाँ पर वह दुगुने सहस्र नेत्रो की शोभा से जोकि बाल सूर्य की अभिताम्रता के सदृश है स्निग्धमण्डल शोभायमान होते हैं ॥४९॥

तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते ।
तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि ॥५०
जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ।
विस्तीर्ण इव मेदिन्या सहस्रशिखरो गिरि ॥५१
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबले ।
उपास्यते महातेजा महानागपति स्वयम् ॥५२
स राजा सर्वनागाना शेषो नाम महाद्युतिः ।
सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादाया व्यवस्थिता ॥५३
सर्वमेते कथिता व्यवहार्या रसातला॰ ।
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥५४
अत परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभि ।
देवानामप्यविदित व्यवहारविवर्जितम् ॥५५
पृथिव्यग्न्यम्बुवायूना नभसश्च द्विजोत्तमाः ।
महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र सशयः ॥५६

कुन्द और इन्दु के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे हिमाच्छादित श्वेत पर्वत के शिखर पर तरुण सूर्यों की माला हो ॥५०॥ जटाओं में स्वर्ण द्युति वाले उस अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरों वाला कोई पर्वत फैला हुआ हो ॥५१॥ वह महान् नागों का स्वामी महान् भाग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागों के द्वारा महान् तेज से युक्त स्वयं उपास्यमान होते हैं ॥५२॥ वह समस्त नागों के राजा है और महान् द्युति वाले शेष नाग वाले हैं। वह अहि की तनु अर्थात् शरीर वैष्णवी अर्थात् विष्णु से सम्बन्ध रखने वाली है जोकि मर्यादा में व्यवस्थित है ॥५३॥ ये सातों ही व्यवहार के योग्य रसातल कहे गये है। ये सब सर्वदा देव, असुर, महानाग और राक्षसों के निवास भूमि बने हुए हैं ॥५४॥ इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमें कि बड़े सिद्ध और साधु भी नहीं जा सकते हैं। यह आगे क्या है इसे देवगण भी नहीं जानते हैं और व्यवहार से सर्वथा रहित ही है ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो! ऋषियों के द्वारा पृथिवी, अग्नि जल, वायु और आकाश का महत्त्व इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५६॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु।
प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ॥५७
सप्तानान्तु समुद्राणां द्वीपानान्तु स विस्तरः।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ॥५८
पर्यासपारिमाण्यन्तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः।
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ॥५९
अवति त्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्यः परिभ्रमन्।
अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ॥६०
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः।
महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ॥६१

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलश्चैव भास्करादृद्विगुणः शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बतलाऊँगा । ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते हैं वे दोनों मण्डलों में समास्थित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ सात समुद्रों का और द्वीपों का यह विस्तार है पृथिवी का तो उस विस्तार का अर्धभाग है जो कि बाह्य से अन्य में होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्यान के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते हैं और पर्यान के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ यह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनों लोकों की जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश न म वाला है और अवन करने से ही वह रवि कहा गया है ॥६०॥ इससे आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महित्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ण में निशामित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणं परिमाणतः ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात् साम्प्रतं देवै वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ॥६७

शतार्द्धं कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नत स्मृता ।
तस्या वार्धप्रमाणेन मेरोर्न चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या वार्धविस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्त्तित ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिश कोटिरेकादश स्मृता ॥६९
तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वार्धविस्तर ॥७०

इसलिए पृथिवी का प्रमाण योजनो के साथ बतलाता हूँ । सातद्वीपी और सप्त समुद्रो वाली का विस्तार और जो मण्डल है वह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने सख्या की है । वह आजकल के होने वाले अभिमानियो के द्वारा प्रसख्या के लिये बतलाता हूँ ॥६४॥६५॥ जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय मे होने वालो के तुल्य ही थे । जो देवता थे वे भी न मो और अपने रूपो से सब व्यतीत हो गये हैं ॥६६॥ इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय मे होने वाले देवो से वसुधा तल को बतलाता हूँ । साम्प्रतो के द्वारा ही पूर्णरूप से दिव का सन्निवेश होता है ॥६७॥ यह पृथ्वी पूर्णतया पचास करोड विस्तार वाली कही गई । उसके अर्धं प्रमाण से मेरु का चातुरन्तर होता है ॥६८॥ पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तित होता है । मेरु के मध्य से प्रतिदिशा में ग्यारह करोड कहे गये हैं ॥६९॥ सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है ॥७०॥

पृथिव्या विस्तर कृत्स्न योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्र कोटयस्तु विस्तार सख्यात स चतुर्दिशम् ॥७१
तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्राया पृथिव्यास्त्वेष विस्तर ॥७२
विस्तारात् त्रिगुणश्चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डल
गणित योजनाग्रन्तु कोटयस्त्वेकादश स्मृता
तथा शतसहस्रन्तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु ।
इत्येतद्द्वै प्रसङ्ख्यान पृथिव्यन्तस्य मण्डलम्
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम्

पर्यासः सन्निवेशस्न भूमस्तावत्त् मण्डलम् ॥७५
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मान प्रकीर्तितम् ॥७६
पर्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डललम् ॥७७

पृथिवी का विस्तार पूर्वत योजनो के द्वारा समझना चाहिए। चारों दिशाओं में अर्थात् सभी ओर तीन करोड विस्तार महत्तम किया गया है ॥७१॥ सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्यासी कहा जाता है। ७२॥ इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है। योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड कहे गये हैं ॥७३। उसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र यह्पृथिव्यन्त का मण्डल प्रसंख्यात किया गया है ॥७४॥ दिव मे तारकाओं के सन्निवेश का जितना मण्डल है सन्निवेश का पर्यास और भूमि का मण्डल उतना ही है।।७५॥ इसलिये पर्यास के पारिमाण्य से भूमि का दिव के ही तुल्य होता है ऐसा कहा गया है। सातो लोको का यह मान कहा गया है ॥७६॥ पर्यास के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोको के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ॥७७॥

सस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तव. ।
एतदण्डकटाहस्य प्रमाण परिकीर्त्तितम् ॥७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीय स्वरिति स्मृतः ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तम ॥७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिता. ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणा पृथक् पृथक् ॥८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभि. प्रकृतिभिर्बहिः ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ॥८१
अस्याण्डस्य समन्तात्तु सन्निविष्टो घनोदधिः ।
पृथिवीमण्डल कृत्स्न घनतोयेन धार्यते ॥८२

घनोदधिपरेणाथ धार्य्यते घनतेजसा ।
वाह्यतो घनतेजस्तु तिर्य्यगूर्द्धन्तु मण्डलम् ॥८३॥
समन्ताद्घनवातेन धार्य्यतेमाण प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्त थाकाशमाकाशश्च महात्मना ॥८४

जिनमे जन्तुगण निवास करते हैं उनकी सस्थिति विहित हुई और इ अण्ड कटाह का प्रमाणभी कह दिया गया है ॥७८॥ इस अण्ड के भीतर ये लो हैं, सात द्वीप है और यह पृथ्वी है। तीनों लोकों मे भूर्लोक, भुव लोक औ तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है। महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सात सत्य लोक है ॥७६॥ ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले स्थित होते हैं। ये सातो अपने १० आवरणो से जोकि अति सूक्ष्म हैं पृथ पृथक् धार्यमाण है ॥८०॥ बाहिर दशभाग सविस्त उन प्रकृतियो से और वि समुत्पन्नो से परस्पर मे य धार्यमाण होते हैं। ८१॥ इस अण्ड के चारो अ घना समुद्र सन्निविष्ट होता है। इस समस्त भूमण्डल का घन जल से धारण कि जाता है ।८२। इन घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है बाहिर से घन तेज का तिर्यक् और ऊर्द्ध्व मण्डल होता है ॥८३॥ चारो अ घन वात के द्वारा यह धार्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन वात आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ॥८४॥

भूतादिना वृत्त सर्व भूतादिर्महता वृत ।
वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥८५
पुराणि लोकपालाना प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाण परिवक्ष्यते ॥८६
मेरो प्राच्या दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यवं मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यम सयमने पुरे ॥८८
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमतः ॥८९

दिश्युत्तरस्या मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्या माहेन्द्रपूर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी ॥९०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
स्थिता धर्म्मव्यवस्थार्थे लोकसंरक्षणाय च ॥९१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्ययात्मा एवं अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८४॥ अब लोकपालों के पुरों को क्रम के अनुसार बताया जायगा और ज्योतिर्गण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा में मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके ओकसार वाली हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण में संयमनपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धा-पर मेरु के पश्चिम दिशा में धीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा में मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारों दिशाओं में लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१।

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्या यदा भवति भास्करः ।
वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यमं स्याद्रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्र्यामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते ॥९६
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्व्वाह्णः परिकीर्त्यते ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभि. ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रवि ।
अत. परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

सुखा मे तथा वारुणी मे मध्याह्न में जब अर्यमान होते हैं तब विभावरी और सोमपुरी मे विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस य अमरावती मे रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचल-मी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा मे मध्याह्न मे दिवाकर हुआ करते ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती मे सूर्य उदित हुआ करते हैं तब मन मे आधी रात होती है और वारुणी मे अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह कार अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं। आकाश मे शों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार चारों द्वीपों मे दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न मे और अप-ह्न मे वह दो-दो देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न मे तपते हैं र वह उन्ही रश्मियो के द्वारा वर्धमान होने वालियो से उदित होते हुए ध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई रणों से वह अस्तायन को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाख्या हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावद् पृष्ठे तु पार्श्वयो. ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदय. स्मृत ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

तेषामपरराात्रञ्च ये जना उत्तरापथे ॥८७
देशा उत्तरपूर्व्वा ये पूर्व्वरात्रन्तु तान् प्रति ।
एवमेवोत्तरेप्वर्को भवनेषु विराजते ॥८८

मोक्षपानों में ऊपर के भाग में सब ओर से दक्षिण अयन में काष्ठा
सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें ॥९२॥ दक्षिण प्रक्रम
सूर्य फेंके हुए तीर की भाँति दौड़ लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के च
को लेकर चारों ओर जाया करता है ॥९३॥ जिस समय भगवान् भुवन भास्
अमरावती में मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत सयमन में उदय क
जाता है ॥९४॥ जब रविदेव मध्यगामी होते हैं तब सुखापुरी में अर्ध रा
होती है। सुखा में और इसके अनन्तर वारुणी में उत्तिष्ठ मान होते
वह दिखलाई दिया करते है ॥९५॥ विभा में आधीरात होती है और मध्ये
वह अस्ताचलगामी होते हैं । तब दक्षिण पूर्व वालो का अपराह्न हि
जाता है ॥९६॥ दक्षिणा परदेश वालो का पूर्वाह्न परिकीर्तित होता है । उन
अपर मे रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ मे निवास किया करते हैं ॥९७॥
देश उत्तर पूर्व होते है उनके प्रति पूर्वरात्रि होती है । इसी प्रकार से ही उत्त
भुवनो मे सूर्यदेव विराजमान हुआ करते है ॥९८॥

सुखायामथ वारुण्या मध्याह्ने चार्य्यमा यदा ।
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसु. ॥९९
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ॥१००
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रवि ।
अर्द्धरात्रं सयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥१०१
स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रवि ॥१०२
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुन पुन. ॥१०३
पूर्वाह्ने चापराह्ने तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु स. ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभि. ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रविः ।
अत. परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

सुखा मे तथा वारुणी मे मध्याह्न में जब अर्यमान होते हैं तब विभावरी और सोमपुरी मे विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती में रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्तामलगामी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा मे मध्याह्न मे दिवाकर हुआ करते ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती मे सूर्य उदित हुआ करते हैं तब यमन में आधी रात होती है और वारुणी मे अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह दिवाकर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं। आकाश में ऋक्षों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार चारों द्वीपो मे दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न मे और अपराह्न में वह दो-दो देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्ही रश्मियों के द्वारा वर्धमान होने वालियो से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावद् पृष्ठे तु पार्श्वयो. ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदय. स्मृत. ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोऽग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥११०
लेखयावस्थित सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्द्ध गत. सहस्रन्तु योजनाना स दृश्यते ॥१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद् रात्र् प्रकाशते ॥११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयों के द्वारा पूर्वापर दिखाए ग
गई हैं । जब तक आगे वह तपते हैं तब तक पृष्ठ में पार्श्व का होना होता
॥ १०६ ॥ जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखलाई देते हैं उनका वह उदय क
गया है । जहाँ पर वह प्रकाश को प्राप्त होते है उनका वह अस्त कहा जा
करता है ॥ १०७ ॥ सब वर्षों के उत्तर मे मेरु होता है और लोकालोक पर्व
सब के दक्षिण मे होता है । सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की रेख
से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमान हो जाया करती हैं । इसी कारण
वह रात्रि मे दिखलाई नही दिया करते हैं ॥ १०८ ॥ ग्रह नक्षत्र और ताराअ
का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए । जो अनोद
होता है वही अस्त कहा जाता है ॥ १०९ ॥ अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले
हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है । विशेष दूरी के भाव के होने
कारण से ही उद्यत सूर्य की विरश्मिता होती है अर्थात् किरणों के दर्शन क
अभाव रहा करता है जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमें रक्तता क
अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी
अभाव रहता है ॥ ११० ॥ लेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ-जहाँ पर भी दिखलाई
देता है तो वह सहस्रों योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ॥१११॥
भगवान् भुवन भास्कर के अस्त मे गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि मे
आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि मे दूर से प्रकाशित होती है ॥११२॥

उदितस्तु पुनः सूर्यः अस्तमाग्नेयमाविशत् ।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्तत स तपते दिवा ॥११३
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तेजसी ।

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥११५
अस्त याति पुनः सूर्ये दिन वै प्रविशत्यप- ।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्र विशत्यप ॥११७
दिन सूर्यप्रकाशाख्य तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यापेक्ष्यमह स्मृतम् ॥११८
एव पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्कर. ।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्त्तेनैव गच्छति ॥११९

पुनः जब वह उदित होता है तो सूर्य आग्नेय अस्त मे आविष्ट हो जाता है और वह्नि से सयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन मे तपा करता है ॥११३॥ प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनो ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं । ये दोनो परस्पर मे अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि मे आप्यायित हुआ करते हैं ॥ ११४ ॥ भूमि के उत्तर अर्धभाग मे तथा दक्षिण मे सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल मे आविष्ट हो जाती है । इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते हैं ॥ ११५ ॥ फिर सूर्य के अस्तगत हो जाने पर दिन जल मे प्रविष्ट हो जाया करता है । इसी लिये जल शुक्ल हो जाते हैं । रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ॥ ११६ ॥ इस क्रम के योग से भूमि के अध दक्षिणोत्तर मे सूर्य के उदयास्तमान वेला मे अहोरात्र जल मे प्रवेश किया करते हैं ॥ ११७ ॥ जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव मे अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है । इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यापेक्ष्य है अर्थात् जिस समय मे सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ॥ ११८ ॥ इस प्रकार से जब

सूर्य पुष्कर के मध्य से सर्पण किया करता है तो पृथ्वी का त्रिंशांशक मुहूर्त में
में ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इमा संख्यां निबोधत ।
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठाया तन्निबोधत ।
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डल विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६

योजनाग्र से मुहूर्त्त की इस संख्या को समझ लो । वह पूर्ण सौ स
को इकत्तीस कही गई है ॥ १२० ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक पूर्
यह मुहूर्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति
योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब सूर्य मा
दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १२२ ॥ दक्षिण दिशा से जब सर्प
करता है इसे भी समझ लो । नौ करोड़ योजनों से परिमण्डल प्रसंख्यात

तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः ।
श्रवणे चोत्तरा काष्ठाश्चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायाश्च काष्ठाया प्रमाण मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनाना तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूल चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रय ।
अभिजित्पूर्वत. स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रय ॥१३०
काष्ठयोरन्तर यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुन ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तर शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशत्त्रयोजनैः ।
काष्ठयोरन्तर ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण मे उत्तर दिशा मे जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओ का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा मे मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजो के द्वारा योजनाग्र से एक करोड प्रसंख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनो के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ मे अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति मे नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओ मे जो अन्तर होता है उनको पुन. योजनो के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकत्तीस और अन्य तैतीस अधिक अर्थात् तैतीस योजनो के द्वारा योजनाग्र मे दिशाओं का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओ मे और लेखाओ में जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

करते हैं उनकी संख्या करके योजनों के द्वारा बतलाया जायगा उन्हें भी आप लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकैकमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्तति: ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्तति ॥१३४
लेखयो: काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयो: स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ॥१३५
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलाना शत पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१३६
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसु: ।
प्रमाण मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनाना सहस्राणि समासत ।
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनाना प्रकीर्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यात योजनैर्मण्डल हि तत् ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उनका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत है । सहस्र अतिरिक्त है इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर है ॥ १३४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं में यह अन्तर कहा गया है । और अभ्यन्तर तो उत्तरायण में मण्डलों का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ बाहु से दक्षिण में निरन्तर क्रम के अनुसार इनमें अस्सी मण्डलों के ऊपर में तथा उसी प्रकार से दक्षिण में भी विभावसु विचरण किया करता है । मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६-१३७ ॥ संक्षेप में इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दोनों योजन कहे गए हैं ॥ १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनों के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ १३९ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक् (तिरछा) विधान किया जाता है । सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया

मे जाया करता है ॥१४५॥ अठारह मुहूर्त्तों मे उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उसमे भी वह बहुत धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ॥ १४६ ॥ सूर्य नक्षत्रो के त्रयोदशार्ध को अर्ध से चरण किया करता है। रात्रि मे अठारह मुहूर्तों मे नक्षत्रो का चरण किया करता है ॥ १४७ ॥ इसके अनन्तर उन दोनो से जिस प्रकार शुष्क और मन्द चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भाँति मध्य मे स्थित ध्रुव जैसे भ्रमण करता है ॥ १४८ ॥ तीस मुहूर्त्तों को ही अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य मे वह मण्डलो का भ्रमण किया करता है ॥ १४९ ॥

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥१५०
उभयो काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥१५१
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता ।
तथैव च पुनर्नक्त शीघ्रा सूर्यस्य वै गति. ॥१५२
दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्र विधीयते ।
गति सूर्यस्य नक्त वै मन्दा चापि तथा स्मृता ॥१५३
एव गतिविशेषेण विभजन् राज्यहानि तु ।
तथा विचरते मार्ग समेन विषमेण च । १५४
लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ।
भजन्नसावहोरात्रमेवङ्गतिविशेषणैः ॥१५५
दक्षिणे नागवीथ्याया लोकालोकस्य चोत्तरम् ।
लोकसन्तारको ह्येप वैश्वानरपथाद्वहिः ॥१५६
पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ।
पार्श्वयो. पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वतः ॥१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहीं पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का जान लेना चाहिए। वह वहीं पर ही परिवर्त्तन किया

करता है ॥ १५० ॥ दोनो दिशाओ के मध्य मे मण्डलो का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ॥१५१॥ उत्तर प्रक्रम मे चन्द्रमा की गति दिन मे मन्द कही गई है । इसी भाँति रात मे सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ॥ १५२ ॥ दक्षिण प्रक्रम मे दिन मे शीघ्र होने का विधान होता है । रात्रि मे सूर्य की गति मन्द उसी भाँति कही गई है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण किया करता है ॥ १५४ ॥ लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारो दिशाओं मे लोकपाल हैं । उनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषणों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ दक्षिण में नागवीथी मे लोकालोक पर्वत के उत्तर मे वैश्वानर पथ से बाहिर यह लोक सन्तारक है ॥ १५६ ॥ पृष्ठ मे सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भाँति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों मे सब ओर तब तक प्रकाश दिया करती है ॥ १५७ ॥

योजनाना सहस्राणि दशोर्द्ध न्तुच्छ्रितो गिरि. ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वत परिमण्डलः ॥१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणै सह ।
अभ्यन्तर प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरे. ॥१५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वत परम् ।
लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्य परिग्रहम् ।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्टयोर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रि स्मृता विप्रै र्व्युष्टिश्चापि त्वह स्मृतम् ॥१६१
सूर्यं हि ग्रसमानाना सन्ध्याकाले हि रक्षसाम् ।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषा दुरात्मनाम् ।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरण तथा ॥१६२
तिस्र कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।

प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुदयन्ति दिने दिने ।
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।।१६३
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ।
सन्ध्येति समुपासन्त. क्षेपयन्ति महाजलम् ।।१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ।।१६५

यह गिरि दस सहस्र योजन उच्छित ऊपर को है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ।। १५८ ।। लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य तथा ताराओ के गणो के साथ समस्त ग्रह प्रकाश दिया करते हैं ।। १५६ ।। इतनाही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है। लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ।। १६० ।। जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का सन्धान करता है इसी लिये उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं। विप्रो के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ।। १६१ ।। सन्ध्या के समय मे सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसो को प्रजापति के नियोग से शाप है देह का अक्षयत्व तथा वे मरण को प्राप्त कराये गये थे ।। १६२ ।। मन्देहा नाम वाले विख्यात राक्षस तीन करोड़ है जो दिन-दिन मे उगने वाले सूर्य की प्रार्थना करते हैं। ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ।। १६३ ।। इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महा-दारुण युद्ध हुआ था। तब ब्रह्माजी, देवगण, और सत्तम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ।। १६४ ।। ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है। उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते है ।। १६५ ।।

तत पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनाना सहस्राणि ऊर्द्धं मुत्तिष्ठते शतम् ।।१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थं समरीचिभिः ॥१६७
काष्ठानिमेषा दश पंच चैव त्रिशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता राज्यहनी समेते ॥१६८
ह्रासवृद्धी त्वह भागैर्दिवसाना यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमानन्तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ॥१६६
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृत कालो भागस्त्वह्नः स पचमः ॥१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमुहूर्त्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्त स्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ॥१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृत. ।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ॥१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उत्थित होते हैं ॥ १६६ ॥ इसके पश्चात् वालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणो के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ॥ १६७ ॥ दश और पाँच निमेषो की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओ से कलान्त होता है और तीस कलाओ का एक मुहूर्त होता है तथा तीस मुहूर्तो की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ॥ १ ८ ॥ दिन के भागो से यथाक्रम दिनो को ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि मे सम कही गई है ॥ १६६ ॥ इसके अनन्तर तीन मुहूर्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती हैं । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है वह दिवस का पाचवाँ भाग होता है ॥ १७० ॥ उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त वाला मध्याह्न होता है ॥ १७१ ॥ उस मध्यन्दिन काल से अपराह्न यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त होते है ॥ १७२ ॥

अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्त्ताह्वे मुहूर्त्तास्त्रय एव च ॥१७३
दशपचमुहूर्त्त वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

दशपञ्चमुहूर्त्ताद्वि रात्रिन्दिवमिति स्मृतम् ॥१७४
वद्धते ह्रसत चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसत रात्रि रात्रिस्तु ग्रसत त्वह ॥१७५
शरद्वसन्तयोमध्ये विषुवन्तद्विभाव्यत ।
अहोरात्र कलाश्च व सम्न साम समश्नुत ॥१७६
तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयत ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतु ।
ऋतुत्रयमयन स्याद्द्व ऽयने वर्षमुच्यते ॥१७७
निमेषादिकृत रात्र काष्ठाया दश पञ्च च ।
व त्रायाश्त्रिश त काष्ठा मात्राशीतिद्वयात्मिका ॥१७८
शतघ्नैकोनकाश्विशन्मात्रात्रिशत् षडुत्तरा ।
द्विषष्टिभाक त्रयोत्रिंश मात्रायाऽन्व चला भवेत् ॥१७९
चत्वारिंश सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युति ।
सप्ततिश्चापि तत्रैव नवति विद्धि निश्चये ॥१८०

अपराह्न के व्यतीरात हो जाने पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता ह । दश पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७३ ॥ दश पञ्च मुहूर्त वाला विषुवान् म अह कहा गया है । दश पाँच मुहूर्त से रात्रि दिन यह कहा गया है ॥ १७४ ॥ दक्षिण और उत्तर अयन में रात्रि दिन बढ़ता है और ह्रास को प्राप्त होता ह । अह रात्रि का ग्रास करता ह और रात्रि अह का ग्रास किया करती है । इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ॥ १७५ ॥ शरद और वसन्त के मध्य म वह विषुवत् विभावित होता है । अहोरात्र और कला म त इसको सोम समया किया करता है ॥ १७६ ॥ उसी प्रकार म प द्रह दिन का पक्ष कहा जाता ह । दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों के अन्तर म एक ऋतु होता है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनों का एक वर्ष कहा जाया करता है ॥ १७७ ॥ दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह काष्ठा का निमेषादि कृत काल होता ह । –मात्रा कला का काष्ठा और अस्सी (अस्सी) द्वयकी मात्रा होती है ॥ १७८ ॥

न्ध्वैकोनका त्रिंशतपद् उत्तर वाली मात्रा बासठ के मजन वाली तेईस मात्रा चन होती है ॥ १७९ ॥ चालीस सहस्र सो और आठ विद्युति सत्तर और वहाँ ही नव्वे निश्चय से जानो ॥ १८० ॥

चत्वार्येव शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसयुगे ।
चराशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१
सवत्सरादय पञ्च चतुर्मानविकल्पिता ।
निश्चय सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥१८२
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषा कालस्तु परिसज्ञितः ॥१८३
त्रिंशशता भवेत्पूर्णं पर्वणा तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशत्रिंशदुदयो भास्करस्य च ।१८४
ऋतवस्त्रिंशत सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिंशत् शत चापि षष्टिर्मासाश्च भास्कर ॥१ ५
त्रिंशदेव त्वहोरात्र स तु मासश्च भास्कर ।
एकषष्टिस्त्वहोरात्रा ऋतुरेको विभाव्यते ॥१ ६
अह्नान्तु त्र्यधिकाशीतिः शत चाप्यधिक भवेत् ।
मान तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेय भुवनस्य तु ॥१८७

वैधसयुग विद्युति मे चारसौ ही कहते हैं । यहाँ चराश जानना चाहिए । यहाँ पर नालिका कारण है ॥ १८१ ॥ सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ॥ १८२ ॥ प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पाचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसज्ञित होता है ॥ १८३ ॥ तीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है । ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ॥ १८४ ॥ सौर ऋतुएं तीस और दश ही अयन होते हैं । पैंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर है ॥ १८५ ॥ तीस ही अहोराव का वह भास्कर मास होता है । इकसठ अहोराव

एक दनु विभावित होता है ॥ १८६ ॥ दिनो के तिरासी और सौ अधिर हार्‌... है । यह चित्रभानु भुवन का मान समझना चाहिए ॥ १८७ ॥)

सौरसौम्य तु विज्ञेय नक्षत्र सावन तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि यै पुराण विभाव्यते ॥१८८
खे तस्यात्तरतश्चैव शृङ्गवान्नाम पवत ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ॥१८९
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सवतश्चैव विश्रुत ।
एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तित ॥१९०
तस्य वै सर्वत शृङ्ग मध्यमन्तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिण राजतश्चैव शृङ्ग तु स्फटिकप्रभम् ॥१९१
सर्वरत्नमय चैक शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ।
एव कूटैस्त्रिभि शैले शृङ्गवानिति विश्रुत ॥१९२
यत्तद्विषुवत शृङ्गन्तदक प्रतिपद्यते ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमा गतिमास्थित ।
अहस्तुल्यामथो रात्रि करोति तिमिरापह ॥१९३
हरिताश्च हया दिव्यास्त नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्तै र्गभस्तिभि ॥१९४
मेषान्त च तुलान्ते च भास्करोदयत स्मृता ।
मुहूर्त्ता दश पञ्चैव अहोरात्रिश्च तावती ॥१९५

सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन इन्हे समझ लेना चाहिए । ये चार ...ाम हैं जिनमे पुराण विभावित होता है ॥ १८८ ॥ आकाश मे उसके उत्तर मे शृङ्गवान् नाम का एक पवत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊँचे हैं कि ...ानों वे आकाश तल का स्पर्श करते हैं ॥ १८९ ॥ उन्हीं से शृङ्गवान् यह नाम ...ब ओर विश्रुत हुआ है । एक मार्ग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा ...या है ॥ १९० ॥ उसके शिखर सब ओर है उनमे जो मध्यम शृङ्ग है वह ...हेरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चादी का) है जो कि स्फटिक की ...भा वाला है ॥ १९१ ॥ उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नों से

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटों के शैलों से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ॥ १९२ ॥ जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरत् और वसन्त के मध्य में मध्यम गति में आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ॥ १९३ ॥ दिव्य हरित अश्व महारथ में नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणों से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ॥ १९४ ॥ मेष के अन्त में और तुला के अन्त में भास्करोदय कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त की उतनी ही अहोरात्रि होती है ॥ १९५ ॥

कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत् ।
विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांश निशाकरः ॥१९६
विशाखायां यदा सूर्यश्चरत्तेऽश तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ॥१९७
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः ।
सूर्येण विषुवं विद्यात् कालं सोमेन लक्षयेत् ॥१९८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख मेतत्तु दवतम् ॥१९९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्तकाः ।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्र. शुचिश्चायनमुत्तर स्य द् ।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः ।
सह.सहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥२०१
सवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पश्चाद्दा ब्रह्मण. सुताः ।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तरा स्मृता ॥२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओं का सूर्य प्रथमांशगत होता है तब विशाखाओं के चतुर्थांश में निशाकर होता है ॥ १९६ ॥ विशाखा में जब सूर्य तृतीय अंश में

चरण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर में स्थित जानना चाहिए ॥ १९७ ॥ उस समय देव को विषुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य को विषुव समझे और काल को सोम के साथ लक्षित करे ॥ १९८ ॥ जब रात्रि और दिन समान होवे और जब विषुवद् होवे तब विषुवान् में भी पितरों को दान देने चाहिये और विशेष करके ब्राह्मणों को देवे क्योंकि ये देवताओं का मुख हुआ करता है ॥ १९९ ॥ ऊन रात्र और अधिमास, कला, काष्ठा और मुहूर्त्त पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति जाननी चाहिये ॥ २०० ॥ तप और तपस्या मधु और माधव, शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु सहोर्ज और सह तथा सहस्य दक्षिण अयन जान लेवे ॥ २०१ ॥ इसके पश्चात् सम्वत्सर जाने जो कि पञ्च अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु जाने, जो अन्तर होते हैं वे ऋतु कहे गये हैं ॥ २०२ ॥

तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्य पर्वणः ।
तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदैवहितं सदा ॥२०३
एवं ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानवः ।
तस्मात् स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्वगं सदा ॥२०४
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ॥२०५
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
सुधामा चैव वैराजः कर्द्दमः शङ्खपस्तथा ।
हिरण्यलोमा पर्जन्यः केतुमान् जातनिश्चयः ॥२०६
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्त्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२०७
उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः ।
लोकस्य सन्तानकरा पितृयाणे पथिस्थिताः ॥२०९

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुखा जाननी चाहिए। उससे उत्तर और देवों के हित वाला विषुव सदा जान लेना चाहिए ॥ २०३ ॥ मान ा इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर दैव तथा पितर सम्बन्धी कार्य में मोह हीं करना चाहिये। इससे समस्त मे गमन करने वाला सदा प्रजाओं का वेषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त लोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य में लोकपाल स्थित होते हैं ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतसम्प्लव पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्दम, शङ्कर, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान, जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्त्र, निष्परिग्रह–ये लोकालोक में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६–२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर में और अजवीथी के दक्षिण में वैश्वानर पथ से बाहिर वह पितृगण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग में स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भ कृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।।२१०
चलितन्ते पुनर्द्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।।२११
जायमानास्तु पूर्वो वै पश्चिमाधा गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।।२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्द्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावता प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ।।२१३
लोकसव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रवृत्या च मैथुनोपगमेन च ।।२१४
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।।२१५

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है। लोक की कामना वाले प्रारम्भ किया करते हैं उनका वह दक्षिण पन्था होता है ॥ २१० ॥ वे चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग-युग मे स्थापित किया करते हैं और वह सन्तति से, तप से, मर्यादाओ से और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ॥ २११ ॥ पश्चिमो के गृहो मे पूर्व जायमान होते हैं, और पश्चिम पूर्वों के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं। इस प्रकार से आवर्त्तमान वे भूतसप्लव तक ठहरा करते हैं ॥ २१२ ॥ अठ्ठासी सहस्र गृहमेधी मुनियो का सविता का दक्षिण मार्ग है जिसमे वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित हैं तब तक रहते हैं, और क्रिया वालो की प्रसंख्या करनी चाहिए जो कि श्मशानो के सेवन किया करते थे ॥ २१३ ॥ लोक के सव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से, इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से, मैथुन के उपगम से तथा यहाँ पर कायकृत से और विषय के सेवन से इतने ये कारण हैं जिन से सिद्ध लोग श्मशानो के सेवन किया करते थे। वे मुनिगण प्रजाओ के इच्छा वाले यहाँ द्वापरो मे उत्पन्न हुए ॥ २१४-२१५ ॥ नागवीथी के उत्तर मे और जो सप्तर्षियों के दक्षिण मे उत्तर सविता का पन्था है वह देवयान कहा गया है ॥ २१६ ॥

यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सततन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ॥२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेपामप्यूर्द्धरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात ॥२१८
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्व हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ॥२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्या पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्द्धरेतसः ॥२२०
ऊर्द्धोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥२२१

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णो परम पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधका ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं । निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होने मृ यु को जीत लिया है ॥ २२७ ॥ उन ऊर्द्ध्वरेताओं के अठ्ठासी सहस्र हैं जो अर्यमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसम्प्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते हैं ॥ २१८ ॥ इन सब कारणो से जो कि शुद्ध हैं वे अमृतत्व का सेवन करते थे । और भूतसम्प्लव तक स्थित रहने वालो का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१९ ॥ अयममार्गगामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है । ब्रह्म हत्या और अश्वमेधो से पुण्य, पाप कृत अपर है । भूतसम्प्लव के अन्त मे ऊर्द्ध्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं । ऊर्द्ध्वोत्तर ऋषियो के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है । यह व्योम में भास्वर त सरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नही करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है । वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे नु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनय. पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चार ग्रहाणाञ्चैव सर्वश ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहन ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तद् समोहयते प्रजाः ॥५

योऽसौ चतुर्दिश पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव निसर्ग में जो उदार थे उनकी व्याख्या कर दी गई है। भविष्य में जितने सब हैं उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य, चन्द्रमा का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है ? ॥२॥ ऋषियों ने कहा—दिविमण्डल में ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं। ये सब तिर्यग् व्यूह से तथा असङ्कार में भ्रमण किया करते हैं ? और उनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा वे स्वयं ही भ्रमण किया करते हैं ? ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते हैं सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये। इस भूत सम्मोहन के सुनने की इच्छा हमें होती है ॥ ४ ॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवें। जो यह प्रत्यक्ष में देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥ ५ ॥ जो यह चारों दिशाओं में शिशुमार पुच्छ में व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढ़ीभूत पुत्र दिव में ध्रुव है ॥ ६ ॥ वह ही स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्र और आदित्य दोनों को भ्रमण कराया करता है और उस भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र अनुगमन चक्र की भाँति किया करते हैं ॥ ७ ॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च ॥९
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥१०
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥११

ध्रुवेणाधिकृताश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरण स कालाग्निर्दिवाकर ॥१२
परिवर्त्तं क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिश ।
सूर्य किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वश ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमा ॥१३
आदित्यपीत सूर्याग्ने सोम सक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधान प्रवर्त्तते ॥१४

ध्रुव के मत से यह भगण स्वयं भ्रमण किया करता है और सूर्य चन्द्र और तारागण नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ८ ॥ वे सब वातानीकपूर्ण बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए हैं। उनका योग भेद और कालचार होता है ॥ ९ ॥ अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन में अन्य उत्पात एवं विपुव ग्रह वर्ष यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १० ॥ वर्षा, घाम, हिम रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं का शुभ एवं अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ ध्रुव के द्वारा अधिकृत जो हैं उनको अपावृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणों वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ॥ १२ ॥ हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओं से दिशाओं में आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता है ॥ १३ ॥ सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम सक्रामित किया करता है। वायुयुक्त नाड़ियों से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्तते ॥१६
सन्धारणार्थं भूताना मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्त त्रैलोक्य सचराचरम् ॥१७
विश्वेशो लोककृद्देव सहस्रांशु प्रजापति ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकर ॥१८

यनस्त्वृतुवशान् काले परिवर्त्तो दिवाकर ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शुक्ला शुक्लगभस्तिभि ॥२४

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्तत ॥२५

तता वर्षंति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसभवम् ॥२६

मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्व व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदु ॥२७

मेघाना पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तपा वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियो क शरीरो मे जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जगम और स्थावरों मे सवत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ ॥ उससे फिर बादलो की रचना होती है य जल का स्थान ही कहा गया है। सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतो से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र ■ वायु के सयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं। क्योकि फिर ऋतु के वश से काल मे दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है। शुक्ल किरणो के द्वारा मेघा से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रो मे रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं य जल समस्त प्राणिया के हित के लिय ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो क हित सम्पादन करने के लिय छ मास तक यह जल भूमि पर वपता रहता है। और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २० ॥ मेहन करने के कारण स यह मिहि धातु से मघत्व को प्रकट किया करता है। ■ जलों को भ्रशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुन मघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है। आग्नेय,

सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमात्प्रभस स्रुतम् ।
सोमाधार जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम् ॥१९
सूर्यादुष्ण निस्रवते सोमाच्छीत प्रवर्त्तते ।
शीतोष्णवीर्यौ द्वावेनौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥२०
सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमा ॥२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे में सूर्य अवस्थित रहता है। मेघ वायु के निघात प्राप्त कर उसमें ही भूमि पर जल का त्याग किया करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है। वही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियों को सन्धारण करने के लिए यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी, लोकों की रचना को करने वाला देव, सहस्र किरणों वाला, प्रजापति समस्त लोक का धाता, प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स्रुत होता है। यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है। यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है। सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है। ये दोनों शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनों ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ॥२०॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है। हे द्विजोत्तमो ! समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च या ।
तेष सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वश ॥२२
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्राम्भसा स्मृतम् ।
आर्यन्तजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥२३
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तय. ।

यनस्त्वृतुवशान् काले परिवर्त्तो दिवाकर ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शक्ला शुक्लगभस्तिभि ॥२४

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सर्वभूनहितार्थाय वायुभिश्च समन्तत ॥२५

तता वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसम्भवम् ॥२६

मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्व व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदु ॥२७

मेघाना पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तपा वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियो के शरीरो मे जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जगम और स्थावरों म सवत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ । उससे फिर बादलो की रचना होती है य जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतो से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के सयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं । क्योकि फिर ऋतु के वश से काल मे दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है । शुक्ल किरणो के द्वारा मेघों से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रो मे रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं य जल समस्त प्राणिया के हित के लिय ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छैं मास तक यह जल भूमि पर वर्षता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २६ ॥ मेहन करने के कारण स यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलो को भ्रंशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुन मेघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

ब्रह्मज और पक्षज, ये पृथक प्रकार वाले होते है। घन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ॥ २८ ॥

आग्नेयास्त्वर्णजा प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्त्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिता ॥२६
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिन ।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च ॥३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवा ।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिन ॥३१
मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगा ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुन ॥३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिण ॥३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनि श्वाससम्भवा ।
ते हि विद्युद्गुणोपेता स्तनयन्ति स्वनप्रिया ॥३४
तेषा शब्दप्रणादेन भूमि स्वाङ्करुहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ।
तेष्विव प्रीतिमासक्ता भूताना जीवितोद्भवा ॥३५

जो आग्नेय मेघ होते हैं वे अवणज होते हैं और उनका उमसे प्रवर्त्तन होता है। शीत दुर्दिन वात जो य उसमे अपने गुण हैं वे व्यवस्थित होते हैं ॥ २६ ॥ महिष वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी मे आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं ॥ ० ॥ जीमूत नाम वाले वे मेघ इनसे ही जीव सम्भूत होते हैं। ये विद्युद्गुण स रहित और जल धारा के विलम्बी होते हैं ॥ ३१ ॥ मूक अर्थात् गजन न करने वाले घन अर्थात् अत्य धिक गहरे महान काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश में अनुगमन करने वाले ये एक कोश मात्र स अथवा आधे कोश से भी वर्षा किया करते हैं ॥ ३२ ॥ ये मेघ पवताग्र नितम्बो में वर्षते हैं और रमण किया करते हैं। बलाकाओं के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओ के गर्भधारी हुआ करते

है ॥ ३३ ॥ जो ब्रह्मज मेघ होते हैं वे ब्रह्मा के निश्वास से उत्पत्ति वाले हुआ करते हैं। वे विद्युद्‌गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) प्रिय होते हैं और गर्जना किया करते हैं ॥ ३४ ॥ उनके शब्द प्रमाण से ही भूमि अपने अङ्कुरहों के उद्गम वाली हो जाती है। राजा के द्वारा अभिषिक्त की हुई रानी के समान ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है। उनमें यह भूमि प्रीति को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ॥ ३५ ॥

जीमूता नाम ते मेघास्तेभ्यो जीवस्य सम्भव ।
द्वितीय प्रवह वायु मेघास्ते तु समाश्रिता. ॥३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धार्द्धाद्विकृतादपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषा धारासाराः प्रकीर्तिता ।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वताना महौजसाम् ।
कामगाना प्रवृद्धाना भूताना शिवमिच्छता ॥३८
पुष्करा नाम ते मेघाः बृहन्तस्तोय मत्सरा ।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥३९
नानारूपधराश्चै व महाघोरतराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टे. स्रष्टार सवर्त्ताग्नेर्नियामकाः ॥४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्तिता ।
अनेकरूपसस्याना पूरयन्तो महीतलम् ।
वायु पर वहन्त स्युराश्रिता कल्पसाधका. ॥४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्यामवस्तदा ।
तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्र स्वयम्भुव. ।
ता-येत्राण्डकपालस्य सर्वे मेघा. प्रकीर्तिताः ॥४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं। ये सार्द्धार्द्ध त्रिकृत योजन मात्र से भी उस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि उसे धारासार कहा गया

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं सवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और ये तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारों मुखो वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेपामाप्यायन धूम' सर्वेपामविशेषतः ।
तेपा श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजाना पर्वतानाञ्च मेघाना भोगिभिः सह ।
कुलमेक पृथग्भूत योनिरेका जल स्मृतम् ॥४४
पजन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवा. ।
तुपारवृष्टि वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेपा वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरत्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्याममृतजला पुण्या त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम्
तस्या विष्पन्दजन्तोय दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृत.।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षि
पुण्ड्र नाम समाख्यात नगर तत्र
तस्मिन्निपतित वर्ष यत्तुपारसमुद्भव

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतो के पक्षो का छेदन कर दिया था।। ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बडे और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपो को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कलान्त वृष्टि के करने वाले एव सवर्त्ताग्नि के नियामक होते है ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते है ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारो मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए हैं॥ ४२ ॥

तेपामाप्यायन धूम· सर्वेपामविशेपतः ।
तेषा श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजाना पर्वतानाञ्च मेघाना भोगिभिः सह ।
कुलमेक पृथग्भूत योनिरेका जल स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवा. ।
तुपारवृष्टि वर्पन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषा वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्यामतिजला पुण्या त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विप्यन्दजन्तोय दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्र नाम समाख्यात नगर तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतित वर्पं यत्तुपारसमुद्भवम् ।

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों को हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं सवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और ये तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। ये सभी अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह ।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्याममृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्यन्दजन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शीकरं सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ।

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं संवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्।
दिव्याममृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथे स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्यन्दजं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम्।

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं सवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारो मुखो वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूम सर्वेषामविशेषतः।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः।
योऽसौ धरत्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्।
दिव्यामतिजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्यन्दजन्तोय दिग्गजाः पृथुभिः करैः।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम्।

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए है ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं सवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायन धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजाना पर्वतानाञ्च मेघाना भोगिभिः सह ।
कुलमेक पृथग्भूत योनिरेका जल स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषा वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्याममृतजला पुण्या त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्पन्दजन्तोय दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यात नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतित वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ।

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छ से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतो के पक्षो का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बडे और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एव सवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और सस्थान वाले तथा ... महीतल को पूर देने वाले है और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय मे हुए थे जब चारो मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए है ॥ ४२ ॥

तेपामाप्यायन धूमः सर्वेपामविशेपतः ।
तेपा श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजाना पर्वतानाञ्च मेघाना भोगिभिः सह ।
कुलमेक पृथग्भूत योनिरेका जल स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुपारवृष्टि वर्पन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेपा वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धरति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्याममृतजला पुण्या त्रिधा स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्पन्दजन्तोय दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्र नाम समाख्यात नगर तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतित वर्पं यत्तुपारसमुद्भवम् ।

ततस्त दावहो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४९

इस सब का भी अयन अविशेष रूप से धूम ही होता है। उनमें परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् मूल एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अवाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश में दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्य, त्रिपथा और स्वर्ग के मार्ग में स्थिति करने वाली गङ्गा धारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उनके जल को विप्रन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरों के द्वारा सीकर का मुचन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड़ के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमें पड़ी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समुद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महतगिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेष तत परम् ।
इहाभ्येति तत. पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाश्चाप्यायतश्चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
भूय एव तु वृष्टीना सृष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा वेष्टितः सूर्यस्ताभ्या वृष्टि· प्रवर्त्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टि सहरते पुन· ॥५२
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अत· सूर्यरथस्याथ सन्निवेश निबोधत ।
सस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

हिरण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ।
नष्टवर्त्मान्धकारेण पट प्रकारै र्वनेमिना ।
चक्रेण भास्वता सूर्य स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥५५
दश योजनसाहस्रो विस्तारायामत स्मृत ।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणत ॥५६

हिमवान पर्वत का अतिक्रमण करके उससे आगे वृष्टि का शेष भाग यहाँ आता है। इसके पश्चात् अपरा त की वृद्धि के लिए वह वर्षा हुआ करती है ॥ ५० ॥ मेघ और आप्यायत यह सब कह दिया गया है। वृष्टियों के सृजन करने वाला सूर्य ही उपदिष्ट किया जाता है ॥ ५१ ॥ ध्रुव के द्वारा आवेष्टित सूर्य होता है, उन दोनों से वृष्टि प्रवृत्त हुआ करती है। ध्रुव के द्वारा वायु फिर वृष्टि का सहार किया करता है ॥ ५२ ॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल मे वार के अन्त मे ध्रुव के द्वारा परिवेष्टित सूर्य मे प्रवेश किया करता है ॥ ५३ ॥ इससे आगे उसके पश्चात् सूर्य के रथ का सन्निवेश को समझ लो। एक चक्र से ससिथत होने वाले पाँच आर से, त्रिनाभिसे युक्त तथा महान् ओज वाले हिरण्मय पथ से अन्वित एव मार्ग के अन्धकार को दूर करने वाले तथा छँ प्रकार की एक नेमि वाले भासमान चक्र वाले रथ से भगवान प्रसर्पण किया करते हैं ॥ ५४–५५ ॥ दश हजार योजन वाला विस्तार तथा आयाम कहा गया है जो ईषा दण्ड प्रमाण से इसके रथोपस्थ से दुगुना होता है ॥ ५६ ॥

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्ग काञ्चनो दिव्यो युक्त परमगै हयै ॥५७
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यत शुक्रस्तत स्थित ।
वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणै सदृशस्तु स ।
तेनाऽसौ सर्पतिव्योम्नि भास्वता तु दिवाकर ॥५८
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ।
सवत्सरस्यावयवै कल्पितानि यथा क्रमम् ॥५९
अहस्तु नाभि सूर्यस्य एकचक्र स वै स्मृत ।
आरा पञ्चर्तवस्तस्य नेमि षडृतव स्मृता ॥६०

रथनीड. स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूवरावुभो ।
मुहूर्ता वन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कला स्मृताः ॥६१
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ईषादण्डः क्षणास्तु वै ।
निमेषाश्चानुकर्षोऽस्यईषा चास्य लवाः स्मृताः ॥६२
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध समुच्छ्रितः ।
युगाक्षकोटी ते यस्य अर्थकामावुभो स्मृतौ ॥६३

उनका वह रथ अर्थ के वश में रहने वाले ब्रह्मा के द्वारा निर्मित किया गया है जोकि सङ्ग रहित, दिव्य और सुवर्ण का है और पर-गमन करने वाले अश्वों से युक्त भी होता है ॥५७॥ अश्व स्वरूप छन्दों के द्वारा जहाँ युक्त है वहाँ पर ही स्थित होता है। यहाँ यह वरुण के रथ के लक्षणों के सदृश ही होता है। भास्वत उसके साथ यह व्योम में दिवाकर गमन किया करता है ॥५८॥ इसके उपरान्त सूर्य के रथ के इन प्रत्यङ्गों को सम्वत्सर के अवयवों के द्वारा यथाक्रम कल्पित किया गया है ॥५६॥ अह अर्थात् दिन सूर्य की नाभि है और वह एक चक्र वाला कहा गया है। पाँच ऋतुएँ ही उसके पाँच आर होते हैं और छः ऋतुएँ उसकी नेमि बताई गई हैं ॥६०॥ अब्द रथ का नीड कहा गया है और दो अयन ही उसके दो कूवर हैं। मुहूर्त उसके बन्धुर है और कला उसकी शम्या है। ऐसा ही बनाया गया है ॥६१॥ काष्ठा उसकी घोणा कही गई है और क्षण ईषादण्ड कहा गया है निमेष इसके अनुरूप हैं और लव इसका ईषा बताया गया है ॥६०॥ रात्रि इस रथ का वरूथ है। धर्म इसका ऊपर की समुच्छ्रित ध्वज है। अर्थ और काम ये दोनों उसके युगाक्ष कोटी कहे गये हैं ॥६३॥

सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुराम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप्चअनुष्टुब् जगती तथा ॥६४
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ।
अक्षो चक्र निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः ॥६५
सहचक्रो भ्रमत्यक्ष- सहाक्षो भ्रमति ध्रुव. ।
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरित. ॥६६

एवमर्थं वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा सयोगभागेन ससिद्धो भास्वरो रथ- ॥६७
तेनाऽसौ तरणिर्देवम्तरसा सर्पते दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै ।
भ्रमतो मण्डलानि स्यु खेचरस्य रथस्य तु ॥६९
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण सगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत् । ७०

सात अश्वो के रूप मे रहने वाले छन्द हैं जो वामभाव से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, वृहती और सातवाँ उष्णिक् है। अक्ष मे चक्र निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ॥६४॥६५॥ चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ मे ध्रुव घूमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ॥६६॥ इस प्रकार से अर्थ के वश से उसके रथ का यह सन्निवेश किया गया है और उस प्रकार से सयोग के भाव से सम्यक्तया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ॥६७॥ उस रथ के द्वारा ही यह सूर्यदेव दिव मे वेग के साथ सर्पण किया करते हैं। उसके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ॥६८॥ विचक्र युगो की दोनो रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ॥६९॥ उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्रेश्वर रज्जु की भाँति सगृहीत होती हैं ॥७०॥

भ्रमन्तमनुगच्छेता ध्रुव रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्ष कोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेपूत्तरायणे ॥७२
वर्द्धते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण सगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥७३

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं। उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती हैं ॥७१॥ जिस प्रकार से कील में आसक्त रज्जु सब दिशाओं में भ्रमण किया करती है रात को रात होने वाली उसकी वे दोनों रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती है ॥७२॥ दक्षिण में मण्डलों का भ्रमण करने वाले उसकी ध्रुव के द्वारा संग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती हैं ॥७३॥ जिस समय में ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती हैं उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते हैं। वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलों को चले जाते हैं ॥७६॥

॥ प्रकरण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥३
कृतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोयंश्चैव तावुभौ ॥४
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

ऋषिरत्रिवसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥६
मनका सहजन्या च गन्धर्वो च हूहा हुहू ।
रथ स्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ॥७
पौरुषेया वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति वै सूर्ये मासयो शुचिशुक्रयो ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—यह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है। इसी प्रकार से गन्धर्व अप्सराऐं ग्रामणी सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ॥१॥ ये सब सूर्य में दो दो मासतक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहीं वास हुआ करता। भास्कर में जिसका निवास है उनका परिगणन किया जाता है, धाता, अर्यमा पुलस्त्य पुलह, प्रजापति उरग वासुकि और सङ्कीर्णार ये दोनों गायन करने वाले श्रेष्ठ तुम्बरु और नारद गन्धर्व क्रतुस्थली अप्सरा पुञ्जिकस्थली, ग्रामणी रथकृच्छ्र और तपोर्य ये दोनों रक्ष, हेति, प्रहेति वो यातुधान और मधु माधव के मासों मे यह गण भास्कर में वास करते है ॥२॥३॥४॥५॥ वासन्त और ग्रैष्मिक दो–दो, मास है उनमे मित्र, वरुण अत्रि और वसिष्ठ ऋषि तक्षक रम्भ मनका और सहजन्या तथा हूहा हुहू दो गन्धर्व रथस्वन ग्रामण्य और रथचित्र ये दोनों पौरुषेय और वध दो यातुधान ये शुचि शुक्रमासों में सूर्य में निवास करते है ॥६॥७॥८॥

तत सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवता ।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥९
एलापणस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ॥१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्र श्वेतश्च तावुभौ ।
नभानभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११
शरदृतौ पुन शुभ्रा वसन्ति मुनि देवता ।
पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाज सगौतम ॥१२

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथैव सुरभिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये मासयोश्च इषोर्जयो ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहाँ सूर्य में अन्य देवता निवास करते हैं जिनमें इन्द्र, विवस्वान्, अङ्गिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प और शङ्खपाल ये दोनों विश्वावसु-उग्रसेन, प्रातः अरुण-विज्ञान प्रम्लोचा और निम्लोचा ये दोनों, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत ये दोनों, यह गण नभ और नभस्य इन दो मासों में भास्कर में वास करते हैं ॥६॥१०॥११॥ शरद ऋतु में फिर शुभ्र मुनि और देवता वास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भाँति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनों शुभ लक्षणों से से युक्त, नाग और ऐरावत, विश्रुत और धनञ्जय-सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी ये दोनों जल और वात ये दोनों यातुधान कहे गये हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुभौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

काद्रवेयो तथा नागौ कम्बलाश्वरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतुजित्सजिश्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृत ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासो मे तो निम्न लोग अर्था अधोगणित लोग सूर्य मे वास करते है—अ श और भग ये दोनों काश्यप औ ऋतु भुजङ्ग-महापद्म सर्प-तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायि वे दोनो, उर्वश और विप्रचिति ये दोनो शुभ अप्सराएँ-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी औ ग्रामणी- विद्युत और स्फूर्ज वे दोनो उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह औ सहस्य मास मे ये सब दिवाकर मे बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रका से शिशिर ऋतु के दो मासों मे त्वष्टा-विष्णु-जमदग्नि विश्वामित्र-कम्बर और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग- गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा-अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा-ऋतचित् लोक मे प्रसिद्ध ग्रामणी-ब्रह्मोपेत तथा दक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते है ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
(ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५)
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
वालखिल्या नयन्त्यस्त परिचार्योदयाद्दिवम् ॥२६
एतेषामेव देवाना यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोग यथासत्त्व यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिशः ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं। ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं । २४ ।(वे मुनिगण प्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ।)ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम संग्रह किया करते हैं। सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं। वालाखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल मे ले आया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर मे यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे। ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, वान करते हैं और सृजन करते है एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं । २९-३० ॥

मानवाना शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहस ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागताना वै वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥३४
एव वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्द्दिशम् ।
चतुर्द्दशसु सर्गेपु गणा मन्वन्तरेपु च ॥३५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च दिन निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितृंश्च मनुजांश्च तर्पयन् वै॥३६
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्य सोम सुपुम्नेन विवर्द्धयित्वा ।
शुक्ले तु पूर्ण दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधा पिबन्ति ॥३७

ये मानवो के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओ के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं। कही कही पर प्रचारो के दुरित का व्यपोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान मे अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले काल रहस मे सूर्य के साथ ही दिन मे अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वर्षण करते हुए तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्रम से समस्त प्राणियों की रक्षा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियों के मन्वन्तरो मे यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा ७

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमास सुराणा मासार्द्ध तृप्ति स्वधया पितृणाम् ।
अन्नेन शश्वत् दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वय तच्च बिभर्ति गोभि ॥४०
अय हरिस्तैर्हरि भिस्तुरङ्गमैरयन्हि चापो हरतीति रश्मिभि ।
विसर्गकाले विसृजश्च ता. पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥४१
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमै पिबत्यथापो हरिभि सहस्रशा ।
तत प्रमुञ्चत्यपि तारुवसौ हरि स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमै ॥४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्ण रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षरैरश्वै सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभि सप्तभिर्हयै । ४४

त्रिकाला दक्षिण पीत सोम को कृष्णपक्ष मे रश्मियों के द्वारा क्षरण करते हुए उस सुधामृत को नितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से कव्य का पान किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्य की किरणो मे जो कि समुद्भूत हैं और फिर समुद्र जलो से वृष्टि स अत्यन्त वहाँ हुई ओषधियों मे मनुष्य क्षुधा को अन्न पानो मे जीता करते हैं ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा स पितरों की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यो को अन्न म सर्वदा तृप्ति होती है अत सूर्य स्वय किरणों द्वारा उनका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमो के द्वारा आता हुआ रश्मियों से जलों का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुन उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमो से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियो के द्वारा जल का पान किया करते हैं । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमों से मुह्यमान होते हैं ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव मे क्षय मे सर्पण किया करता है अर्थात् दोड लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र म सात सात अश्वों से सात द्वीप वाले समुद्रो के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

अतीतानागताना वै वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥३४
एव वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दिशम् ।
चतुर्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥३५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च दिन निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितृंश्च मनुजांश्च तर्पयन् गौ॥३६
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्य सोम सुषुम्नेन विवर्द्धयित्वा ।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण ता कृष्णपक्षे विबुधा पिबन्ति ॥३७

ये मानवो के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओं के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं। कहीं कहीं पर प्रचारों के दुरित का व्यपोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान मे अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले वात रहत ये सूर्य के साथ ही दिन मे अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वर्षण करते हुए तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्रम से समस्त प्राणियो की रक्षा किया करते है ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियो के मन्वन्तरो मे यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा जो साम्प्रत हैं वर्तित होते हैं। ३४ ॥ इस प्रकार से वे सप्तक चारो दिशाओ मे सूर्य मे वास किया करते हैं जो चौदह सर्गों म और मन्वन्तरो मे गण बसते हैं ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल म, हिम म और वर्षाओं मे घाम, हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करते हुए एव दिन और रात्रि को बनाते हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियों वाला देव पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुए जाते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओ को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषुम्ना के द्वारा विशेष रूप से वर्धन करके प्रसन्न किया करता है। शुक्लपक्ष मे तो पूर्ण और दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष मे उसको देवता सोम पान करते हैं ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोमं द्विकलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्रा क्षरन्तम् ।
सुधामृत तत्पितर पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव यज्यम् ॥३८
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भि पुनश्चैव समुद्धृताभि: ।
वृष्ट्याभिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्या क्षुधन्त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥३६

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमास सुराणा मासमार्द्धं तृप्तिः स्वधया पितृणाम् ।
अन्नेन शश्वत् दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वयं तत्र बिभर्ति गोभिः ॥४०
अयं हरिस्तैर्हरिभिस्तुरङ्गमैरयन् हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥४१
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यपि सारुवसौ हरिं स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ॥४४

द्विकाला वशिष्ठ पीत सोम को कृष्णपक्ष में रश्मियों के द्वारा धारण करते हुए उस सुधामृत को निरन्तर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार । हव्य का पान किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्य की किरणों से जो कि समुद्भूत है और फिर समुद्भूत जलों से वृष्टि से अत्यन्त बढ़ी हुई ओषधियों से मनुष्य क्षुधा को अन्न पानों से जीता करते हैं ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरों को मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यों को अन्न से सर्वदा तृप्ति होती है अतः सूर्य स्वयं किरणों द्वारा उसका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमों के द्वारा जाता हुआ रश्मियों से जलों का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुनः उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमों से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियों के द्वारा जल का पान किया करते हैं । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमों से मुह्यमान होते हैं ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिन में क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड़ लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र में सात सात अश्वों से सात द्वीप वाले समुद्रों के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्तत स्थितैः ।
कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अशीतिं मण्डलशतं भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता बालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
(सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥४८)
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ॥४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ।
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः ।
सकृद्युक्तैः रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥५१

उन छन्द रूप अश्वों से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले, एकबार युक्त किये हुए अमित मनोवेगों से युक्त, हरित, अव्यय, पिङ्ग, ब्रह्मवादी ईश्वर के अश्व हैं जो अब्द में अस्सी मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ॥ ४५-४६ ॥ दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रयुक्त वे भूत सम्प्लव तक वहन किया करते हैं। बालखिल्यों से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ॥ ४७ ॥ (परम प्रथित एवं उत्तम वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा गीत एवं नृत्यों से सेव्यमान होते हैं। दिवस्पति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥) तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है। सूर्य की भाँति इसकी किरणों का ह्रास

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ॥ ४९ ॥ तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों में स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ से अश्वों तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रों से युक्त और शुक्ल अश्वों के सहित होता है ॥ ५० ॥ सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वों से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ॥ ५१ ॥

सगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसम् ॥५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हय ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ॥५३
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः ।
एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ॥५४
देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्ल पक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ।
आपूर्यते पुरस्तात्तु सततं दिवसक्रमात् ॥५५
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्करः ॥५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ॥५७
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च ।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥५८

उस सग्रहीत रथ में श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रूप का वहन किया करते हैं ॥ ५२ ॥ उनके नामों का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी, मृग ये दश इन नामों वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ॥ ५३ ॥ देवों तथा पितरों के द्वारा परिवृत एवं सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

चन्द्रमा के पुर का अन्तर्भाग दिवस के क्रम से सतत आपूरित होता है ॥ ५५ ॥ क्षय से देवों के द्वारा पीत सोम को नित्य ही आप्यायित करता है। पन्द्रह दिन तक वह पीत होता है और भास्कर अपनी एक ही रश्मि से वह क्रम के अनुसार मास मात्र को आपूरित सुषुम्णा से करते हुए रहते हैं और सुषुम्ना से आप्यायमान चन्द्र की शुक्ल कलाएँ सदा करती हैं ॥ ५६-५७ ॥ उसमें कृष्ण-पक्ष में ह्रसित होती हैं और शुक्ल में आप्यायित हुआ करती है। इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ॥ ५८ ॥

पौर्णमास्या स दृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।
एवमाप्यायित सोम शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥५८
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ।
अपा सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।
पिबन्त्यम्बुमय देवा मधु सौम्य सुधामयम् ॥६०
सम्भृतन्त्वार्द्धमासेन अमृत सूर्यतेजसा ।
भक्षार्थममृत सौम्य पौर्णमास्यामुपासते ॥६१
एकरात्र सुरै सर्वै पितृभिश्व महर्षिभि ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥६२
प्रक्षीयते पुरस्यान्त पीयमाना कला क्रमात् ।
क्षीयते तस्मात् कृष्णो या शुक्ले ह्याप्याययन्तिता ॥६३
एव दिनक्रमात्पीते विबुधास्तु निशाकरम् ।
पीत्वार्द्धं मासं गच्छन्ति अमावास्या सुरोत्तमा ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्या निशाकरम् ॥६४
तत पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणैर्जघन्य पर्युपास्यते ॥६५

पौर्णमासी तिथि में सम्पूर्ण मण्डल शुक्ल दिखलाई देता है। इस प्रकार से सोम (चन्द्र) शुक्लपक्ष में दिनों के क्रम से आप्यायित हुआ करता है ॥ ५६ ॥ फिर इसके उपरान्त में द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलों के सार पूर्ण इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है, उसके अम्बुमय मधु सौम्

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते हैं ॥ ६० ॥ सूर्य के तेज से बच माह में वह अमृत पुनः सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिए पूर्णमासी तिथि में उपासना की जाती है ॥ ६१ ॥ भास्कर के अभिमुख में स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि में एक रात्रि में देवता, समस्त पिता और महर्षियों के द्वारा पीई गयी कलाएं क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती हैं। जो शुक्लपक्ष में आप्यायित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाया करती हैं ॥ ६२ ॥ इस प्रकार से दिनों के क्रम के व्यतीत होने पर विबुध लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि में सुरोत्तम अर्द्ध का आसङ्ग मन किया करते हैं। अमावस्या में पितृगण निशा करके उपस्थान को करते हैं ॥ ६३ ६४ ॥ इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्न में जघन्य वह पितृगणों के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ॥ ६५ ॥

पिबन्ति द्विकलाकालं शिष्टा तस्य तु या कला ।
निःसृतं तदमावास्याङ्गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ।
ता स्वधा मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च ।
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ता पितरः सर्व एव ते ॥६७
संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः ।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ॥६८
पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्या कला तु वै ।
यावन्न क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः ॥६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम् ।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्या शशिनः स्मृतौ ॥७०
एवं सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे ।
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ॥७१
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ।

युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः ॥७२

उसकी जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं। अमावस्या में किरणों के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिये पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और कव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर कव्य होते हैं जो द्विजों ने पाँच अब्द बतलाये हैं। सौम्य ऋतुऐं जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये हैं। अग्निष्वात्त आर्तव होते हैं। हे द्विजो! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणों के द्वारा पीयमान चन्द्र की पञ्चदशी (अमावस्या) में जब तक पञ्चदश भाग क्षीण नहीं होता है तब तक अमावस्या में उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है। शशि के षोडशी में पक्ष के आदि में वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार से निशा कर में जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है सूर्य के निमित्त वाली ही हुआ करती है ॥ ७१ ॥ सोम ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज से परिपूर्ण होता है और शुभ्र वर्ण वाला होता है। और वह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वों से युत होता है ॥ ७२ ॥

सवरूथ सानुकर्षो युक्तो दिव्यो रथो महान्।
सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभः।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥७४
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥७५
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथोऽभवत्।
असङ्गैर्लोहितैरश्वैः सर्वतोरग्निसम्भवैः।
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः ॥७६
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः।

शोणैरश्वैः काञ्चनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितैः ।
नक्षत्रेऽब्दन्निवसति सवेगस्तेन गच्छति ॥७८
ततः शनैश्चरोप्यश्वैः शवलैर्व्योमसम्भवैः ।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ॥७९

उस रथ मे वरुथ के सहित, अनुकर्ष से युक्त महान्, दिव्य सून होता है। और वह उपासङ्ग एवं पताका से अन्वित एवं ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ॥ ७३ ॥ भार्गव का रथ तेज से सूर्य के सदृश होता है। वह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वर्ण वाले उत्तम अश्वों से युक्त होता है ॥ ७४ ॥ अब उन अश्वों के नामों की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृषत और पृश्नि ये दश अहन वायु के वेग वाले महाभाग अश्वो से युक्त रथ होता है ॥ ७५ ॥ आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा से युक्त सोम का रथ था। सर्वत्र जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वो के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सर्पण किया करता है ॥ ७६ ॥ इसके आगे आङ्गिरस, देवों के आचार्य परम विद्वान वृहस्पति शोण अश्वों से युक्त सुवर्णमय रथ से प्रसर्पण करते हैं ॥ ७७ ॥ दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वो से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे हट जाता है ॥७८॥ फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शवल अर्थात् रङ्ग-बिरंगे अश्वों से युक्त काले लोह से निर्मित रथ में चढ़कर धीरे से आया करता है ॥ ७९ ॥

स्वर्भानोस्तु तथवाश्वा कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ॥८०
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमसङ्काशाः शवला रासभारुणाः ॥८२

एते वाहा ग्रहाणा वै मया प्रोक्ता रथैः सह ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८३
एते वै भ्राम्यमाणास्तु यथा योग भ्रमन्ति वं ।
वायव्याभिरदृश्याभि प्रबद्धा वातरश्मिभि ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषा गणा ॥८५
यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभि. ।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी उसी प्रकार के होते हैं। वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है। उसके अन्धकारमय रथ मे एक बार युक्त होते हुए उसका वहन किया करते हैं ॥ ८० ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों में चन्द्रमा को चला जाता है। पुन सौर पर्वों मे सोम से निकलकर आदित्य में जाया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है। इनका रथ पलाल के धूँआँ के समान होता है, शवल और रासभारुण होता है ॥ ८२ ॥ ये ग्रहों के वाहन मैंने रथों के सहित बतला दिए हैं। ये सब ध्रुव से निबद्ध और वात रश्मियों से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ ये भ्राम्यमाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं। अदृश्य वायव्याओ से वातरश्मियों प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उनमे बद्ध चन्द्र, सूर्य और ग्रह दिव मे परिभ्रमण किया करते है। भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियों के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल में नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं। इसी से वे देवगण आकाश में सबके द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मय ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

तैलपीडाकर चक्र भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वश ॥८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृत. ॥८९
एव ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषा गण ।
सैष तारामयो ज्ञेय शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पाप दृष्ट्वा त निशि मुच्यते ॥९०
यावत्यश्चैव तारास्ता शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ॥९१
शाश्वन शिशुमारोऽसौ विज्ञेय प्रविभागश॰ ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनु ॥९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रित ।
हृदि नारायण साध्य: अश्विनौ पूर्वपादयो ॥९३

आकाश मण्डल मे जितने तारागण हैं उतनी ही वात रश्मियाँ भी है। ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुई स्वय भ्रमण किया करती हैं और उसको भ्रमण कराया भी करती हैं ॥ ८७ ॥ तैल पीडाकर चक्र (पहिया) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से वातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ॥ ८८ ॥ वात चक्र से ईरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं। इससे वह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वय बहता है, ऐसा कहा गया है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध होता हुआ ज्योतियों का गण सर्पण किया करता है। वह यह दिव मे तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए। जो कि दिन मे पाप किया करता है और उसको रात मे देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ॥ ९० ॥ जितने ही वे तारा दिवि मे शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ॥ ९१ ॥ प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए। वह उत्तान पाद का उत्तर हनु है ॥ ९२ ॥ यज्ञ को अधर और धर्म को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए। हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों मे साधन करना चाहिए ॥ ९३ ॥

वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्नं सवसरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रितः ॥९४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः ।
तारका शिशुमारश्च नास्तमेत चतुष्टयम् ॥९५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणं सह ।
उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ॥९६
ध्रुवेणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रयान्तीह वरं श्रेष्ठमेकीभूतं ध्रुवन्दिवि ॥९७
ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ॥९८
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुखः ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ॥९९

उसके पश्चिम सक्थि मे वरुण तथा अर्यमा का साधन करना चाहिए। उसका शिश्न समर है। मित्र अपान में समाश्रित रहता है ॥ ९४॥ पुच्छ मे अग्नि, महेन्द्र, मरीचि कश्यप और ध्रुव तारक और शिशुमार पद चतुष्टय अस्त नहीं होते हैं ॥ ९५ ॥ नक्षत्र, चन्द्र सूर्य, ग्रह तारागणों के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि मे चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ॥ ९६ ॥ ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है। यहाँ वर-श्रेष्ठ और एकीभूत ध्रुव को दिवि में प्रमाण किया करते हैं। ९७ ॥ ध्रुव, अग्नि और कश्यप इन तीनों मे ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है। यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा में भ्रमण किया करता है। यह ज्योतियों का चक्र अवाङमुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है। यह मेरु को देखता है और यहाँ प्रदक्षिण को जाता है ॥ ९८-९९ ॥

॥ प्रकर्ण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः ।
पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ॥१

यदेतद्रुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथ देवगृहाणिम्यु कथ ज्योतींपि वर्णय ॥२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम्।
श्रुत्वा तु वचन तेषा तदा सूतः समाहित ॥३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्त ज्ञानबुद्धिभि ।
तद्वोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४
अत पर त्रिविधास्याग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्ने पार्थिवस्य च ॥५
व्युष्टायान्तु रजन्या वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिव सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृत ॥७

श्री शाशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुन सशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्षण से उत्तर पूछा ॥१॥ ऋषियों ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह हैं तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ यह सब ज्योतियों का निश्चय बताइये। यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियों से कहा—॥ ३ ॥ महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह अब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का जन्म कहता हूँ। यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के ग्रह हैं ॥ ४ ॥ इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा। दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ॥ ५ ॥ व्युष्ट रात्रि में अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा को यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ॥ ६ ॥ चार भूतों में अवशिष्ट इसमें यह पार्थिव अग्नि कहा जाता है। जो आदि में सूर्य में ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥ ७ ॥

वैद्युतात्यस्तु विज्ञेयस्तेषा वक्ष्येऽथ लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽनय ।
तस्मादप' पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥८
वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्‌भि. प्रशाम्यति ।
मानवानाच कुक्षिस्थो नाद्‌भि शाम्यति पावक ॥६
अर्चिष्मान् परमः सोऽग्नि प्रभवो जाठर स्मृत ।
यश्चाय मण्डली शुक्लो निरूष्मा सप्रकाशते ॥१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्त याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११
उद्यन्त च पुन सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशन् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ॥१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्य च सौराग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुन सूर्ये रात्रिराविशते त्वप ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१४

जो अग्नि वैद्युत–इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती है। एक वैद्युत, दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गर्भ होता है। इससे जलो का पान करता हुआ सूर्य आकाश मे किरणो से दीप्त हुआ करता है ॥ ८ ॥ वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलो से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवो की कुक्षि मे स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥ ६ ॥ वह अग्नि परम अर्चियो वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली, शुक्ल और बिना उष्मा वाला सप्रकाशित होता है ॥ १० ॥ सौरी प्रभा पाद से दिवा करके अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि मे आविष्ट हो जाती है। रात्रि में वह दूर से प्रकाश देती है ॥ ११ ॥ यह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुनः आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि मे है अतएव यह अग्नि ताप दिया

करती है ॥ १२ ॥ प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर में अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ उत्तर के भूमि के अर्ध भाग में और उसमें इस दक्षिण में पुन. सूर्य के उदित होने पर रात्रि अप में अर्थात् जल में प्रवेश करती है। इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि में उनका प्रवेशन होता है ॥ १४ ॥

अस्तं याति पुन. सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मान्नक्तं पुन. शुक्ला आपो विश्यन्ति भास्करे ॥१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यप. ॥१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिवन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥१७
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः ।
आदत्ते तत्तु रश्मीना सहस्रेण समन्ततः ॥१८
नादेयीश्चैव सामुद्री. कौप्याश्चैव सधान्वनीः ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्यो हिरण्मयः ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनि स्रुवम् ॥१९
तासांचतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्तयः ।
चन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जना. ॥२१
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तय. ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२२

पुन सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल में प्रवेश किया करता है। इसी से रात्रि में शुक्ल जल भास्कर में आविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध में उदयास्तमय में नित्य ही दिन-रात जल में प्रवेश किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो यह सूर्य जलों का अपनी

किरणों के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पार्थिव और विद्युत-दिव्य शुचि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला यह अग्नि कुम्भ के सदृश शुचि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी, सामुद्री कौप्य, सधान्वनी, स्थावर और जङ्गम होते हैं और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ, वर्षा, शीत और उष्णता का नि:स्रव करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्ति वाली चार सौ नाडी वर्षती है। चन्दना, वन्द्या, ऋतना, नूतना, अमृता इन नामों वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली है ॥ २० ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती हैं। ये दृश्या, मेध्या, वाह्या, ह्लादिनी, हिमसर्जना और चन्द्रा नामों वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। शुक्ला, ककुभ गाव, विश्वभृत होती हैं ॥ २२ ॥

शुक्लास्ता नामत सर्वास्त्रिशता घर्मसर्जना ।
सम बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवता ॥२३

मनुष्यानौपधेनेह स्वधया च पितृनपि ।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तं सुतपते त्रिभिः ।
वर्षास्वथो शरदि चतुर्भि सम्प्रवर्षति ॥२५

हेमन्ते शिशिरे चैव हिम स सृजते त्रिभि ।
ओषधीषु बलन्धत्ते स्वधया च पितृनपि ।
सूर्योऽमरत्वममृतत्रयस्त्रिषु नियच्छति ॥२६

एव रश्मिसहस्रन्तत् सौर लोकार्थ साधकम् ।
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनि स्रवम् ॥२७

इत्येतन्मण्डल शुक्ल भास्वर सूर्यसंज्ञितम् ।
नक्षत्रग्रहसोमाना प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
ऋक्षचन्द्रग्रहा॰ सर्वे विज्ञेया सूर्यसम्भवा ॥२८

नक्षत्राधिपति. सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ।
शेषा पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वरा. कामरूपिणः ॥२६

जो नाम से शुक्ल है वे सब तीन सौ हैं और घर्म का सर्जन करने वाली हैं। उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ॥२३॥ यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ॥२४॥ बसन्त और ग्रीष्म में वह तीनों से भली प्रकार तपा करता है। वर्षा और शरद में चारों से अच्छी प्रकार से प्रकर्षण किया करता है ॥२५॥ हेमन्त और शिशिर में वह तीनों से हिम का सृजन किया करता है। औषधियों में बल धारण करता है, स्वधा से पितरों को भी सूर्य तीनों में अमृतत्व अमरत्व को दिया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं। ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का भेदन करती हैं ॥२७॥ इतना यह मण्डल शुक्ल एवं भास्वर सूर्य की संज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान ही है। ऋक्ष-चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है। शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ॥२९॥

पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमा स्मृतः ।
शेषाणा प्रकृति सम्यग्वर्ण्यमाना निबोधत ॥३०
सुरसेनापति स्कन्द पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ।
नारायण बुध प्राहुर्देव ज्ञानविदो विदु ॥३१
रुद्रो वैवस्वत साक्षाद्धर्मो प्रभु स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चर ॥३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३
आदित्यमूलमखिल त्रिलोक नात्र सशय. ।

भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ।
ततः सञ्जायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥३६

आदित्य अग्नि कहा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है। दोनों की प्रकृति को जोकि भली भाँति वर्णन की जाने वाली है समझलो ॥३०॥ देवताओं की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह कहा जाता है। बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ॥३१॥ रुद्र वैवस्वत है जो लोक में साक्षात् धर्म एवं स्वयं प्रभु हैं। द्विजो मे श्रेष्ठ मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ॥३२॥ देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान महाग्रह होते हैं। ये दोनों प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः।
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ॥४०
अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च।
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः।
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४२

समस्त लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे। हे विप्रो! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ॥३७॥ जहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वत्सर, ऋतु, अयन और युग निधन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३८॥ उस समय आदित्य के बिना उनकी काल संख्या नहीं होती है। काल के बिना नियम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ॥३९॥ जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं? सस्य की अभिनिष्पत्ति, गुण और ओषधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे? ॥४०॥ दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा। वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठो! वह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है। यह त्रैलोक्य में समस्त चराचर को तपता है ॥४२॥

स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः।
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत्।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥४३
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ् मया समुदाहृतम्।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम्।
अर्वावसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तितः ॥४५

भवंत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिद्युतिमता कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूल परमदैवतम् ।
ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥३६

आदित्य अग्नि कहा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है। दोनों की प्रकृति को जोकि भली भाँति वर्णन की जाने वाली है समझलो ॥३०॥ देवताओं की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह कहा जाता है। बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ॥३१॥ रुद्र वैवस्वत है जो लोक में साक्षात् धर्म एवं स्वयं प्रभु हैं। द्विजों में श्रेष्ठ मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ॥३२॥ देवासुरगुरु (अर्थात् वृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान् महाग्रह होते हैं। ये दोनों प्रजापति के पुत्र शुक्र और वृहस्पति नाम वाले हैं। वैश्य और महेन्द्र इन दोनों के आधिपत्य में विनिर्मित रूप हैं ॥३३॥ यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य के मूल वाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। सम्पूर्ण जगत् देव, असुर और मानवों के सहित इसका होता है ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द! रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्र देवों की जोकि द्युतिमान् है, समस्त द्युति और सार्वलौकिकतेज है उन सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बड़ा देवता है। उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी में प्रलीन हुआ करता है ॥३५॥३६॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रविः ॥३७
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ।
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः ।
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥३८
तदादित्यादृते तेषां कालसख्या न विद्यते ।
कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ॥३९

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः।
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ॥४०
अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च।
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः।
तपत्येव द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४२

समस्त लोकों के नाश और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे। हे विप्रो! यह जगत् यह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुयह जानना चाहिए ॥३७॥ जहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वत्सर, ऋतु, अयन और युग नियम को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३८॥ उस समय आदित्य के बिना उनकी काल संख्या नहीं होती है। काल के बिना नियम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ॥३९॥ जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिष्पत्ति, गुण और औषधिगणादि भी कैसे हो सकेंगे ? ॥४०॥ दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा। वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! यह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है। यह त्रैलोक्य में समस्त चराचर को तपता है ॥४२॥

स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः।
उत्तम मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत्।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥४३
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम्।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम्।
अर्वावसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तितः ॥४५

सुषुम्न: सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन् ।
तिर्यगूर्द्धप्रभावोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ॥४६
हरिकेश. पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम् ॥४७
विश्वश्रवास्तु यः पश्चात् शुक्रयोनि. स्मृतो बुधै. ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य च ॥४८
षष्ठस्त्वर्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः ।
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ॥४६

वह यह ही समस्त एव सार्वलौकिक तेजो की राशि है। वायु के उत्तम मार्ग मे आस्थित होकर अपनी प्रभाओ से इस जगत् को पार्श्व मे-ऊपर को और अधोभाग मे सब ओर से यह ताप देता है ॥४३॥ सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो प्राङ्मय समुदाहृत हुई हैं उनमे भी फिर श्रेष्ठ ग्रहो की जन्मभूमि सात रश्मियाँ होती हैं ॥४४॥ अब यहाँ कुछ रश्मियों के नाम और उनके नाम बतलाये जाते हैं। सुषुम्ना, हरिकेश- विश्वकर्मा विश्वश्रवा-फिर अन्य परम सम्पद्वसु रत, अर्वावसु-ये रश्मियाँ प्रकीर्तित की गई हैं ॥४५॥ सुषुम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि की वृद्धि करतो है। इसका प्रभाव तिर्यक् और ऊर्ध्व को हुआ करता है इसी लिये यह सुषुम्ना कही जाती है ॥४६॥ हरिकेश नामक रश्मि आद्यारश्मि है और यह नक्षत्रों का जन्म स्थान कही जाती है। विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिणमे बुध का वर्धन किया करती है ॥४७॥ विश्वश्रवा नामक रश्मि जो है वह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई हैं। सम्पद्वसु जो रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ॥४८॥ षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है। और स्वराट् रश्मि फिर शनैश्चर को आप्यायित किया करती है ॥४६॥

एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारका. ।
वर्द्धन्ते विदिता. सर्वा विश्वञ्चेदं पुनर्जगत् ।
दीप्यन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥५०

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।
तेषां क्षेत्राण्ययादत्ते सूर्यो नक्षत्रताङ्गत. ॥५१
तीर्णानि सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणा तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥५२
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥५३
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ।
सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥५४
वह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६

इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से सब ग्रह नक्षत्र और तारागण बढ़ते हैं। यह सर्व विदित है। यह विश्व और यह जगत् भी सूर्य के प्रभाव से ही वर्धित होता है। फिर वे क्षीण नहीं होते हैं इसी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियों से आपतित होते हैं। उनके क्षेत्रों को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त होकर ले लेता है ॥५१॥ इस संसार में सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त में ग्रहों के आश्रय से ताराओं में ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि में होने वाले अन्धकारों को तेजों के आदान करने से ही यह महान् आदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पड़ा है ॥५३॥ स्पन्दन अर्थ में सुवति यह धातु विभावित होती है। तेजों और जलों के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है। ह्लादन में धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व में वह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश में गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य होते हैं ॥५६॥

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।

घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥५८
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशस्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥५६
शौक्रं शुक्रो विशस्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लौहितः ।
शानैश्चरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥६०
आदित्यरश्मिसंयोगात् सप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥६२
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवच्छाया निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥६३

यहाँ घन तोयात्मक शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्डल घन तेजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानों में प्रवेश किया करते हैं। समस्त मन्वन्तरों में नक्षत्र-सूर्य और ग्रहों के आश्रय होते हैं ॥५८॥ वे देवों के गृह ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से वे होते हैं। सूर्य सौर-विशस्थान है और सोम सौम्य-विशस्थान होता है ॥५६॥ सोलह अर्चि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक्र का प्रवेश स्थान है। बृहद् (बड़ा) बृहस्पति और लोहित ही लोहित तथा देव शनैश्चर शानैश्चर विशस्थान होता है ॥६०॥ ये सब आदित्य के रश्मियों के संयोग से सप्रकाशात्मिक कहे गये हैं। सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है। सूर्य के विस्तार से दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६२॥ इन दोनों के तुल्य स्वर्भानु होकर अधोभाग से प्रसर्पण किया करता है। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके यह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६३॥

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं निर्मितं यत्तमोमयम् ।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ॥६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमश्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ॥६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवश्च विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात् प्रमाणतः ॥६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥६७
तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादय ॥६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥६९
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥७०

स्वर्भानु का बृहत् स्थान जोकि तमोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वों में चला जाया करता है ॥६४॥ सोम से आदित्य में आता है और फिर पर्वों में सोम को आया करता है । अपनी दीप्ति से नुदन किया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु- ऐसा कहा जाया करता है ॥६५॥ चन्द्रमा का सोलहवां भाग भृगुजा होता है जोकि विष्कम्भ मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ॥६६॥ भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम वाले कुज और सौर दोनों कहे गये हैं । विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ॥६७॥ यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त है वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ॥६८॥ तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्राय इन्हें चन्द्र के योग वाले जानें । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन हैं ॥६९॥ सौ पांच-

चार-तीन और दो योजन तारकमण्डल पूर्वापर में निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७०॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषा ग्रहा ये दूरसर्पिण ।
सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥७१
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वार पुनरन्ये महाग्रहाः ।
सूर्य. सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगा ॥७२
यावन्त्यस्तारका. कोटयस्तावदृक्षाणि सर्वश· ।
वीथीना नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थित ॥७३
गतिस्तास्त्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात् ।
उत्तरायण मार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमा ।
वीथ वीथोऽथ स्वर्भानु स्वर्भानो स्थानमास्थित. ॥७४
ऋक्षाणि च सर्वाणि ऋक्षाणि विशन्युत ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥७५
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७६
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै ।
अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७

उनमें ऊपर से तीन ग्रह दूर सर्पी अर्थात् दूरतर सर्पण करने वाले होते हैं। और अङ्गिरा तथा वक्र ये मन्दचारी जानने के योग्य होते हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार अन्य महाग्रह होते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं ये सूर्य सोम-बुध और भार्गव होते हैं ॥७२॥ जितने करोड़ तारका हैं उतने ही सब ओर नक्षत्र होते हैं। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रों का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की वह गति नीच, उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग में स्थित पर्वों में होता है तब वीथ वीथि का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान में अवस्थित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र, नक्षत्रों में प्रवेश किया करते हैं। ये सब ज्योतियाँ पुण्यात्माओं के गृह होते हैं ॥७५॥ कल्प के आदि में स्वयम्भू स्वयम्भु के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत सम्प्लव पर्यन्त रहते

हैं ॥७६॥ समस्त मन्वन्तरों म देवताओं के आयन अभिमान वाले जब तक न्भूत सम्प्लव होता है अवस्थित हुआ करते हैं ॥७८॥

अतीतैस्तु सहातीता भाव्याभाव्यै सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वा सुरैं सह ॥७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिका स्मृता ।
विवस्वानदितेः पुत्र सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ॥७९
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसु स्मृत ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजक ॥८०
बृहत्तेजा स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिर सुत ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृत ॥८१
अग्निर्विकल्पात् सञ्जज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिप ।
नक्षत्रऋक्षनामिन्यो दाक्षायण्य स्मृतास्तु ता ॥८२
स्वर्भानु सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुर ।
सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तिनास्त्वभिमानिन ॥८३
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमय स्थान सहस्रांशोर्विवस्वत ॥८४
सहस्रांशोस्त्विष स्थानमम्मय शुक्लमेव च ।
अथ श्याम मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृह स्मृतम् ॥८५
शुक्रस्याप्यम्मय स्थान सत पोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥८६
हरिद्वाप्य बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पते ।
अष्टरश्मेर्गृह प्रोक्त कृष्ण बुद्धस्य अम्मयम् ॥८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य य सुरासुर वर्त्तमानों के साथ अपने सुरों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ॥७८॥ इस मन्वन्तर मे ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ॥७९॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ॥८०॥ अङ्गिरा के

पुत्र बृहद् तेज वाला देव बृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्रिपि पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकल्प से उत्पन्न हुआ जोकि लोहिताधिप है। नगर ऋक्ष में गमन करने वाली वे दादायणी कही गई हैं ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है जोकि प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम ऋक्ष ग्रह सूर्य लो अभिमानी कीर्तित किये गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता जो बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एवं अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्रिपि सहस्रांशु का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर पञ्चरश्मि मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥८५॥ शुक्र का भी स्थान जलमय तथा षोडश रश्मि के तुल्य मय होता है। नवरश्मि युक्त का अपमय लोहित स्थान होता है ॥८६ द्वादशांश बृहस्पति का हरि-आप्य और बृहद् स्थान होता है। अष्टरश्मि बुध का गृह कृष्ण और अपमय कहा गया है॥८७॥

स्वर्भानोस्तामस स्थानं भूतसन्तापनालयम् ।
विज्ञेयास्तारका सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मय ॥८८
आश्रया पुण्यकीर्तिना सुशुक्लास्ते व वर्णत ।
घनतापात्मिका ज्ञेया कल्पादौ वेदनिर्मिता ॥८९
उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभि ।
तथा दक्षिणमार्गस्थो नीचवीथ्यासमाश्रित ॥९०
भूमिलेखावृत सूर्य पूर्णिमावास्ययोस्तथा ।
न दृश्यते यथाकाल शीघ्रनोऽस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्या निशाकर ।
दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२
ज्योतिषा गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥९३

स्वर्भानु का स्थान तामस होता है जोकि भूतों के सन्ताप देने वाला घर होता है। समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और अनमर जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे घन-तोयात्मक होते हैं और उन्हें कल्प के आदि में ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से गभस्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग में स्थित नीचि वीथी में समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या में सूर्य भूमि लखा से आवृत होता है। वह यथाकाल दिखलाई नहीं देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग में स्थित अमावस्या में निशाकर दक्षिण मार्ग में दिखाई देता है और नियम से दिखलाई नहीं दिया करता है ॥९२॥ ज्योतियों के ग्रह योग में सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों समान काल में अस्तमय तथा विषुवत् में समान काल में उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियों में अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या में इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वञ्चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्द्ध्वं प्रसर्पति ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध्वं बुधादूर्द्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्ध्वं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृदुवस्थिता ।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

परस्परस्थिताः ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग मे स्थित होता है उस समय व. सूर्य समस्त ग्रहो के अधोभाग मे प्रसर्पण किया करता है ॥९५॥ मण्डल व विस्तीर्ण करके उसके ऊर्द्ध भाग मे चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है । समस नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर प्रसर्पण किया करता है ॥९६॥ नक्षत्रों से ऊप शुक्र और बुध से भी ऊर्ध्वभाग मे वृहस्पति चरण किया करता है । उससे ऊप शनैश्चर और उससे ऊर्ध्वभाग मे सप्तर्षियो का मण्डल चरण करता है । सातं सप्तर्षियों के ऊपर ध्रुव व्यवस्थित है ॥९७॥ दो सौ सहस्र योजनो के ऊपर यथा-क्रम ताराग्रहो के अन्तर हैं ॥९८॥ समस्त ग्रह, चन्द्र और सूर्य दिव मे दिव तेज मे नित्य ही ऋक्षो में युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते हैं ॥९९। ग्रह, नक्षत्र और सूर्य नीच—उच्च और मृदु अवस्थित होते हैं । ये समागम मे और भेद मे एकसाथ प्रजा को देखते हैं ॥१००॥ परस्पर स्थित ये परस्पर मे युज्यमान होते हैं । विद्वान पुरुषों के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानन चाहिए ॥१०१॥

इत्येष सन्निवेशो व पृथिव्या ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामुदधीना च पर्वताना तथैव च ॥१०२
वर्षाणा च नदीनाञ्च येषु तेषु वसन्ति वै ।
एते चैव ग्रहा पूर्व नक्षत्रेषु समुत्थिताः ॥१०३
विवस्वानदितेः पुत्र सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणा प्रथमो ग्रह. ॥१०४
त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मिः समुत्पन्न. कृत्तिकासु निशाकर. ॥१०
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्र शुक्र सूर्यादनन्तरम् ।
ताराग्रहाणा प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थित. ॥१०६
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्वृहस्पतिः ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्वासु च जगद्गुरुः ॥१०

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ।
आपाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुति ॥१०८

इतना यह आपका पृथिवी में सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है। इसी प्रकार से द्वीपों का, समुद्रों का,पर्वतों का तथा वर्षों का और नदियों का है जिनमें वास किया करते हैं। ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रों में समुत्थित होते हैं। ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओं में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहों में प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु उसी प्रकार से है। यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोडशार्चि भृगुका पुत्र है अनन्तर में सूर्य में शुक्र है जो ताराग्रहों में प्रकट है और तिष्य में समुत्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि बृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों में यह जगद्गुरु है ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ में समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चि स्तथा सौरशनैश्चरः ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चान्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०९
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादयः ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतायतः ।
स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतुनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुवः कालो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृत ।
ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ एव च ॥११३
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रिविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

मुहूर्त्ताना तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवतः ।
अक्ष्णोश्चापि निमेषादि काल कालविदो मतः ॥११५

सप्तार्चि शनैश्चर सौर है और रेवती मे ही समुत्पन्न हुआ है। च द्राक मर्दन ये दो ग्रह रोहिणी मे समुत्पन्न हुए है ॥१०६॥ य भार्गवादि ताराग्रह जानने के योग्य हैं क्योकि य जन्म नक्षत्र पीडाओ मे विगुणता को प्राप्त किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति म वे उस दोष से स्पर्श करते हैं ॥११०॥ इन समस्त ग्रहो मे आदित्य आदि कहा जाता है। ताराग्रहो मे शुक्र और केतुओ में धूमवान् है ॥१११॥ चारो दिशाओ में विभक्त ग्रहो का ध्रुव काल होता है, नक्षत्रों का श्रविष्ठा और अयनो का उत्तर होता है ॥११२॥ पाँचो वर्षों म आद्य सम्वत्सर कहा गया है। समस्त ऋतुओ मे शिशिर और सम्पूर्ण मासो मे माघमास आद्य होता है ॥११३॥ पक्षो मे शुक्ल पक्ष तिथियो मे प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागो मे अह आदि कहा गया है ॥११४॥मुहूर्त्तों में आदि मुहूर्त्त रुद्र दैवत होता है तथा अक्षियो मे निमेष और कालविदो मे काल माना गया है ॥११५॥

श्रवणान्त श्रविष्ठादियुग स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्तते ॥११६
दिवाकर स्मृतस्तस्मात्कालस्त विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधाना भूताना प्रवर्त्त कनिवर्त्तक ॥११७
इत्येष ज्योतिपामिव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकमव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मित ॥११८
उत्पन्न श्रवणेनासौ सक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा ।
तर्तोऽन्तेपु विस्तीर्णा वृक्षाकार इति स्थिति ॥११९
बुद्धिपन्नाम्मगवता कल्पादौ सप्रकीर्तित ।
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मक ।
विश्वरूप प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुत ॥१२०
नैव शक्य प्रस ख्यातु याथातथ्येन केनचित् ।
गतागत मनुष्येपु ज्योतिषा मामचक्षुपा ॥१२१

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

धनिष्ठा के आदि में लेकर श्रवण के अन्त तक पांच वर्ष का युग होता है। भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो। चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्तक तथा निवर्तक होता है ॥११७॥ यह इतना अर्थ के निश्चय में ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है ॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव में संश्रित सब ओर से अन्तों में विस्तीर्ण वृत्त के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है ॥११९॥ भगवान् ने कल्प के आदि में वृद्धि के साथ इसे सम्प्रकीर्तित किया है। यह आयन के सहित—अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है। विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है ॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है। मनुष्यों में ज्योतियों के गतागत को मांस-चक्षु से देखा भी नहीं जा सकता है ॥१२१॥ आगम से—अनुमान से और उपपत्ति से विद्वान पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए ॥१२२॥ चक्षु-शास्त्र—जल—लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो! ये पांच हेतु ज्योतियों के गण के विचिन्तन में जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकर्ण ३२—नीलकण्ठस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधनः ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठैः सत्रे वर्षसहस्रके ॥२

येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
ीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शमितव्रताः ॥३
रे शैलराजस्य सरांसि सरितोह्रदाः ।
ुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ।
गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥५
(ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतार्च्चनादिभिः ।
ओङ्कारेण नमस्कारैरर्च्चयन्ति सदा शिवम् ॥६)
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे ।
देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ।
अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥७

ऋषि लोग बोले किस देश मे महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् द्युतिवाले ! ब्रह्म-पुरोगो का यह आख्यान किस काल मे हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे भलीभाँति कहिए जैसे भी हुआ हो ॥१॥-श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र मे इस जगत् की आयु वायु के द्वारा कथ्यमान पहले जैसा भी मैंने सुना है ॥२॥ जिसके द्वारा देवो के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूं आप शंसित व्रत वाले उसे श्रवण करो ॥३॥ शैलराज के उत्तर मे सरित्-सर और ह्रद हैं। पुण्योद्यानो मे—तीर्थों मे—देवताओ के आयतनो मे पर्वतो के शिखरो मे जो कि बहुत ऊँचे हैं और गह्वरउपवनो मे देव के भक्त शंसित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ-जहाँ यथाविधि महादेव को स्तुति किया करते हैं ॥४॥५॥(ऋक्-यजु और साम वेदों के द्वारा, नृत्य, गीत और अर्चन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ॥६॥)ज्योतियों के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य मे व्याप्त हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब उस कथा को कहते हैं। इसके अनन्तर नियमों मे वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही शेष व्यवस्थित होते हैं ॥७

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
वालखिल्येति विख्याताः पतङ्गसहचारिणः ॥८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां मूर्द्धरेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वै वायुं वायुपर्णाम्बुभोजनाः ॥९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वरः ॥१०
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः ॥११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेषतः ।
यावद्वाचः प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः ॥१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः सम्प्रवर्त्तते ।
ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्त्तते ॥१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु नैषा वर्णप्रवृत्तयः ।
यत्र वाचो निवर्त्तन्ते देहयन्त्राश्च दुर्लभाः ॥१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'—यह कहा । यह सुनकर शमित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि वालखिल्य इस नाम से विख्यात हैं और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्द्ध्वरेता मुनियों में अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ॥ ८-९ ॥ ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—यह गुह्य विषय है जो पवित्रों का, पुण्यकृतों का पुण्य एवं श्रेष्ठ है । हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ॥ १०-११-१२ ॥ वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि सम्प्रवृत्त होती है । हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्पन्दमान होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है । जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ देहबन्ध दुर्लभ होता है ॥ १४ ॥

तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्वगस्त्वं सदानिल ।
नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पतिं देव मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणां भावितात्मानाम् ।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोक नमस्कृतः ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापते ॥१८
प्रपच्छ कार्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
उमामनःप्रहर्षणं बालकं छद्मरूपिणम् ॥२०
क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम् ।
वसिष्ठः पृष्टवान् भक्त्या कार्तिकेयं महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है । आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइए उनके कण्ठ देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है । इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान् तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—पहिले समय में कृतयुग में वेद के निर्णय करने में तत्पर वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण हुए जो धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महातेज—महात्मा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के प्रहर्ष से बालक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् बल वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १६-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय मङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसंप्रभे ॥२५
एतदाख्याय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथा मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमागर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये हे गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

है। इस प्रकार से स्तवन करने शिखी के वाहन वाले महासेन से पूछा ॥ २३-२४ ॥ जो यह शुभ्र अञ्जन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु के सदृश प्रभा वाले कण्ठ में नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह आप्त-भक्त-दान्त तथा मङ्गल से संयुक्त पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के पूछने वाले मुझे बतलाइये। हे महाभाग। मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान् तेज से युक्त वायु ने कहा है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो जोकि उमा के गोद में बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवादं शर्वस्य च महात्मनः।
तदहङ्कीर्त्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्यरुणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम्।
किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्गनाशन ॥३२
को हेतुः कारणं किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर।
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः।
कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥३५
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्च वरानने।
विषण्णवदना सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित हैममय एवं परम सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अङ्ग को दग्ध करने वाले

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ॥२६॥ देवी ने कहा—हे भगवान् ! हे भूत भव्येश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव ! आपके कण्ठ में अम्बुद के तुल्य भ्राजमान होता है। हे काम के अङ्ग के नाशन ! यह न तो अत्यन्त उल्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नीले अन्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ॥३०-३१॥ हे ईश्वर ! मैं नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥३२॥ इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ॥३३॥ पहिले समय में देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमें काले अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ॥३४॥ हे वर आनन वाली ! उसको देख कर देवों के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप में गये ॥३५॥३६॥

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युतिः ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ॥३७

मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ॥३८

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूय सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञा यो मे निवर्त्तयेत् ॥३९

विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूय प्रवर्त्तितुम् ॥४०

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगा सिंहार्दिता इव ।
किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥४१

प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ॥४७
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ॥४८
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ।
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृष्णकृष्णो जनार्दनः ॥४९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियों के साथ में रहने वाले देव-असुर और दानव सभी ने कहा ॥४२॥ महात्मा देव और असुरों के द्वारा पायोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णसर्प तथा भौंरा के समान एवं नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमें से प्रादुर्भूत हुआ है ॥४३॥ काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जोकि युग के अन्त समय में आदित्य के वर्चस के समान वर्चस वाला, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाले चारों ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला, है ॥४४॥ उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृष्णकृष्ण हो गये हैं ॥४५॥ उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण में आये हुए हैं ॥४६॥ तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इस वचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोकों के हित की कामना से कहा—॥ ४७ ॥ हे समस्त देवताओ और हे तप के ही धन वाले समस्त ऋषिगणो ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृष्ण कृष्ण हो गये हैं ॥४८॥४९॥

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः ।
न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥५०
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ।
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५१
ततः प्रीतो ह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ।
--- म या वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥५२

त्वामृतेऽन्यो महादेव विष भोक्तुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ॥५६
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ॥६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ।
कण्ठं ममभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ॥६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ॥६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥६३
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
परगता देवसङ्घाना दैत्यानाञ्च वरानने ॥६४
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ॥६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ॥५८॥ हे महादेव ! आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकों में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ॥५६॥ हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ॥६०॥ उस अन्तिक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ॥६१॥ उत्पल की आभा वाले-कण्ठ में सक्त उरग की भाँति-चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले॥६२॥ इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
किं कार्यं तु मया ब्रह्मन् कर्तव्यं वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षण ।
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां सारणेश्वर ॥५४
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघसङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ॥५६
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं ज्वालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरों में श्रेष्ठ आप लोग कोई सहन करने में समर्थ नहीं है केवल शङ्कर ही उसे सहन कर सकते हैं ॥५०॥ यह कह कर पद्मगर्भ की आभा वाले-अयोनिज और पद्मयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करने का आरम्भ कर दिया ॥५१॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और सूक्ष्म वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५२॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है यह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रों वाले ब्रह्माजी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ संवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है। वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त में हो जाने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रैलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की आभावाला है, जोकि सभी ओर विशेष रूप से स्फुरित है। वह कालानल के समान प्रभा वाला सबसे आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

तं दृष्ट्वा तु वयं सर्वे भीता सम्भ्रान्तचेतसः ।
तत् पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।
भवानग्रयस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः ॥५८

त्वामृतेऽन्यो महादेव विष सोढुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ॥५९
एवं तस्य वच श्रुत्वा ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
वाढमित्येव तद्वाक्य प्रतिगृह्य वरानन ॥६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोर विष सुरभयकरम् ।
कण्ठ समभवत्तूर्ण कृष्णो मे वरवर्णिनि ॥६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षक नागराजान लेलिहानमिव स्थितम् ॥६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामह ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥६३
ततस्तस्य वच श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पन्नगा देवगन्धर्वा दैत्यानाऽन्व वरानन ॥६४
यक्षगन्धर्वभूताना पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृत कण्ठे विष घोर नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ॥६५

उस देख कर हम सब उद्भ्रान्त चित्त वाले डर हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर डालिए । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ॥५८॥ हे महादेव ! आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विष को सहन कर सके । इस त्रैलोकी में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ॥५९॥ हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर बहुत अच्छा —यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ॥६०॥ उस अन्तिक सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वरवर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ॥६१॥ उत्पल की आभा वाले कण्ठ में सक्त उरग की भाँति चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले॥६२॥ इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ में परम शोभा को प्राप्त होंगे ॥६३॥ हे गिरिवर की आत्मजे ! इसके पश्चात् मैंने उनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष—गन्धर्व भूत—पिशाच—उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था। तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ॥६४॥

॥ प्रकर्ण ३७ - लिङ्गोद्भव स्तुति ॥

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वर. ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्यं गुणविस्तरम् ॥१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वञ्च महात्मनः ॥२
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
बलिं बद्धा महोजास्तु त्रैलोक्याधिपतिं पुराः ॥३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मु. प्रभुं द्रष्टुं देवाः सवासवाः ॥४
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपत. ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥५
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ॥६
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्वं लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ गुण-कर्म और प्रभाव से कौन अधिक है। इस गुणों के विस्तार वाले आश्चर्य को हम सुनना चाहते हैं ॥१॥ श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ॥२॥ पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान् विष्णु ने समुदाहृत किया

है। ओज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय में बलिराजा को बाँधकर ही यह उदाहृत किया था ।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ।।४।। वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग-देवर्षि नदी समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते हैं ।।५।। ।।६।। हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता है आप ही कर्त्ता हैं और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं। आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है। आपने समस्त असुरों को जीत लिया है है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर लिया है ।।७।।

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वास्तान् पुरुषोत्तमः ।।८
श्रूयतामभिधास्यामि कारण सुरसत्तमाः ।
य स्रष्टा सर्वभूनाना कालः कालकरः प्रभु ।।९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽह शयितस्तदा ।।११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदा पाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्त स्वेन तेजसा ।।१३
चतुर्वक्त्र महायोग पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और वह महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवों से कहने लगे ।।८।। हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये। जो समस्त प्राणियों का सृजन करने

ज्वाला है वह काल को भी करने वाला प्रभु काल है ॥६॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोकों का सृजन किया गया है उसी के प्रमाद में आदि में सिद्धत्व को आया ॥१०॥ पहिले अव्यक्त तममे मेरे द्वारा त्रैलोक्य के ग्रसित होने पर उस समय समस्त प्राणियों के उदरस्थ होने पर मैं लोक में शयन करने वाला था ॥११॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षो वाला-सहस्र नेत्रों से युक्त तथा सहस्र चरणों वाला शंख-चक्र गदा हाथों में लिये हुए विमल जल में शयन करता था। ॥१२॥ इसी बीच में दूर से अमित प्रभा वाले तथा एक शत सूर्यों के प्रतीकाश अपने ही तेज से ज्वलन्त होते हुए चारमुखों वाले-महान् योग से युक्त सुवर्ण के जैसी प्रभा से परिपूर्ण कृष्ण मृग चर्मधारी-कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखता हूँ जोकि एक निमिष में ही वह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोके नमस्कृतः ।
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाचतम् ॥१६
अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः ।
एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम् ।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥१७
ज्वालां ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानयोः ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिःकृतं जलम् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ।
अभिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहञ्च सत्वरः ॥१९
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२०
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् ।
न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने कहा —हे विभो ! आप कौन हैं-कहाँ से और क्यों यहाँ स्थित हैं, मुझे

ददलादये ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्त्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस में सम्भाषण करने वाले दोनों के, जोकि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा में समास्थित होकर अधिष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य में उसको देखकर विस्मित हुए। तब इनके तेज से सब जल ज्योतिकृत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एवं परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अति द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टम्भ करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनों देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीपित अव्यक्त लिङ्ग था। न तो कंचन था, मध्य में न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः।
महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा।
ज्वालामालामतं न्यस्तं सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं च गच्छते मन्त्रकारणम्।
घोरं रूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रितः।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥२४
अहं मूर्द्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते।
तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधो गतः।
न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति।
समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयनापन्नावुभौ तस्य महात्मनः।
मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

यह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार-बार लक्ष्य लक्ष्य था। महान् ओज से युक्त- महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढ़ने वाला था। ज्वालामाला जैसा आयत एवं व्यस्त तथा समस्त प्राणियों को महा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण मंत्र ही है। यह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जावें। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लेवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग मे जाता हूँ जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय बस प्रकार से वायदा करके ऊर्ध्वभाग मे तथा अधोभाग मे गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मै वहाँ नीचे के भाग मे गया था। वहाँ मैंने उसक कही अन्त नही देखा और मैं भीत हो गया—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥२६॥ उसी प्रकार से ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नही देखते है और मेरे साथ उसी महाजल मे वापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनो उस महात्मा के विषय मे परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और उसके द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यवस्थित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥२९
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महांश्च ।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् :
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिव. प्रभुः ॥३२
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कारः सस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

वेदा लोकाश्च देवाश्चभगवानेव सर्वशः ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्व भूतानां प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोकों के प्रभव तथा निधन एवं अव्यय प्रभु थे ॥२९॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी-दंष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है। हे भूतों के पति। हे महान्। आपके लिये नमस्कार है। हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं। आप श्रेष्ठ हैं। वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओङ्कार हैं और परम पद हैं। आप ही स्वाहाकार हैं। नमस्कार है। जाप्य हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं। वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इस आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं। भूमि के गन्ध,जल के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायोः स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
बुधो ज्ञानश्च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ॥३६
त्व कर्ता सर्वभूताना कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ।
त्वं धारयसि लोकास्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौसुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ।

वालखिल्या महात्मानस्तप. सिद्धाश्च सुव्रता. ॥४१
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ॥४२
लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृ तिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपुः स्वधा ।
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचा देवी सरस्वती ।
त्वत्त. प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ॥४३

वायु का स्पर्श, देव तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति में बीज भी हे देवेश। आप ही हैं। ॥३६॥ आप समस्त प्राणियो के कर्त्ता काल-मृत्यु-यम और अन्तक आप ही हैं। आप इन तीनों लोको को धारण किया करते हैं और हे प्रभो! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं॥३७॥ आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं, दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो! आप लोकों का सक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वक्त्र से वरुणत्व को करते हैं और आ॰ अपने उत्तर मुख से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ॥३८॥३९॥ हे देव! बहुधा लोकों का प्रभवाप्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं॥४०॥ तथा साध्य-विद्याधर-नाग-चारण, तपोधन वालखिल्य-महात्मा-तप सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं। उमा-सीता सिनीवाली कुहू-गायत्री-लक्ष्मी-कीर्ति-धृति मेधा-लज्जा-वपु स्वधा-तुष्टि-पुष्टि-क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश! आप से ही प्रसूत हैं॥४१॥४२॥४३॥

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा करा य ॥४४
नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सहायवचमधारिणे ॥४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहवे ॥४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ॥४७

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ॥४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ॥४९
(नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
(नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ॥५०

हे चन्द्रसहस्र गोचर ! अयुत सूर्यों जैसी अयुत प्रभा है आपके लिये नमस्कार है। पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ॥४४॥ पट्टिश रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है। रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेतः ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥४७॥ हे हिरण्यवर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है। हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥ हिरण्य की माला वाले और हिरण्यवाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है। भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ॥४९॥(हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है। हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ॥५०॥)

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भांतिदेवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ॥५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ॥५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ॥५३

पिनाकपाणिर्भगवान् वृषमासनशूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधरः कपाली घोररूपधृक् ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्करः ।
दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वमपूरयत् ॥५५
तेन शब्देन महता वय भीता महात्मनः ।
तदोवाच महायोगो प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येताश्च महामाया भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ।
युवा प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वसनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महामति व्यक्त हो कर महायोगी और करोड़ो सूर्य के समान प्रभावाले देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे । उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड़ मुखों से अपर को प्रसमान हो रहे हों ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले-एक जटाधारी-अनेक भूषित-नाना चित्रों से विचित्र अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त -पिनाक को हाथ मे लिये हुए- वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले, कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवों को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान शब्द वाले एवं मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिवने उस समय हास छोड़ा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय में उस हास के महान् शब्द से जोकि उन महात्मा ने किया था हम सब डर गये । तब महायोगी बोले- हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और, समस्त भय का त्याग करदो । तुम दोनों सनातन मेरे गात्रों में प्रसूत हुए हो ॥५७॥

अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ॥५८

ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५९
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजतां विविधाः प्रजाः ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः ।
तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ।
अचिन्त्यं तददृश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६३
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है । विष्णु मेरा बाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धों में वर्तमान रहा करते हैं । मैं आप दोनों से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनों ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणों में गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५९॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनों को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनों की आपके चरणों में नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे । अब आप दोनों अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करो । ऐसा कह करके भगवान् वहीं पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है । उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस संज्ञा वाला रूप अव्यक्त एवं अज्ञात होता है । यह रूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है और अदृश्य भी है । ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवों के अधिपति के लिये [illegible] का प्रयोग करते हैं जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तथा [illegible] के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ॥६५
एतच्छ्रुत्वा गता सर्वे सुरा स्व स्व निवेशनम् ।
नमस्कार प्रयुञ्जाना शङ्कराय महात्मने ॥६६
इम स्तव पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मन. ।
कामाश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥६७
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्त ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्वः सर्वमाख्यात मया माहेश्वर बलम् ॥६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर, हे श्रेष्ठ ! हे मनोहंस ! आपके लिये नमस्कार है ॥६५॥ श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय में सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ॥६६॥ महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापो से छुटकारा पा जाता है ॥६७॥ उन सर्व सदा तत प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के बल से आपसे मैंने कह दिया है ॥६८॥

॥ प्रकर्ण ३८—पितर-वर्णन ॥

अगारकथममावास्या मासि मासि दिव नृप ।
ऐल. पुरूरवा सूत कथ वाऽतर्पयत् पितॄन् ॥१
तस्य चाह प्रवक्ष्यामि प्रभाव शाशपायन ।
ऐलस्यादित्यसयोग सोमस्य च महात्मन ॥२
अपासारमयस्येन्दो पक्षयो शुक्लकृष्णयो ।
ह्रासवृद्धी पितृमत पक्षस्य च विनिर्णय ॥३
सोमाच्चैवामृतप्राप्ति पितॄणां तर्पण तथा ।
[illegible]

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ॥५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रं कमण्डले ॥६
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्ष. प्रतीक्ष्यते ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरूरवा मास-मास में अमावस्या में दिव मे कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरों को तृप्त किया था। सूतजी ने कहा—हे शांशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा। ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो संयोग हुआ वह भी बताया जायगा ॥२॥ जलों का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षों में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है। यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ॥३॥ सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरों का दर्शन होता है ॥४॥ इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरों की तृप्ति किया करता था। यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ॥५॥ जिस समय वे दोनों चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते हैं तो अमावस्या में एक रात्रि तक मण्डल में निवास किया करते हैं ॥६॥ उस समय वह दिवाकर और निशाकर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता है। अमावस्या में माता-मह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ॥७॥

प्रसीदमानान् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः ।
उपास्ते पितृमन्त त्तं ससोमं स दिवास्थितः ॥८
द्विलवं कुहूमात्रं तु ते उभे तु विचार्य सः ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासक ॥९
कुहूमात्रा कलाश्चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहूं पुनः ।
स तदा भानुमत्येक कालावेक्षी प्रपश्यति ॥१०

सुधामृतं कुतः सोमात् प्रस्रवेन्मासतृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवं ।।११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्य पक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ।।१२
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्रेण विधिना नृपः ।
सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या वर्हिपद काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ।।१३
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स नु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ह्युतवस्तस्माद्दतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ।।१४

प्रसीदमान अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त हुए सोम से पितरों के लिये उसके परिस्रव से ऐल पुरूरवा विद्वान् मास-मास मे प्रयत्न के साथ वह दिव मे आविस्यत होता हुआ ससोम पितृमान् उस की उपासना करता है ।।८।। दो सव कुहुमात्र वे दोनो विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनावाली का उपासक होता है ।।९।। कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है। वह उस समय मे भानुमान में एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकर्ष रूप से देखता है ।।१०।। मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रस्रव होता है। दश और पाँच सुधामृत परिस्रवो से प्राप्त करता है ।।११।। उस समय कृष्ण पक्ष मे अंशुओ से दुह्यमान को पीकर सद्य वह उस सौम्य मधु से पक्षरत होता है ।।१२।। वह राजा मित्र दिये हुए से जोकि निर्वारण के लिये ही दिया गया है, विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरो को तृप्त किया करता था। उसमें सौम्य-वर्हिपद-काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी हैं ।।१३।। ऋतु अग्नि जो कहा गया है, उससे ऋतुएँ उत्पन्न हुई और ऋतुओ से ये आर्त्तव उत्पन्न हुए हैं ।।१४।।

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्या पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतु. पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ।।१५
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवे सुताः ।।१६

उपहूता स्मृता. देवाः सोमजा. सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृता काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातय ॥१७
काव्या वर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्व हिंषदो ध्रुवम् ॥१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवाः ।
अष्टकापतय काव्या पञ्चा दास्ताम्निबोधत ॥१९
एषा संवत्सरो ह्यग्नि सूर्यस्तु परिवत्सर ।
सोम इद्वत्सर प्रोक्तो वायुश्च वानुवत्सर ॥२०

जो आर्त्तव हैं वे अर्धमास नाम वाले हैं। पितर अब्द के पुत्र हैं। ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु हैं ॥१५॥ इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्जा अब्द हैं। जो सौम्य हैं वे सोमपज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ॥१६॥ उपहूत देव सोमज तथा सोमज कहे गये हैं। जो आज्य है वे काव्य कहे गये हैं। ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ॥१७॥ वे काव्य वर्हिषद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं। जो यज्वान गृहस्थ होते है उनका वर्हिषद ऋतु होता है। गृहस्थ यज्वान जो होते है अग्निष्वात्त उनके आर्त्तव होते है । अष्टका पति काव्य है। उनको पञ्चब्द जानना चाहिए ॥१८॥१९॥ इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है। सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ॥२०॥

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषा पञ्चाब्दा ये युगात्मका ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृता ॥२१
एते पिबन्त्यमावास्या मासि मासि सुधा दिवि ।
तास्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवा ॥२२
यस्मात् प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृत तद्वै पितॄणा सोमापायिनाम् ॥२३॥
एव तदमृत सौम्य सुधा च मधु चैव ह ।
सो यथा चेन्द्रो कला पञ्चदश क्रमात् ॥२४

पिबन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजा ।
पीत्वा च मास गच्छन्ति चतुर्दश्या सुधामृतम् ॥२५
इत्येव पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकर ।
समागच्छदमावास्या भागे पञ्चदशे स्थित ॥२६
सुषुम्नाप्यायातिञ्चैव अमावास्या यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकल काल पितरस्ते सुधामृतम् ॥२७
तत पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितॄणा सोमपायिनाम् ॥२८

रुद्र उनका वत्सर होता है ये युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं। वे लेखा उष्मपा और दिव्याकीर्त्या कहे गये हैं ॥२१। ये अमावस्या मे मास मास में विधि से सुधा का पान किया करते हैं। उससे पुरूरवा जब तक है उनका तर्पण करता था ॥२२॥जिससे मास मास मे सोमो का प्रस्रवण करता है उसे जान लो। इससे सुधामृत सोमपायी पितरो का होता है ॥२३॥ इस प्रकार से वह सौम्य अमृत-सुधा और मधु होता है। जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष मे चन्द्रमा की क्रम से पन्द्रह कलाएँ होती हैं ॥२४॥ देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तेतीस छन्दज होते हैं और चतुर्दशी मे मास तक सुधामृत को पाकर चले जाते हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवों के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पञ्चदश भाग मे स्थित हो गया था ॥२६॥ सुषुम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल मे पितर सुधामृत का पान करते है ॥२७॥ इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सूर्य एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ॥२८॥

निःशेषाया कलायान्तु सोममाप्याययत् पुन ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भाग भाग मह क्रमात् ।
कला क्षीयन्ति ता कृष्णा शुक्लाश्चाप्याययन्ति च॥ २९
एव सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिना तनु ।
दृश्यते पौर्णमास्या वै शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।

ससिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥३०
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ॥३१
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणा सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ॥३२
तथार्द्ध मासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।
पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियां सन्धयश्च वै ।
अर्द्ध मासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ॥३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ॥३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्ध न्तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्ध शशिनः क्रमात् ॥३५

कला के निःशेष होने पर भी फिर सोम को आप्यायित करता है । सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ॥२९॥ इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है । पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षों में सोम की संसिद्ध होती है ॥३०॥ यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है । पन्द्रह सुधामृत परिस्रवों के साथ क्रान्त होता है ॥३१॥ इस के आगे अब मैं पर्वों को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा । जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ॥३२॥ उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए । पूर्णिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ हैं । अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ॥३३॥ जिसमें पर्वान्तर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है। सायाह्न में प्रतिपद् हो वह पौर्णमासिक काल होता है ॥३४॥ सूर्य के व्यतीपात में स्थित होने पर युगान्तर में लेखोर्द्ध्व होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोर्द्ध्व शशि का होता है ॥३५॥

पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्ते स व्यतीपात एव तु ॥३६
काल सूर्यस्य निर्देश दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सर्पति ।
स वै पथ क्रियाकाल कालात्सद्यो विधीयते ॥३७
पूर्णेन्दो पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतै सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकर ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदु ॥३९
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिममावास्या तत स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य तैर्व्यक्त पौर्णमास्या निशाकर ।
यदीक्षत व्यतीपाते दिवा पूर्ण परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्ना ताममावास्या पश्यतश्च समागतौ ।
अन्योन्य चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात मे जो परस्पर में देखते हैं जिसकाल मे वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नही है ॥३६॥ सूर्य काल के निर्देश को देख कर सख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल से तुर त ही पथ का विधान किया करता है ॥३७॥ पूर्ण चन्द्र के पूर्ण पक्ष मे रात्रि की सन्धियो मे पूर्णिमा है जिससे देवो के साथ पितर उसे देखते हैं। इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ॥३८॥ जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्यधिक रूप से भ्राजमान होता है। चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका—यह पड गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ॥३९॥ अमा नक्षत्र में वास करती है जब कि चन्द्र और दिनकर दोनों एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं। इसी से अमावस्या ही कही गई है ॥४०॥ फिर दूसरे का उनके द्वारा पौर्णमासी में निशाकर व्यतीपात मे पूर्ण दिन मे परस्पर में

दीखता है। अपराह्न में तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ॥४१॥ समागत वे दोनों उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनों चन्द्र और सूर्य अन्योन्य मे जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ॥४२॥

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरं कुहुमानं तु एव कालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण सङ्गता । ४३
दिवसार्द्धेन राज्यर्द्धं सूर्यं प्राप्त तु चन्द्रमाः ।
सूर्येण सहसा मुक्तिं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रवि ॥४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ॥४५
स तदा ह्याहुते. कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।
एतदृतुमुख ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः ॥४६
दिवा पर्वण्यमावास्या क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्या गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्या दिविक्षयैः ॥४७
कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः ।
तिथीनां नाम धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ॥४८
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ॥४९

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियों मे जो काल होता है वह द्व्यक्षर कुहूमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ॥४३॥ दिवसार्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रातः कालीन उत्सव वाले दो काल हैं और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निष्पतन होता है ॥४४॥ शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

उन निर्मुच्यमान मण्डलों के मध्य में होता है ॥४५॥ उस समय में वह आहू-ति का काल तथा दर्श की वषटक्रिया होती है । इस पर्व की अमावस्या यह ऋतु मुख जानना चाहिए ॥४६॥ दिवा पर्व मे अमावस्या को अधिक चन्द्र के क्षीण हो जाने पर इससे दिवा मे अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है। दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिविक्षयो से अमावस्या होती हैं ॥४७॥ उन कलाओं की भी अडारमाओ के द्वारा वाहुमान्या होती है । विद्वानों ने तिथियों के भी नामो की सज्ञा की है ॥४८॥ सूर्य और चन्द्रमा दोनो अन्योन्य को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूर्य मण्डल मे निकलता ॥४९॥

द्विलवेन ह्यहो रात्रं भास्कर स्पृशते शशी ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ॥५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नितः ।
तत्काल संज्ञिता यस्मादमावास्या कुहुः स्मृता ॥५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ॥५२
पर्वण. पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट्क्रिया ।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रकः ।
कालः कुहुसिनीवाल्यो समुद्रो द्विलवः स्मृतः ॥५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व कालः कलाश्रय ।
एव स शुक्लपक्षो वै रजन्या. पर्वसन्धिषु ॥५५
सम्पूर्णमण्डलः श्रीमाश्चन्द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोम पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ॥५६

अहोरात्र मे चन्द्रमा दो लव भास्कर का स्पर्श किया करता है । उस समय वह आहुति का तथा दर्श की वषट क्रिया काल होता है ॥५०॥ कोकिल से उक्त जो काल कुहू ऐसा परिचिन्हित होता है उसकाल से सज्ञा वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ॥५१॥ सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य मे प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है।

॥५२॥ पर्व का पर्व काल तो वषट् क्रिया के तुल्य ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात में वे दोनों पूर्णिमा कही गई है ॥५३॥ प्रतिपद् और पञ्चदशी का पर्वकाल द्विमात्रिक ही होता है। सिनीवाली और कुहू का समुद्र द्विलव कहा गया है ॥५४॥ सोम के अर्कान्गि मण्डल में पर्व का काल कला के आश्रय वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की सन्धियों में रात में शुक्ल पक्ष होता है ॥५५॥ सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपरञ्जित होता है जिस से पञ्चदशी में सोम आप्यायित होता है इससे पूर्णिमा होती है ॥५६॥

दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्या महाक्षय. ॥५७
इत्येते पितरो देवा. सोमपा' सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवाः भावयन्ति च ॥५८
अत. पितॄ न् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्च सत्त्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ॥५९
न मृताना गतिः शक्या विज्ञातु पुनरागतिः ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०
श्राद्धदेवान् पितॄ नेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवा' सौम्याश्च यज्वान.सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ॥६१
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ॥६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृता. ॥६३

दस और पाँच कलाओं से दिवसों के क्रम से पन्द्रह कला सोम मे होती हैं सोलहवीं नहीं होती है। इससे सोम का पञ्चदशी में महान् क्षय होता है। ॥५७॥ इतने ये पितर देव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तक और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ॥५८॥ इसलिये पितृगण को बताऊँगा जो कि मास श्राद्ध के भोक्ता होते हैं। उनकी गति और सत्त्व तथा श्राद्ध की गति

को भी बताया जायगा ॥५९॥ त मृमनुष्यों की गति तया पुनरागति बताई नहीं जा सक्ती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नही बता सकने हैं इन मांस चक्षुओं की बात ही क्या है। ६०॥ श्राद्धदेव व इन पितरों को लौकिक पितर कहा गया है। देवसौम्य और यज्वान ये सब आयोनिज होते हैं ॥६१॥ वे सब देव पितर हैं और उनको देव ही भावित किया करते हैं। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता पितामह और प्रपितामह जो सोम के द्वारा यज्वान होते हैं वे सोमव त कहे गये हैं ॥६३॥

ये यज्वान स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषद स्मृता ।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ता स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिन. ।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिता ॥६५
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥६६
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा ।
कर्म स्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवैस्ते पितृभि सार्द्धं सूक्ष्मकै, सोमपायकैः ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम् ।
तेषां निवापदत्तान तत्कुलीनैश्च बान्धवै ॥६९
मास श्राद्धभुजस्तृप्ति लभन्ते सोमलौकिका ।
एते मनुष्या पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये है उनके वे बर्हिषद कहे गये है। इन कर्मों में युक्त वे देह सम्भव तक तृप्त होते है ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये है। अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों में व्यवस्थित है ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते है। इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप यज्ञ और प्रजा से युक्त होते है वे भी दुःखी नहीं होते

है ॥६६॥ श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों में जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते हैं वे उन देवों के-पितरों के और सूक्ष्मक सोमपायको के साथ स्वर्ग में गये हुए मोदयुक्त होते हैं तथा दिवि में पितृमान् की उपासना किया करते हैं ॥६८॥ प्रजा वालों की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालों की वह सिद्ध है। उनके निवाप दत्त अन्न को जो कि तत्कुलीनों के द्वारा एवं बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्ध भोजी सोम लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं। ये जो कि मास में श्राद्ध-भोजी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ॥७०॥

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥७१
भिन्नदेहा दुरात्मन प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ॥७२
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः ॥७
सरित्सरस्तडागानि वापिश्चैव जलेप्सवः ।
परान्नानि च लिप्सन्ते कम्यमानास्ततस्ततः ॥७४
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ।
शाल्मली वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ॥७५
करम्भवालुकायाश्च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ॥७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् ।
लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ॥७७

उनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमों के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ॥७१॥ भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमक्षय में प्रेत भूत यातना के स्थानों में आये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही सोचा करते हैं ॥७२॥ दीर्घ आयुवाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इध-

विद्रवण किया करते हैं ॥७३॥ प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने की इच्छा वाले नदी सरोवर–तालाब और बावडी तथा पराये अन्न को इधर–उधर काँपते हुए चाहा करते हैं ॥७४॥ उन यातायातो के स्थानो मे पाच्यमान-शाल्मली में और वैतरणी मे और उन कुम्भीपाको में-करम्भ बालुका मे-असिपत्र वन मे और शिल सम्पेषण मे अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ॥७५॥७६॥ अनाक की भाँति वहाँ पर उन दुःखो के स्थान, अन्य लोको मे स्थित उनके विविध नाम और गोत्र से होते हैं ॥७७॥

भूम्यापसव्यदर्भेषु दत्वा पिण्डत्रयन्तु वै ।
पति तास्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिता ॥७८
अप्राप्ता यातनास्थान सृष्टा ये भुव प चधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूताना तेषु कर्मसु ॥७९
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहार श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ॥८०
काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्नं यथा दत्त बन्धुर्यत्रावतिष्ठते ॥८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तदिष्टाना मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ॥८२
एव ह्यविकलं श्राद्धदत्तन्तु मन्त्रतः ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञः प्रेताना प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥८३
यह्लीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृता ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषा शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥८४

भूमि से अपसव्य दर्भो मे तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानो में अधिष्ठित उन पतितों का तर्पण किया करते हैं ॥७८॥ जो यातना के स्थान मे अप्राप्त भूमि मे सृष्ट है वे पाँच प्रकार के होते हैं । पशु आदि स्थावरान्तों मे प्राणियों के उन-कर्मों में नाना प्रकार की जातियों में तिर्यग्योनियो में यताहार होते हैं । उन-

इनमें उनका आहार श्राद्ध में दिया हुआ उपस्थित होता है ॥७९॥ ॥८०॥ काल में न्याय से आया हुआ पात्र विधि से प्रतिपादित तथा दत्त अन्त को प्राप्त किया करता है जहाँ कि बन्धु अवस्थित होता है ॥८१॥ जिस तरह से गायों के प्रविष्ट होने पर वत्स माता का लाभ किया करता है उसी प्रकार से श्राद्ध में तदिष्टों या मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ॥८२॥ मन्त्र से दिया हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखते हुए सनत्कुमार ने कहा था जोकि गतागति के ज्ञान रखने वाले तथा प्रेतों के प्राप्त श्राद्ध के ज्ञाता थे ॥८३॥ वह्लीक-उष्मपा जो दिवाकीर्त्य वे कहे गये हैं। उनका कृष्ण पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष तो स्वप्न के लिये शर्वरी (रात्रि) होती है ॥८४॥

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।
ऋतार्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ॥८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥८६
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितृणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमतत्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ॥८७
इत्यर्कं पितृ सोमानामैलस्य च समागमः ।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितृणांचैव तर्पणम् ॥८८
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितृणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्त्तित स्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ॥८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ॥९०
स्वायम्भुवस्य ह्येष सर्गः कान्तो मयात्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा ऋतार्तव ऐसे अनेक अन्योन्य पितर कहे गये हैं ॥८५॥ ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं। श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रसन्नतायुक्त होते हैं ॥८६॥ इस

प्रकार से पितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरो का यह पितृमतत्व निश्चय रूप से पुराण मे माना गया है ॥८७॥ यह अर्क पितृ सोमो का तथा ऐल का समागम और सुरामृत की अवाप्ति और पितरो का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरों का स्थान ये सभी का सक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ॥८८॥ ॥८९॥ सबका वैरूप्य और दैविक कह दिया है। यह परिसख्या वाला नहीं हो सकता है। भूतिको चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ॥९०॥ यह मैंने स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ मैं क्या वर्णन करूँ ? ॥९१॥

॥ प्रकर्ण ३९—यज्ञप्रथा वर्णन ॥

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्वं स्वायम्भुवेन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वच श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ।
तेषाञ्चतुर्युगं ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥२॥
सङ्ख्ययेह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्वशः ।
युग च युगभेद च युगधर्मस्तथैव च ॥३॥
युगसन्ध्य शक चैव युगसन्धानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्याना प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्दस्तु मानुषः ।
तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ॥५
निमेषकाल काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्तकाः ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं चयत् ॥६
काष्ठा निमेषा दश प च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तास्तैस्त्रिंशता राम्यहनी समेते ॥७॥

ऋषियों ने कहा—स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्त्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री सूतजी ने

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग से जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, उसे भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ संख्या से प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से एवं विस्तार से युगसन्ध्यंशक तथा युग सन्धान ऐसे इन छः प्रकार के युग नाम वालों को मैं तत्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३॥४॥ लौकिक प्रमाण से विवुद्ध अब्द तो मानुष होता है। उस अब्द से प्रसंख्या करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जायेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा कला और मुहूर्तक होते हैं। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर होता है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त और तीस मुहूर्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते ॥८
पित्र्ये राम्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
कृष्णः पक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥९
त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह तानि वै ।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्रे चैवेह कीर्त्तिताः ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः ॥१२
दिव्ये राम्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते राम्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः ।
त्रिंशद्यानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥१

मानुष और दैविक अहोरात्र का सूर्य ही विभाग किया करता है। उन मे दिन तो कर्मों की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिये कल्पित की जाती है ॥८॥ पित्र्य और रात्रि और दिन तथा मास उनका पुनः विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ॥९॥ मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरों का वह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासो का पितरों का सम्वत्सर यह मानुष से विभावित किया जाता है ॥१०॥ मानुष मान से ही वर्षों का जो एक सैंकड़ा होता है वे पितरो के यहाँ पर तीन वर्ष सख्यात होते हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये हैं ॥११॥ लौकिक मान से ही जो मानुष अब्द कहा गया है यह दिव्य अहो रात्र होता है। यह इस शास्त्र मे निश्चय माना गया है ॥१२॥ दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनों का प्रविभाग कहते हैं। वहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसख्यात किये गए हैं उन दोनों के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गये हैं ॥१४॥

मानुष च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृत. ॥१५
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्यः सवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु।
अन्यानि नवतिश्चैव कौञ्चः सवत्सर. स्मृत ॥१८
षट् त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणा मानुषाणि तु।
वर्षाणान्तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणा मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया।
दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ॥२०

इत्येतमृषिभिर्गीतं दिव्या सङ्ख्ययान्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष तो सौ होते हैं किन्तु वे सौ वर्ष तीन दिव्यमान हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कहा गई है ॥१८॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते हैं वह क्रौंच सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य वर्षों का एक सैकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१६॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो सङ्ख्या के सङ्ख्यात होते हैं उनको सङ्ख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य सङ्ख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गया गया है। दिव्य प्रमाण से ही युग सङ्ख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२३
इतरासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२५
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२६
कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२७

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२८

भारतवर्ष मे क्विवण चार युग बतलाते हैं। पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है। फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ॥२२॥ चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये हैं। वहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है।॥२३॥ इतर सन्ध्याओं मे तथा तीन सन्ध्यांशों मे एकाराय से सहस्र और शत होते हैं। ॥२४॥ त्रेता की संख्या तीन सहस्र सशतात कर परिकीर्तित की जाती है। उसकी त्रिशती सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ॥२५॥ मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं। उसकी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्या के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ॥२६॥ कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते हैं। उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है।॥२७॥ यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमे कृत त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ॥२८॥

अत्र संवत्सरा सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणत ॥२६
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संख्यया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकालयुगस्य तु ॥३०
एवं संख्यातकालश्च कालेष्विह विशेषतः ।
एवं चतुर्युग कालो विना सन्ध्यांशकैः स्मृत ॥३१
चत्वारिंशत्त्राणि चैव नियुतानि च संख्यया ।
त्रिंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युगः ॥३२
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३३

मन्वन्तरस्य संख्यातुवर्षाग्रेण निबोधत ।
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिता ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुष के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का सृजन किया गया है। अब तक कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२६॥ सौ हजार चौदह दश से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ कालों में विशेष रूप से इस प्रकार का सन्धांश काल है। इस तरह बिना सन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ सन्ध्या से तेतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका है। कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनुका अन्तर कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तर की संख्या वर्षाग्र से जाननी चाहिए। मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तित ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमन्तु कृतं युगम् ।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते ।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ।
श्रौतं स्मार्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं चाचारलक्षणम् ।

वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४१
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै।
तेषां सुतप्तपसामार्षेयेण क्रमेण तु ॥४२

सन्ध्या के विद्वान् ब्राह्मणों ने मन्वन्तर की यह संख्या बतलाई है। मन्वन्तर का यह काल युगों के साथ प्रकीर्त्तित किया गया है ॥३६॥ चार सहस्र से युक्त प्रथम वह कृत युग है। त्रेता द्वापर कलि जो अवशिष्ट है उन्हें बतलाया जायगा ॥३७॥ एक साथ समवेत अर्थ दो प्रकार से कहा नहीं जा सकता है। क्रम से आया हुआ वह मैंने तुम से दो युग कह दिये हैं। ऋषियों के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ॥३८॥ वहाँ पर त्रेता युग के आदि में मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ॥३६॥ दाराग्निहोत्र संयोग ऋग् यजु और साम संज्ञा से युक्त-इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियों ने कहा था ॥ ४० ॥ परम्परा से आया हुआ आचार के लक्षण से युक्त तथा वर्णों और आश्रमों के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ॥४१॥ सत्य ब्रह्मचर्य-श्रुति और तप से भलीभांति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ॥४२॥

सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु।
अबुद्धिपूर्वकं तेषाम क्रियापूर्वमेव च ॥४३
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः।
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिनामन्यासाञ्च प्रवर्त्तनम्।
आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभासस्समुत्थिताः ॥ ४५
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ॥४६
त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मसेतवः।

संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ॥४७
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै ।
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ४८
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ॥ ४९
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पतेः ।
परिचार यज्ञाशूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ॥ ५०

त्रेता युग आद्य मे सप्तर्षियों के और मनु के उनके अबुद्धि पूर्वक तथा अक्रिया पूर्वक ही कहा गया है ॥४३॥ तारकाद निदर्शनों से वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं. देवों के आदि कल्प में तो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ॥४४॥ इनके अनन्तर सिद्धियों के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ। व्यतीत कल्पों में जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुनः उनके प्रतिभास से समुत्थित हुए हैं। ॥४५॥ ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रों को सप्तर्षियों ने कहा था और स्मार्त धर्म को मनु ने कहा था ॥४६॥ त्रेता के आदि मे केवल वेद सहिता थी धर्मसेतु से और आयु के संरोध से वे द्वापर में व्यस्तमान होते हैं ॥४७॥ कलियुग मे और द्वापर में तप से ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधान (मृत्यु) न होने वाले एवं दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ॥४८॥ धर्म के सहित प्रजा के सहित और मन्त्रों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेष क्रीडा किया करते हैं ॥४९। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य-परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ॥५०॥

तथा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ॥५१
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान् विशः ।
वैश्यान् वर्त्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ॥५२
शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।
सङ्कल्पितेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।

वाले-मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले महान् धनुधारी ऐसे विशेष गुणों से भूषित समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले त्रेता युग में चक्रवर्त्ती राजा थे ॥६४॥६५॥६६॥

न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामेनैवोच्छ्रायस्य सम ऊर्द्ध्वन्तु देहिनः ।
समुच्छ्रयः परीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ॥६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा ।
सप्तातिशयरत्नानि सर्वेषाश्चक्रवर्तिनाम् ॥६८
चक्र रथो मणि खड्गं धनू रत्नञ्च पञ्चमम् ।
केतु निधिश्च सप्त ते प्राणहीनाः प्रकीर्त्तिताः ॥६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः ।
मन्त्र्यश्वः कलभ श्चैव प्राणिन सम्प्रकीर्त्तिता ॥७०
रत्नान्येयानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम् ।
चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ॥७२
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगादिकेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥७३

ये दोनो न्यग्रोध बाहु कहे गये हैं और जो व्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारी का नाम से ही उच्छ्रय से ऊर्ध्व सम है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने के योग्य होता है ॥६७। चक्र रथ-मणि पड्ग धनु यह पाँचवा रत्न था। केतु और निधिये सात रत्न प्राणों से हीन कहे गये हैं ॥६८॥६९॥ भार्या-पुरोहित-सेनानी और रथकृत्-मन्त्री-अश्व कलभ ये सात प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जोकि सर्वातिशय रत्न चक्रवर्तियों के होते थे ॥७०॥ ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के संसिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्तियों के ये चौदह वेधेय थे ॥७१॥ समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत हैं। तथा अनागत हैं पृथिवी में चक्रवर्त्ती विष्णु भगवान् के अंश से ही उत्पन्न

हुआ करते हैं ॥ ७२ ॥ भूत भव्य और जो वर्त्तमान हैं यहाँ त्रेता युगादि मे चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं ।७३॥

भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ।
अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम् ॥७४
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठा: श्रीवत्साश्चोर्द्ध्वरोमशा ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किता ।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धा सुमेहना ।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयो ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपा ।७९
असङ्गा गतयस्तेषां च चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम भद्र और अत्यन्त अद्भुत चार बल धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप से प्राप्त किये जाते हैं वे अर्थ धर्म-काम यश और विजय हैं ॥७५॥ वे अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं । बल और तप से समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त वे उत्पन्न होते हैं । वे लक्षण भी ऐसे हैं जोकि अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों मे

नहीं होने वाले होते हैं। केशों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी ऽ र्जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ व श्रीवत्स तथा उद्‌र्ध्व रोमश थे ॥७७॥ जानुपर्यन्त बाहुओं वाले जाल हस्त त वृषाङ्कित न्यग्रोध के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले अ सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महान् हनु (ठोडी) वाले ॥७८॥ जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिह्न थे तथा हाथों में शङ्ख अ पद्म के चिह्न थे ऐसे चिह्नासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे ॥७९॥ उन चक्रवर्त्तियों की चारों गतियाँ असङ्ग थीं? अन्तरिक्ष में समुद्र पाताल में और पर्वतों में गवन उनकी गति थी ॥८०॥

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः। ८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते।
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः ॥८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ॥८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्ध्यौ निबोधत ॥८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते।
सन्ध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ॥८५
चय त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्त्तनम्।
पूर्वे स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ॥८६

मात्र परम प्रमत एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ आयु की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण था जब समाकीर्ण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्यः पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव एकपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में किस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर बलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी। ८७॥

सम्भारांश्चैव सम्भृत्य कथं यज्ञ प्रवर्तितः।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने।
प्रतिष्ठिताया वार्ताया गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रम व्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम्।
मन्त्रान् सयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सन्ततो यज्ञकर्मणि।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

हविष्यग्नौ हूयमाने देवाना देवहोतृभि ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥६५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवा. कल्पादिषु भवन्ति ये ॥६६

उन सम्भारो को सभृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये। यह सुनकर श्री सूतजी बोले हे शाशपायन ! अब तुम मुझसे श्रवण करो ॥८८॥ जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी। वृष्टि के मर्जन होने से ओषधियो के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमो की पूर्ण व्यवस्था करके तथा मन्त्रो और संहिता को व्यवस्थित बनाकर एव यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रो का सयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जो कि समस्त देवो के साथ समस्त सम्भारो से सम्भृत था ॥८९॥९०॥ ९१॥ इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षिगण समागत हुए थे। और सबने समागमन करके मेध्यजगमो तत्वों के द्वारा यजन किया था ॥९२॥ सतत होने वाले यज्ञो के कर्म-ऋत्विको के कर्म करने में व्यस्त होने पर और सत्वर ही उन समस्त आगमो के सम्प्रणीत होने पर तथा सपु अध्यय् और वृषभों के परिक्रान्ति होने पर तथा मेध्यो के आलभन होजाने पर एव अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जोकि महान् आत्मा वाले देव यज्ञो के भाग को ग्रहण करने वाले थे, जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते है ॥९३॥९४॥ ॥९६॥

अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षय ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्र सम्भूय कोऽय यज्ञविधिस्तव ॥९७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टा. पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ॥९८

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥१००
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा: ॥१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ॥१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप ।
उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो ॥१०४

प्रवृष्ट काल में जो महर्षि अध्वर्यु व्युत्थित हुए थे तो उस समय में उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियों ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ॥९७॥ आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह बड़ा जबर्दस्त अधर्म किया जाता है ! हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ में यह पशुओं का वध तो इष्ट नहीं है ॥९८॥ आपने पशुओं के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नहीं है । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही हैं तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म मव्यय का हेतु विधिदृष्ट यज्ञ से तथा यज्ञ-बीजों के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न होवे ॥१००। हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल में अप्ररोहियों के द्वारा उषित रहते हुए यह धर्म महान् स्वयम्भू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ॥१०१। इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्त्व के द्रष्टा महर्षियों के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरों से ही हमको यजन करना चाहिए ॥१०२। वे तत्त्वों से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सन्धान करके ईश्वर वसु से उन्होने पूछा था ॥१०३॥ ऋषियो ने कहा—हे महा प्राज्ञ! हे नृप! आपने यह कैसी और क्या यज्ञ की विधि देखी है ? उत्तान पाद के विषय मे बताइये हे प्रभो! हमारे इस सशय का छेदन करिये ॥१०४॥

श्रुत्वा वाक्य ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ।
यथोपदिष्टं यष्टव्यमिति हो वाच पार्थिवः ।।१०५
यष्टव्य पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ॥१०६
यथेह सहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ।
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ।
तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ॥१०७
यदि प्रमाण तान्येव मन्त्रवाक्यानि वै द्विजा ।
तदा प्रावर्त्तता यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ।
एव हृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ॥१०८
अधश्च भवन दृष्ट्वा तमर्थ वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥१०९
इत्युक्तमात्रे नृपति प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणा सशयच्छेत्ता राजा वसुरधागतः ॥१११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि सशय. ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मादुदूरमुपागति. ॥११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् ।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥११३
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः ।
ऋषिकोटिसहस्राणि कर्मभि. स्वैर्दिवं ययुः ॥११४

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्त्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओ द्वारा, बीजो के द्वारा और फलो के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिख लाई देता है कि यज्ञका हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहाँ पर जैसा संहिता के मन्त्र हैं जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीर्घ तप से युक्त महर्षियो ने और तारिकादि दर्शनो से कहा है। उनो के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए इस विषय मे मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नही होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो! यदि वे हो मन्त्र वाक्य प्रमाण हैं तो यज्ञ को प्रवृत्त करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपोधन हृतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उसके लिये वाक्यत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल में प्रवेश किया था ॥१०९॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल मे प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी वसु होकर रसातल मे चरण करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मो के संशय का छेदन करने वाला राजा वसु इनके अनन्तर आगया ॥१११॥ इसलिये चाहें बहुत कुछ जानने वाला भी क्यों न हो कभी भी किसी एक को संशय का निराकरण नही बोलना चाहिए। बहुत उद्दार वाले धर्म की सूक्ष्मता मे दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नहीं जा सकता है। केवल देवो को और ऋषियो को लेकर स्वायम्भुव मनु ही ही धर्म को जानते हैं। इनको छोडकर अन्य कोई नही जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नही कहा है। सहस्रो करोड़ ऋषि अपने कर्म्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दान यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः।
तुच्छ मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः।
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥११५

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तप ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोश. क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् ।
यज्ञे न देवानाप्नोति वैराग्य तपसा पुन ॥११७
ब्राह्मण्य कर्मसन्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्य पञ्चैता गतय स्मृता ॥११८
एव विवाद सुमहात यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने ।
ऋषीणा देवतानाञ्च पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाद्भुत वत्र्म वलेन तु ।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयु ।
श्रूयन्ते हि तप सिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपा. ॥१२१

इससे महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशसा नही किया करते है। त[illegible] धन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल फल शाक और उदकका पात्र देकर [illegible] प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह लोभ न करना दम-प्राणियो पर दया-तपस्या-ब्रह्मचर्य-सत्य अनुक्रोश क्षमा धृति यह सब सनातन धर्म को दुरासद (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ॥१२२
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गताः।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः।
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥१२४
तस्मान्नान्वेति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम्।
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
ततःप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ॥१२५

प्रियव्रत-उत्तान पाद-ध्रुव मेधातिथि-वसु-सुमेधा- विरजा शङ्ख पाद रज प्राचीनबर्हि पर्जन्य और हविर्धानि आदि राजन्ये नृप तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे। ये राजर्षिगण महान् सत्त्व से युक्त थे जिनकी कि कीर्त्ति प्रतिष्ठित है ॥१२३॥ इसलिये सबमें कारणों के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है। पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ॥१२४॥ इसलिये वह यज्ञ अधिक नहीं होता है। यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था। तब से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ विशेष रूप से हुआ था ॥१२५॥

॥ प्रकरण ४० —चारों युगों का आख्यान ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा सम्प्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥३
सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्याणाञ्च विनिर्णयः।
यज्ञोपधेः पशोर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम्।

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ॥ १० ॥
सरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥ ११ ॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥ १२ ॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥ १३ ॥
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

परस्पर में विभिन्न उन मनुष्यों के द्वारा और दृष्टियों के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' यह निश्चय नहीं किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ॥ ८ ॥ कारणों के वैकल्य होने से और कारण का भी निश्चय नहीं होने से और उन के मतिभेद होने से दृष्टियों का विभ्रम हो जाया करता है ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् दृष्टि में विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल किया गया है । इस त्रेता में यहाँ एक वेद चार पादों वाला विधान किया जाता है ॥ १० ॥ द्वापरों में आयु के संरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ॥ ११ ॥ ऋषियों के पुत्रों के द्वारा दृष्टि के विभ्रमों से वेदों के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासों के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययों के द्वारा भेद किये जाते हैं ॥ १२ ॥ ऋक्-यजु और साम वेदों की संहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती हैं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित हैं । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित हैं ॥ १४ ॥

द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रया द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥ १५ ॥
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ॥ १६ ॥

एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रवर्त्तते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥
वर्णानां विपरिध्वंसः सङ्कीर्त्यते तथाश्रमः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
द्वैधान् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं निगद्यते ।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥

श्री सूतजी ने कहा इसके आगे पुनः द्वापर की स्थिति को कहूँगा। यहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ॥ १ ॥ प्रजा-जनों को त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आदि में युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ, अधृति वणिग्युद्ध, तत्त्वों का अविनिश्चय, वर्णों का सम्भेद, कार्यों का अविनिर्णय, यज्ञोपधि पशु का दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, बल ये सब प्रवृत्त होते हैं और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता में वह सम्प्रवृत्त होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ॥ ५ ॥ वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस सङ्कीर्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी इसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व कहा जाया करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ॥ ८ ॥
कारणानाञ्च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ॥ १० ॥
सरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥ ११ ॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥ १२ ॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥ १३ ॥
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

परस्पर मे विभिन्न उन मनुष्यो के द्वारा और दृष्टियो के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नही है' यह निश्चय नही किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ॥ ८ ॥ कारणो के वैवरप होने से और कारण का भी निश्चय नही होने से और उन के मलिमेव होने से दृष्टियो का विभ्रम हो जाया करता है ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल किया गया है । इस त्रेता मे यहाँ एक वेद चार पादो वाला विधान किया जाता है ॥ १० ॥ द्वापरो मे आयके सरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ॥ ११ ॥ ऋषियो के पुत्रो के द्वारा दृष्टि के विभ्रमो से वेदो के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासो के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययो के द्वारा भेद किये जाते हैं ॥ १२ ॥ ऋग्-यजु और साम वेदो की संहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती हैं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित हैं । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित हैं ॥ १४ ॥

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥ १५ ॥
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ॥ १६ ॥

तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयैः ।
व्याकुल द्वापरे भिन्ने क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥ १७ ॥
तेषा भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसङ्क्षयाः ।
द्वापरे सम्प्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ॥ १८ ॥
तेषा विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १९ ॥
वाङ्मनः । कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषा दुःखमोक्ष विचारणा ॥ २० ॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणा दर्शनञ्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ॥ २१ ॥

द्वापर मे भिन्न वृत्त और आश्रमो वाले द्विज प्रवर्तित होते हैं । एक पहिले आध्वर्यव था वह फिर द्वैध हो गया ॥ १५ ॥ सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र बुल किया गया है । आध्वर्यव के प्रस्तावो से बहुधा व्याकुल कर दिया है ॥ १६ ॥ उसी प्रकार से अथर्व ऋक् और सामो के असक्षय विकल्पों से भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है ॥ १७ ॥ उनके भेद और प्रभेद और विकल्पों से भी असंक्षय द्वापर में सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग में विनष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ द्वापर मे फिर उन के विपर्यय भी होते हैं । अवृष्टि मृत्यु और उसी प्रकार से व्याधियो के उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥ वाणी मन और कर्म से उत्पन्न दुःखो से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है । निर्वेद हो जाने से उनको दुःख से छुटकारा पाने की विचारणा होती है ॥ २० ॥ विचारणा से वैराग्य होना है और वैराग्य से सासारिक वस्तुओ में दोषों का दर्शन होने लगता है और दोषों के देखने से द्वापर मे ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणा द्वापरे परिपन्थिनः ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ।
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन सभी शास्त्रों के द्वापर में परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गों के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं । अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक् पृथक् प्रस्थान हैं । द्वापर में उस प्रकार से मनुष्यों के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्ता प्रसिद्ध होती है । द्वापर में समस्त प्राणियों की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिग्युद्ध तत्त्वों का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमों का परिध्वंस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यों की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है । उस द्वापर के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठन्ते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च पर्य्यायात्तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥

हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजा ॥ ३१ ॥
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिद्ध्यति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै ।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानाञ्च विपर्ययम् ॥ ६३ ॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजा ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारा महातीक्ष्णकोपाल्पतेजसः ।
अनृतं वदन्ति सततं तिष्ये जायन्ति वै प्रजा ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमानृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
शूद्राणां मन्त्रयोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एव प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणो के इन कर्म दोषो से प्रजा जनो को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य मे सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवो को अत्यन्त संक्षोभ हुआ करता है। उस कलि के समय मे द्विजाति वेदों को नहीं पढा करते हैं और न वे भजन ही किया करते हैं। इससे मनुष्य और वैश्यो के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीडित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ शूद्रों का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणो के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रो की अधिकता वाले प्रायः हुआ करता है और पाषण्डो के प्रवर्त्तक होते हैं। उनमे प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है। जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणो जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रो के समान आचार हुआ करते हैं

हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिद्धयति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोग सततं क्षुद्भयानि वै ।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानाञ्च विपर्ययम् ॥ ३३ ॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण कोपाल्पतेजसः ।
अनृतब्रुवश्च सततं तिष्ये जायन्ति वै प्रजाः ॥ ३५ ॥

द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार से सन्ध्यापाद से उसका अंश अवस्थित होता है ॥ २९ ॥ द्वापर के वर्ष में जो तिष्य की है उसे समझ लो। द्वापर के अंश शेष में इसमें कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ हिंसा, असूया अनृत, माया और तपस्वियों का वध ये स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं। उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ ३१ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है। मन से, कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्त्ता सिद्ध होती है और नहीं भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग में जो रोग होता है वह प्रकर्ष रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के प्राप्त करने का भय बना रहा करता है। वर्षा के बिल्कुल न होने का भय तथा घोर देशन एवं विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक में युग युग में स्मृति का प्रमाण नहीं होता है। कोई गर्भ में स्थिति ही मर जाता है और दूसरा पूर्ण यौवनावस्था में स्थित हो मृत्युगत हो जाता है। कलियुग में स्थाविर में मध्य कौमार प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य में प्रजा अधार्मिक, अनाचार से युक्त, तीक्ष्ण कोप वाली, अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दु रधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमानृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वश ॥ ३७ ॥
सक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातय ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
शूद्राणामन्त्ययोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एव प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणों के इन कर्म दोषों से प्रजा जनों को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य में सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवों को अत्यन्त सक्षोभ हुआ करता है। इस कलि के समय में द्विजाति वेदों को नहीं पढ़ा करते हैं और न वे यजन ही किया करते हैं। इसमें मनुष्य और वैश्यों के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्सीदित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ शूद्रों का और अन्त्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रों की अधिकता वाले प्रायः हुआ करता है और पाषण्डों के प्रवर्तक होते हैं। उनमें प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है। जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणों जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रों के समान आचार हुआ करते हैं

॥ ४१ ॥ राजा के तृत में चोर रहा करते हैं और चोर वृत्त वाले राजा लोग होते हैं । युगान्त के पर्युपस्थित होने पर जो भृत्य होते हैं वे सौहार्द को खोने वाले हुआ करते हैं ॥ ४२ ॥

अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥
श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैवाप्युपक्षयः ।
साधूना विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन् कलौ युगे ॥ ४४ ॥
तदा सूक्ष्मे महोदर्को दुर्लभो भोगिनां तथा ।
चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविचलिष्यति ॥ ४५ ॥
तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी ।
शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४६ ॥
तत्राह्यं काहिको धर्मो द्वापरे पक्ष मासिकः ।
त्रेताया वत्सरस्थश्च एकाहादतिरिच्यते ॥ ४७ ॥
अरक्षितारो हृतारो बलिभागस्य पार्थिवा ।
युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा. ॥ ४८ ॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विश· शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिन सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ४९ ॥

कलियुग मे युगान्त के प्रत्युपस्थित होने पर स्त्रियाँ शील से रहित, बिना व्रत वाली और मद्य तथा मांस से प्यार करने वाली, माया से परिपूर्ण हो जायगी ॥ ४३ ॥ श्वापदों की प्रबलता तथा गौओं का उपक्षय उस कलियुग मे साधुओं की विनिवृत्ति हो जायगी ऐसा जान लेना चाहिए ॥ ४४ ॥ उस समय सूक्ष्म मे भोगियों का महोदर्क दुर्लभ होगा । चारों आश्रमों की शिथिलता से धर्म प्रविचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ यह महीयसी देवी भूमि भी अल्प फल देने वाली होगी । युगान्त के उपस्थित होने पर जो शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति हैं वे तपस्या करेंगे ॥ ४६ ॥ जो धर्म द्वापर युग मे मासिक था वह कलियुग के समय मे एकाहिक अर्थात् एक दिन में पूर्ण होने वाला है, यही धर्म त्रेता मे एक वर्ष मे होने वाला होता था जो कि प्रमाद से अतिरिक्त हुआ करता है ।

॥ ४७ ॥ युगान्तों मे राजा लोग प्रजा की रक्षा न करने वाले और अपने ही संरक्षण मे परायण रहने वाले केवल बलि भाग के हरण करने वाले होंगे ॥४८॥ राजा लोग अक्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के न रहने वाले तथा वैश्य शूद्रों से अपनी रोजी कमाने वाले होंगे तथा युगान्त में श्रेष्ठ द्विज भी शूद्रों को अभिवादन करने वाले होंगे ॥ ४६ ॥

पतयश्च भविष्यन्ति बह्वयोऽस्मिन् कलौ युगे ।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः ॥ ५० ॥
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे ।
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यविक्रीततेजनैः ॥ ५१ ॥
कुशीलचर्या पापण्डैर्वृथारूपं समावृतम् ।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५२ ॥
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ।
क्रव्यादनः क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ॥ ५३ ॥
न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति ।
अशङ्का चैव पतिते तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥
नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति ।
मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च ॥ ५५ ॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा ।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः ॥ ५६ ॥

इस कलियुग में बहुत-से पति होंगे । उस समय में देव भी चित्र-वर्षा वाला होगा, अर्थात् युगक्षय होगा ॥ ५० ॥ इस अधम युग में सभी वाणिजक अर्थात् वाणिज्य करने वाले होंगे जो कि अधिकता से कूट-मान और पण्य विक्रीत तेजनों से जीविकोपार्जन किया करेंगे ॥ ५१ ॥ कुशीलचर्या होगी और वृथा का पापण्डों से समावृत थोड़े पुरुष तथा अधिक स्त्रियों से युक्त समाज युगान्त के पर्युपस्थित काल में हो जायगा ॥५२॥ लोक बहुत से याचकों से परिपूर्ण आपस में हो जायगा । मांसभोजी, क्रूर वचन बोलने वाले असरल और निन्दा करने वाले लोग होंगे ॥५३॥ किये हुए उपकार का प्रतिकर्ता न होकर

क्षीण-लोक हो जायगा। युगान्त का यह लक्षण है कि पतित में अशक्ता हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती नरो से रहित एवं शून्य हो जायगी। देशों मे और नगरो में यहां मडल होगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोडे जल वाली और थोडा फल देने वाली हो जायगी। जो रक्षा करने वाले हैं वे ही अरक्षक और शासन रहित होंगे ॥५६॥

हर्त्तारः पररत्नाना परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात् साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
अनष्टचेतना. पुन्सो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मंश्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५९ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥ ६० ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्य सामर्थ्यं दुर्लभ भवेत्।
कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६२ ॥
दुःखेनाभिप्लुतानाञ्च परमायु. शतं भवेत्।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले और पराई स्त्री का प्रधर्षण करने वाले कामात्मा और दुष्ट आत्मा वाले और अधर्म के काम मे साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चूड़ियां खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७-॥५८॥ शुक्ल दन्त जिताक्ष मुण्ड और काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५९॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्शन करने वाले, चोर के हरण करने वाले चोर तथा हनन करने वाले का हरण करने वाले लोग होंगे ॥६०॥ ज्ञान

के गर्त में उपरत लोक में जबकि वह सर्वथा निष्प्रयता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सर्प मनुष्यों का घर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एवं सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और प्यास के भय से पीड़ित देशों में कौए निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगों की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग में सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञा. केवला धर्मपीडिताः ।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ६४ ॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ।
वर्णाश्रमाणा ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिन. ॥ ६५ ॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ।
नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्मार्थकोविदाः ॥ ६६ ॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनय. ।
स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ।
उपहन्युस्तदान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ॥ ६७ ॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता ।
मोहो ग्लानिस्तयाऽसौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥ ६८ ॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते ।
तस्मादायुर्बलं रुप कलिं प्राप्य प्रहीयते ।
दु खेनाभिप्लुतानां वै परमायु नृणाम् ॥ ६९ ॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः ॥ ७० ॥

केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्सन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्ग्रन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमों के पाषण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग

का यजन नही किया करते हैं तथा स्त्री का वध-गौ का वध करके और परस्पर मे हनन करके तब एक दूसरे का उपहनन करेंगे और इस तरह से प्रजा का साधन किया करते हैं ॥६७॥ दुःखो के प्रचार से अल्प आयु देशोत्साद-मोह-सरोगन ग्लानि तथा असौख्य इस तरह से कलियुग में तमोवृत्त कहा गया है ॥६८॥ *प्रजा सब भ्रूण हत्या मे सम्प्रवृत्त होती है, इसी से कलियुग को प्राप्त* करके आयु बल और रूप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं और सब ओर से दुःखो में डूबे हुए मनुष्यो की आयु सबसे अधिक सौ वर्ष की हो जाती है ।६९॥ समस्त वेद तो इस कलियुग मे दिखलाई देते हैं और नही भी दिखलाई दिया करते हैं। उ। समय केवल धर्म पीडित यज्ञ उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७०॥

तदा स्वल्पेन कालेन सिद्धि यास्यन्ति मानवाः ।
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमा ॥ ७१ ॥
श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं ये चरन्त्यनसूयका ।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिक स्मृत ।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥
एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्याशन्तु निबोध मे ।
युगे-युगे तु हीयन्ते श्रीस्त्रीन् पादाश्च सिद्धय ॥ ७३ ॥
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादश ।
सन्ध्यास्वभावाच्चाशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिता ॥ ७४ ॥
एव सन्ध्याशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तेषां शास्ता ह्यसाधूना भृगूणा निधनोत्थित ॥ ७५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते ।
माधवस्य तु सोशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ६ ॥
समा स विंशति पूर्णा पर्यटन् वै वसुन्धराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रै शतशोऽथ सहस्रश ।
स तदा तै परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रश ॥ ७८ ॥
स हत्वा सर्वगश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान् ।
पाषण्डान् स तत सर्वान्नि शेषान कृतवान प्रभु ॥ ७९ ॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वश· ।
वर्णव्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविन. ॥ ८० ॥

उस युगान्त मे जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते हैं वे मानव अल्प काल मे ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म का आचरण किया करते हैं । त्रेता मे वार्षिक धर्म होता था–द्वापर मे वह मासिक कहा गया है और कलियुग में प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन मे प्राप्त कर लेता है ।७१॥७२॥ यह तो कलियुग की अवस्था है अब इसका सन्ध्यांश भी समझ लो । युग युग मे तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती हैं ॥७३॥ युग के स्वभाव मे ये सन्ध्या पाद से रहा करती हैं । सन्ध्या के स्वभाव से अंशो मे पाद मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥७४॥ इस तरह से युगान्त मे सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधु भृगुओं का शास्ता निधन मे उत्थित होता है ॥७५॥ गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले वह माधव के अंश से होती है ।७६। पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए उसने घोड़े हाथियों से युक्त सेना का आकर्षण किया ।७७॥ आयुध ग्रहण करने वाले विप्रो के द्वारा जो संख्या में सैकड़ो और हजारों थे उनसे परिवृत होकर हजारों ही म्लेच्छों का हनन करता है ॥७८॥ वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियो मे समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पाषण्डो को वह प्रभु नि.शेष कर देते हैं ॥७९॥ जो अत्यर्थ धार्मिक नहीं है उन सबको सब ओर से मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्यास से उत्पन्न हुए हैं और अनुताप देने वाले हैं ॥८०॥

उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥ ८१ ॥
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनांस्तथा ॥ ८२ ॥
तुषारान् बर्बराश्चीनान् शूलिकान् दर दान् खसान् ।
लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातय ॥ ८३ ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभु. ।

अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मविधिज्ञैश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशति समाः ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः ।
कृत्वा वीर्यावशेषान्तु पृथ्वीं स्वेन कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मि केनतु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥ ८८ ॥

उत्तर में रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय-प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम में रहने वाले एवं विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक, दाक्षिणात्य और सिंहलों के साथ द्रविड़-गान्धार-पारद-पह्लव तथा यवन-तुषार-बर्बर चीन-शूलिक-दरद-खस-लम्पक-केत और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छों का प्रवृत्त चक्र बलवान् विभु अन्त करने वाले थे जोकि समस्त प्राणियों के अधृष्य थे, उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विज्ञत किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रों मानवों का हनन करते हुए स्व कर्म से पृथ्वी को वीर्यावशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमें वृषलों की, जोकि प्रायः अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य में निष्ठा प्राप्त की थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसंनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८६ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्-क्वचित् ॥ ६०॥

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ६१ ॥
अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ६२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठां प्राप्ताः सुदुःखिता ॥ ६३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपा ॥ ६४ ॥
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
हित्वा दारांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ६५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक समाप्त के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवों का तथा सहस्रों म्लेच्छों का उत्सादन करके वहीं सन्ध्यांश काल में युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पर अत्यन्त अल्प प्रजाओं के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर प्रग्रह रहित और वृन्दों में लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस में उपहिंसन करते हैं ॥८६॥६०॥६१॥ युग-वश से अराजकता के संशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दुःखित थी ॥६२॥ अत्यन्त व्याकुल–परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियों को तथा घरों को छोड़कर अपने ही प्राणों को देखते हुए सुदुःखित होते हुए निष्ठा को प्राप्त हुए ॥६३॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले–निराक्रन्द–निःस्नेह और निरप-त्रप होगये थे ॥६४॥ धर्म के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले ॥६५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ६६ ॥
सरितः सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतांस्तदा ।
मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदुःखिता ॥ ६७ ॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ।
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तन्ते वै प्रजाः कृते ।
श्रौतः स्मार्तः कृतानान्तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ॥ १०७ ॥
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥

चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कर घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥
एताः काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजा. ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दु खान्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥
विचारणन्तु निर्वेदान् साम्यावस्था विचारणात् ।
साम्या वस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १०० ॥
तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ।
अहोरात्र तदा तासा युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥
चित्तसम्मोहन कृत्वा तासान्तैः सप्तमन्तु तत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥
प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिंस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुगाः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय से अनावृष्टि से आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दु खित होरहे थे । अपने-अपने जन पदो को त्याग कर प्रत्यन्तो का सेवन करते थे । नदियाँ—सागर कूप और पर्वतो का सेवन करते थे । अत्यन्त दु खित होते हुए मधुमास तथा मूल फलो से जीवित रहते थे ॥९६॥९७॥ चीर वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले--निष्पत्र एव निष्परिग्रह वर्णाश्रम से रिभ्रष्ट घोर सकर में आस्थित थे ॥९८॥ ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाले वह ोडी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दु ख से नर्वेद को प्राप्त हुई थी ॥९९॥ निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से ाम्यावस्था हुई । साम्यावस्थाओ मे कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से र्मशीलता उत्पन्न हुई ॥१००॥ कलियुग मे अव शिष्ट और उपगम से युक्त उन मे स्वय उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्त्तित होते हैं ॥१०१॥ उनके चित्त का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर सप्तम कृत हुआ था ॥१०२॥ फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय में कलिशिष्ट कार्तयुग्य प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥१०३॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः मुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविश शूद्रा बीजार्थ ये स्मृता इह।
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषा सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च।
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजाः कृते ।
श्रौतः स्मार्त्तः कृतानान्तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ॥ १०७ ॥
तानु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वतराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ।
नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु सम्भव. ॥ १०९ ॥
एवं युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षय. ॥ ११० ॥

यहा पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदृष्ट होते हुए विचरण करते हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ॥१०४॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि मे समुत्पन्न होने वालों के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ॥१०५॥ उनके धर्म को और इतरों में सप्तर्षि कहते हैं। वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ॥१०६॥ इसके अनन्तर कृत में क्रियावान उनमें प्रजायें रहती हैं और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत्र तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ।१०७॥ यहाँ पर युग के क्षय से उनमें धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारों में मुनिगण स्थित रहते हैं ॥१०८॥ जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणों पर तप ऋतु मे उनके मूल में सम्भव नवीन तृणों का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ॥१०९॥ इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ॥११०।

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥
ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ॥ ११२ ॥
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ॥ ११३ ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्त रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥ ११४
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ ११५
चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥ ११६
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥ ११७

सुख—आयु-बल-रूप-धर्म-अर्थ और काम ये सब तीन युगों में पाद क्रम से हीयमान होते हैं ॥१११॥ ससन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं। हे द्विजो! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्तित कर दिया है। चारों युगों का इससे ही प्रसाधन होता है। यह चतुर्युगों की आवृत्ति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ॥११३॥ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है। यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय तक जड़ीभाव होता है ॥११४॥यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की गणना इकहत्तर होती है। क्रम से परिवृत्त वह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ॥११५॥ यहाँ एक चतुर्युग में उस प्रकार से यथाश्रुत होती है। उसी प्रकार से अन्यों में भी वह फिर यथाक्रम हुआ करती है ॥११६॥ सर्ग-सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या में परिमित होते हैं। न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ॥११७॥

तथा कल्पयुगैः सार्द्धं भवन्ति समलक्षणाः ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११८
तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥११६॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ॥१२२
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ॥१२३

उस प्रकार से कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं । समस्त मन्वन्तरों का यह ही लक्षण होता है ॥११८॥ उस प्रकार से युगों के परिवर्तन युगों के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं । उस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एवं उदय से परिवर्तमान होता हुआ नहीं संस्थित रहा करता है ॥११६॥ इतना यह युगों का संक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये हैं, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरों में होते हैं ॥१२०॥ जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत एवं अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ॥१२१॥ एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरों की व्याख्या करदी गई है । कल्प में कल्प से उसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥ इसके अभिमानी सब नाम और रूपों से यहाँ मन्वन्तर में आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ॥१२३॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ।
एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ॥१२५

अनुपगः समाख्यातः सृष्टिसर्गन्निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ॥१२६

ऋषिगण और मुनि वृन्द सब प्रयोजनों से तुल्य ही हुआ करते हैं। इसी प्रकार से युग युग में व र्णों और आश्रमों का प्रविभाग हुआ करता है ॥१२४॥ युग के स्वभाव से प्रभु उसी प्रकार का किया करते हैं। वर्णों और आश्रमों का विभाग तथा युग की सिद्धि के लिये युगों को करते हैं ॥१२५॥ अनुपङ्ग की तो व्याख्या करदी गई है। अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो। मैं विस्तार से तथा अनुपूर्वी से यहाँ पर युगों मे जो स्थिति है उसको बतलाऊँगा ॥१२६॥

प्रकर्ण ४१— ऋषिलक्षण

युगेपु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता वै निबोधत ।
आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ।
यस्मिन् युगे च सम्भूतिस्तासां यावत्तु जीवितम् ॥१
पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
युगमात्रन्तु जीवन्ति ऋते मृत्युवधेन ते ।२
मानुपाणां पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह ।
तेपामायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ॥३
अस्थितिस्तु कलौ हष्टा भूतानामायुपस्तु वै ।
परमायुः शतन्त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ॥४
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्तांगुलं ह्रसत् ।
अंगुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ॥५
देवासुरप्रमाणन्तदुच्छ्रायं कलिजैः स्मृतम् ।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरंगुलैः स्मृतम् ।६
स्वेनांगुलप्रमाणेन ऊर्द्ध्वमापादमस्तकम् ।
इत्येप मानुपोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ॥७

श्री सूत जी ने कहा—युगों में जो प्रजा उत्पन्न होती हैं उनको जानलो। ह प्रजा आसुरी—सर्प-गो पक्षी-पैशाची और यक्ष राक्षसी हुआ करती है। जिस

युग में जिसकी सम्भूति होती है और उनका जितना भी जीवित काल होता है वह सब बतलाया जाता है ॥१॥ पिशाच असुर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग ये सब युग मात्र जीवित रहा करते हैं। मृत्यु वध के बिना ही इनका उक्त जीवन होता है ॥२॥ मनुष्यों की पशुओं की और स्थावरों के साथ पक्षियों की इन सबकी आयु सब प्रकार से युग के धर्मों में परिक्रान्त हुआ करती है ॥३॥ कलियुग में प्राणियों की आयु की अस्थिति देखी गई है। कलियुग में मनुष्यों की परमायु सौ वर्ष की कही गई है ॥४॥ देव और असुरों के प्रमाण से सात-सात अंगुल कम होता हुआ है। एक सौ अट्ठावन पूर्ण प्रमाण होता है ॥५॥ देवासुरों का प्रमाण और उनका उच्छ्राय कलि में जन्म लेने वालों के द्वारा कहा गया है। ॥६॥ अपने अंगुल के प्रमाण से ऊपर पैरों से मस्तक तक यह मानुष उत्सेध होता है किन्तु यहां युगान्तिक में यह ह्रासयुक्त होता है ॥७॥

सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह ।
स्वेनांगुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ॥८
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः ।
संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ॥९
गवाश्वहस्तिनाञ्चैव महिष स्थावरात्मनाम् ।
क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ॥१०
षट्सप्तत्यंगुलोत्सेध पशूनां ककुदस्तु वै ।
अंगुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः ॥११
अंगुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशांगुलं विना ।
पञ्चाशतं हयानाञ्च उत्सेध- शाखिनां स्मृतः १२
मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः ।
तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ॥ १३ ॥
बुद्धयातिशययुक्तश्च देवानां कायमुच्यते ।
देवानतिशयञ्चैव मानुषं कायमुच्यते ॥ १४ ॥

समस्त युगों के कालों में जो अतीत हैं तथा अनागत हैं अपने अंगुल के प्रमाण से मनुष्य अष्ट ताल कहा गया है ॥ ८ ॥ जो पैरों से लेकर मस्तक

पर्यन्त नवताल होता है और जो आजानु बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ९ ॥ गौ-अश्व-हस्ती-महिष और स्थावर स्वरूप वालों की क्रम से इस योग से युग-युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊँचाई सड़सठ अँगुल और ककुद की होती है। हाथियों का उत्सेध हर एक सौ आठ अँगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अँगुल के बिना एक सहस्र अँगुल और पश्चात् हयों (अश्वों) का शाखियों (वृक्षों) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवों का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है। देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ।
पशूनां पक्षिणाञ्चैव स्थावराणां निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः ।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः ।
यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्तयः ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः ।
मनोज्ञैस्तत्स्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च ।
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।
सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्‌द्विजातयः ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रान्त किये हैं। अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरों का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ-अजा (बकरी) महिषी

(भंस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। यहाँ पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ॥ १६ ॥ देवस्थानों में जो उत्पन्न होते हैं वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथायथोपभोग वाले देवों की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ॥ १७ ॥ उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणो से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ॥ १८ ॥ इससे आगे शिष्टों तथा सत् और साधुओं को बताऊँगा। सत्-पद-ब्रह्म का शब्द है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ॥ १९ ॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षणों वाले कारण में न तो क्रोधित होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ॥२०॥ सामान्य धर्मों में तथा वैशेषिकों में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः ।
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ॥ २२ ॥
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ।
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ॥ २३ ॥
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥ २५ ॥
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शना ॥ २६ ॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ।
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ॥ २७ ॥
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्तितः ।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ॥ २८ ॥

वर्णाश्रमों में युक्त तथा स्वर्ग गोमुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ॥ २२ ॥ विद्या के साधन से

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी और क्रियाओं के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ जङ्गल में तप के साधन से साधु वैखानस कहा गया है। जो यजमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन स साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव-न पित र न मुनिगण और न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते हैं ॥ २६ ॥ यहाँ पर धर्म और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनों ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कम धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का धृति यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने में यह अधर्म ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अत्रेष्टप्रापका धर्मा आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भका ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचार स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमै सन्नियमैर्युत ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौत सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुति ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचार पुनर्जगौ ।
तस्मात्स्मार्त स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागज ॥ ३२ ॥
॥ एष द्विविधो धर्म शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचार प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिका ।
मनु सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिता ।
तै शिष्टैश्चरितो धर्म सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक है उन्हें धर्म उपदेश

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भाँति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते हैं ॥२९॥ स्वय भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमों से युक्त होता हुआ शास्त्रो के अर्थों का चारो ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व मे होने वालो से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियो ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्–यजु–साम–ब्रह्म के अङ्गो को और श्रुति उन्होंने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आचार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत धर्म स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शब्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरो जो शिष्ट हैं यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते हैं। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टो के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग मे अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचयते यस्मान्मनुना च पुनः पुन ।
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचार स शाश्वत ॥३६॥
दान सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनो दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येन मनुः सप्तर्षयश्च वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृत ॥३८॥
विज्ञेय श्रवणात् श्रौतः स्मरणात् स्मार्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मकः श्रौत. स्मार्तो वर्णाश्रमात्मक ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३९॥
दृष्ट्वा ह्यनुभूतमर्थं य. पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

ब्रह्मचर्यं जपो मौन निराहारत्वमेव च ।
इत्येतत् तपसो मूल सुघोर तद्दुरासम् ॥४१॥
पशूना द्रव्यहविपामृक्सामयजुपा तथा ।
ऋत्विजा दक्षिणानाञ्च सयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टों के द्वारा बार-बार आचरित होते हैं, पूर्वगत होने से पूर्वों के द्वारा यह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या,—इज्या—प्रजनी और दया—ये आठ वे चरित्र हैं जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योंकि इसका शिष्ट चरण करते हैं, मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते हैं ऐसा सभी मन्वन्तरों में किया जाता है, इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाना है। इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है। अब उस धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गों को बताऊँगा ॥३६॥ बहुत-सा अर्थ देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नहीं है। जैसा भूत प्रवाह है यही सत्य का लक्षण होता है ॥४०॥ ब्रह्मचर्य-जप-मौन-निराहारत्व यह इसका तपका सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओं का, द्रव्य-हवियों का, ऋक्, साम और यजु का, ऋत्विजों का और दक्षिणाओं का जो सयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च ।
समा प्रवर्तते दृष्टि कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा ।
वाङ्मन कर्मभि क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृत्यु च ।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् ।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ।
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम् ॥३७॥

दयात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येत् प्रतिहत स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतम द्रव्य न्यायेनोपागतञ्च यत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४६॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियों मे अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी मे यों ही उत्सृष्ट पराये धनों का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अच्छिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नहीं होती हैं यही दम का अवसर होना है अर्थात् इसी को दम कहते हैं ॥४७॥ जो दयात्मक विषय मे और आठ लक्षण वाले कारण मे प्रतिहत होता भी क्रोध नहीं करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ॥४६॥

दान त्रिविध मित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ।
तत्र नैश्रेयस ज्येष्ठ कनिष्ठ स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्य. सुविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्या विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मक ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्म सत्साधुसम्मत ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
सन्यास कर्मणो न्यास कृतानामकृतै सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाण त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषान्त्र विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञान ज्ञानमुच्यते ॥५४॥

प्रत्यङ्गाना तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षण स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५५॥
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥५६॥

दान भी तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। उनमे जो दान निःश्रेय से सम्बन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने अर्थ की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है। जो करुणा से समस्त प्राणियो के लिये बन्धुओ मे भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ॥५०॥ श्रुति और स्मृति के द्वारा विदित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एव साधु पुरुषो के द्वारा सङ्गत धर्म है ॥५१॥ अभीष्ट वस्तुओ मे प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति, ताप और विषादो से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ॥५२॥ कर्म का भली भाँति न्यास ही सन्यास होता है। अकृतो के साथ कृतो का, कुशल और अकुशलो का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ॥५३॥ जो अव्यय से और अविशेष से इस चेतन मे विकार है तथा चेतना चेतनान्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ॥५४॥ धर्म के प्रत्यङ्गो का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर मे ऋषियो ने कहा है ॥५५॥ यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चतुर्वर्ण का प्रति मन्वन्तर मे अन्य श्रुति का विधान किया जाता है ॥५६॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आभूत सम्प्लवस्यापि वर्ज्येक शतरुद्रियम् ॥५७॥
विधिर्होत्र तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्त्तते ।
द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।
चतुर्थमाभिजनिकः स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥५८॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयंति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुर्विधम् ।
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥५९॥
अथर्वयजुषां साम्ना वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ॥६०॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥६१॥
ऋषीणां तपःकात्स्न्र्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणं ॥६२॥
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ह्यृषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ॥६३॥

ऋक् यजु और साम प्रति दैवत यथावत हैं। भाभूत सप्लव का भी एक सातश्द्रिय वर्ज्य होता है ॥५७॥ विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भाँति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र-गुण स्तोत्र-कर्म स्तोत्र और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ॥५८॥ समस्त मन्वन्तरों में जो देव जिस प्रकार से होते हैं उनका चारों प्रकार का ब्रह्म स्तोत्र प्रवृत्त होता है। इस प्रकार से अनन्त गुणों की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ॥५९॥ अथर्व यजु और साम वेदों में यहाँ पृथक्-पृथक् होती है। तप करते हुए ऋषियों का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ॥६०॥ पूर्व मन्वन्तरों में यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे। वे परितोष से—भय से—दुःख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के हैं ॥६१॥ तप की कृत्स्नता से ऋषियों के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियों का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणों के द्वारा बतलाऊँगा ॥६२॥ अतीत और अनागतों में पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते हैं। इसलिए ऋषियों के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ॥६३॥

गुणसाम्ये वर्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अविभागे तु देवानामनिर्देश्ये तयोस्तथा ॥६४॥

अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठितं तत्त्वं प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषयित्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः ।
संसिध्यन्ति तदा व्यक्ता: क्रमेण महदादय ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
ससिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्त्वटन्नूर्द्ध्वमेककालं प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्तं क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्वण ॥७१॥

गुणों के साम्य के वर्त्तमान होने पर उस समय में सबका सम्प्रलय होने पर—देवों के प्रतिचार होने पर, उन दोनों के प्रतिदेश होने पर, अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनों मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से कार्य प्रवर्त्तित होता है। विषय में विषयत्व होने से तथा अर्थ में अर्थित्व होने से प्रवर्त्तित होता है ॥६७॥ प्रापणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय में महदादि व्यक्त होते हुए वे सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतों के भेद तो भेदों से परस्पर में उत्पन्न होते हैं। ससिद्धि कारण कार्य तुरन्त ही विवर्त्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर में उल्मुक टूटता हुआ एक काल में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन कर्म से

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त लक्षण खद्योत की भाँति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थितः ।
तत्रैव सस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थितः ॥७२॥
महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रैव सस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा ।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि गुप्रतीकानि तस्य वै ।
महतः सशरीरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पूर्या क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ।
ससिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान संस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर संस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ—भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि में शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। संसिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

अबुद्धिपूर्वं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तेते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठितं तत्त्वं प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषयित्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः ।
संसिध्यन्ति तदा व्यक्ता क्रमेण महदादयः ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्तु टन्नूर्द्धमेककाल प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्वणः ॥७१॥

गुणों के साम्य के वर्तमान होने पर उस समय में सबका सम्प्रलय होने पर—देवों के अतिचार होने पर, उन दोनों के अतिदेश होने पर, अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनों मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्त्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से कार्य प्रवर्तित होता है। विषय में विषयत्व होने से तथा अर्थ में अर्थित्व होने से प्रवर्तित होता है ॥६७॥ प्रापणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय में महदादि व्यक्त होते हुए से सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतों के भेद तो भेदों से परस्पर में उत्पन्न होते हैं। संसिद्धि कारण कार्य तुरन्त ही विवर्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर में उल्मुक टूटता हुआ एक काल में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एककालीन कर्म से

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त उत्पन्न खद्योत की भाँति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् सशरीरस्तु यत्रै वाग्रे व्यवस्थित.।
तत्रैव सस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थित. ॥७२॥
महांस्तु तमस पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते।
तत्रैव सस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुति ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा।
ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै।
महत सशरीरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पूर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा।
पुरीशयत्वात्पुरुष. क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञ. क्षेत्रविज्ञानाद् भगवान् मतिरुच्यते।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मक स वै।
समिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान् संस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभावित होता है। वहाँ पर ही विद्वान् तम के अन्दर संस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ—भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। समिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

एव निवृत्ति क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञेनाभिस हिता।
क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातो भोग्योऽय विषयस्त्विति ॥७८॥
ऋषीत्येष गतो धातु श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषि स्मृत ॥७९॥
निवृत्तिसमकाल तु बुद्ध्याव्यक्तमृषि स्वयम् ।
पर हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्तत स्मृत ॥८०॥
गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादित ।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्चात्मर्षिता स्मृता ।
ईश्वरा स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मण सुता ॥८१॥
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान् परिगत पुर ।
य स्मादृषन्ति ये धीरा महान्त सर्वतो गुणै ।
तस्मान्महर्षय प्रोक्ता बुद्धे परमदर्शिन ॥८२॥
ईश्वराणा शुभास्तेषा मानसान्तरसाश्च ते ।
अहङ्कार तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गता ॥८३॥
तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शना ।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवा ॥८४॥

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ से अभिसहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है । क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विषय होता है ॥७८॥ ऋषि यह धातु-गति मे-श्रुति मे-सत्य मे और तप मे होती है । उसके इस सन्नियत होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋषि कहा गया है ॥७९॥ निवृत्ति के समकाल मे ऋषि स्वय बुद्धि से अव्यक्त होता है । जिस कारण से पर को ऋषण करता है इससे परमर्षि कहा जाता है ॥८०॥ गत्यर्थक ऋष धातु से आदि नाम की निवृत्ति होती है । क्योकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मर्षिता कही गई है । ईश्वर स्वय उद्भूत हुए हैं और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ॥८१॥ क्योकि यह मानो से हन्यमान नही होता है, आगे महान् परिगत है । जिस कारण से ये धीर सब ओर से गुणो के द्वारा महान् को रिषन है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्षि कहे गए है ॥८२॥ उन ईश्वरो के शुभ वे मानसान्तरस हैं और अहङ्कार तथा तम का

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए हैं ॥८३॥ इससे वे ऋषिगण भूतादि में तत्त्व के देखने वाले हैं। ऋषियों के पुत्र ऋषीक तो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥८४॥

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ॥८५॥
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।
ऋषन्ति वै श्रुतं यस्माद्विशेषाश्चैव तत्त्वतः।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ॥८६॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥८७॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥८८॥
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः।
ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ॥८९॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोतथ्यस्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चोशिजस्तथा ॥९०॥
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यस्तथा धराः।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ॥९१॥

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करते हैं इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ॥८५॥ ऋषियों के जो पुत्र हैं वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं। क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं और तत्त्व से विशेषों को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते हैं ॥८६॥ अव्यक्तात्मा—महात्मा—अहङ्कारात्मा—भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है। इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच हैं उन्हें सुनो ॥८७॥ भृगु—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलह-

क्रतु—मनु—दक्ष—वसिष्ठ और पुलस्य ये दश हैं। ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र हैं जो ईश्वर से स्वय उद्भूत हुए थे ॥८८॥ जिस ऋषि से प्रवृत्त होते हैं, महान् हैं इससे महर्षि होते हैं। ये ऋषि ईश्वरो के पुत्र हैं उन्हे अब जान लो ॥८९॥ काव्य-बृहस्पति-कश्यप-उशना-उतथ्य-वामदेव-अयोज्य-ऐशिज-कर्दम-विश्रवा-शक्ति, वालखिल्य-धरा—ये ऋषि कहे गये हैं और ज्ञान से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९०॥९१॥

ऋषिपुत्रानृषिकास्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ।
वत्सरो नग्नहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ॥९२॥
बृहदुक्थ शारद्वाश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शारद्वतः ॥९३॥
वाजश्रवा सुवित्तश्च सुवाग्वेपपरायणः ।
दधीच. शङ्खमाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषिताङ्गता. ॥९४॥
ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥९५॥
भृगु काव्य. प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि ।
श्रोर्वोऽथ जमदग्निश्च विद सारस्वतस्तथा ॥९६॥
प्रष्टिषेण ह्यरूपश्च वीतहव्य सुमेधसः ।
वैन्यः पृथुर्दिवोदास. प्रद्वारोगृत्समाप्तभ ।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥९७॥
अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलिः ।
तथामृतस्यना गार्ग्यः शैनी सहूतिरेव च ॥९८॥

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि ।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ॥१०१॥
औगजो वृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतमास्तथा ।
कक्षीवाश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता अङ्गिरसो वरा ।
एते मन्त्रकृत सर्वे काश्यपास्तु निवोधत ॥१०२॥

ऋषि-पुत्र और ऋषिको को गर्भ से उत्पन्न समझ लो । वत्सर-नग्रहू-भारद्वाज-वृहदुक्थ-शारद्वान्-अगस्त्य-ऐशिज-ऋषि-दीर्घतम-वृहदुक्थ-शरद्वन-वाजश्रवा-मुवित्त-सुवाग्-वेपपरायरण-दधीच-शङ्खमान-राजा और वंश्रयण-ये इतने सब ऋषीक कहे गये हैं और वे सत्य से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९२॥९३॥९४॥ जो इनसे अन्य हैं वे ईश्वर और ऋषीक कहे गये हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं उन्हे पूर्ण रूप से जान लेना चाहिए ॥९५॥ भृगु-काव्य-प्रचेता-दधीच-आत्मवान् और्व-जमदग्नि-बिद-सारस्वत-अद्रिषेण-अरुप-वीतहव्य-सुमेधस-वैन्य-पृथु-दिवोदास-प्रश्वार, गृत्समान्-नभ ये उन्नीस मन्त्रवादी है ॥९६॥९७॥ अङ्गिरा-वेघस-भारद्वाज-वाष्कलि-अमृत-गार्ग्य-शेनी-संहृति-पुरुकुत्स-मान्धाता-अम्बरीप-आहार्य-आजमीढ-ऋषभ-बलि-पृषदश्व-विरूप-कण्व-मुद्गल-युवनाश्व-पौरुकुत्स-त्रसद्दस्यु-सदस्युमान्-उतथ्य-भरद्वाज-वाजश्रवा-आयाप्य-सुवित्ति-वामदेव-औगज-वृहदुक्थ-ऋषि-दीर्घतमा-कक्षीवान्-ये तेतीस वर अङ्गिरस कहे गए हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं। अब कश्यपो को जान लो ॥९६॥९७॥९८॥-॥९९॥१००॥१०१॥१०२॥

काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च ।
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ॥१०३॥
अत्रिरर्द्धसनश्चैव श्यामावाश्चाय निष्ठुरः ।
वल्गूतको मुनिर्द्धीमान्स्तथा पूर्वातिथिश्च य. ।
इत्येते चात्रय. प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ॥१०४॥
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः ।
चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसु ॥१०५॥

षष्ठस्तु मैत्रावरुण कुण्डिन सप्तमस्तथा।
सद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ वृहस्पति ।
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारका ॥१०६॥
एते चैवहि कर्त्तारो विधर्मध्वसकारिण ।
लक्षण ब्रह्मणस्चैतद्विहित सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हिते स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितम्परं ।
अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मण ॥१०८॥
तथा निर्वचन ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् ।
निन्दा तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वच ॥१०९॥
प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातो प्रशसा गुणवत्तया ।
इदन्त्विदमिद नेदमित्यनिश्चित्य संशय ॥११०॥

काश्यप-वत्सार विश्रम-रैभ्य-असित देवल—ये छ ब्रह्मवादी होते हैं ॥१०३॥ अत्रि अर्चिसम-श्यामावान्-निष्ठुर-वल्गूतक मुनि धीमान् पूर्वातिथि—महर्षि मन्त्रकार आत्रेय कहे गए है ॥१०४॥ वशिष्ठ शक्ति पाराशर-चौथा इन्द्र प्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु-छठा मैत्रावरुण-सातवाँ कुण्डिन-आठवाँ सुद्युम्न-नवम् बृहस्पति-दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले हैं ॥१०५॥१०६॥ ये सब करने वाले और विधर्म के ध्वस करने वाले हैं। यह ब्रह्मा का लक्षण समस्त शाखा वालो मे विहित है ॥१०७॥ हिति धातु से हेतु कहा गया है जो परो के द्वारा उदित का निहनन करते हैं। अर्थ परिप्राप्ति गतिकर्म वाली हिनोत से होता है ॥१०८॥ तथा वाक्यार्थ का अवधारण निर्वचन बोलना चाहिए। आचार्य लोग, जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है, उसको निन्दा कहते हैं ॥१०९॥ प्रपूर्वक शस धातु से गुणवत्ता के कारण मे प्रशसा होती है अर्थात् प्रशसा कही जाती है। यह है—यह नहीं है ऐसा अनिश्चय करके ही सशय होता है ॥११०॥

इदमेव विधातव्यमित्यय विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वाद्बुधै परकृति स्मृता ॥१११॥
ो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्प स उच्यते ।
ुराविप्रान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमै: शुद्धविस्तरै: ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥११३॥
यथा हीद तथा तद्वै इद वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥११४॥
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधैः ।
तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजै: ॥११५॥
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥११६॥
अल्पाक्षरमसन्दिग्ध सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥११७॥

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है। अन्य-अन्य के कथन होने से बुधों के द्वारा परकृति कही जाती है ॥१११॥ जो अत्यन्तर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है। पुरा विक्रान्त वाची होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ॥११२॥ मन्त्र ब्राह्मण कल्पों के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमों के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ॥११३॥ जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है। यह अथवा उसी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ॥११४॥ यह आदि में ब्राह्मण का लक्षण बुधों के द्वारा किया गया है। ब्राह्मणों के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ॥११५॥ विधि दृष्ट कर्मों में मन्त्रों का कल्पन होता है। मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ११६॥ सूत्रों के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला-असन्दिग्ध-सार वाला-विश्वतोमुख-अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं। ११७॥

॥ प्रकरण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ॥

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ।
कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥१॥
द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेद तद्वदिष्वे महामते ॥२॥

परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातय ।
संवृत्ता युग दोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम् ।।३।।
भ्रश्यमान युगवशादल्पशिष्ट हि दृश्यते ।
दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्ट कृतादिदम् ।।४।।
वीर्यं तेजो बल वाक्य सर्वञ्चैव प्रणश्यति ।
वेदवेदा हि कार्या स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ।।५।।
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाश गमिष्यति ।
यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ।।६।।
आद्यो वेदश्चतुष्पाद शतसाहस्रसज्ञित ।
पुनर्दशगुण कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ।।७।।

ऋषियो ने इस प्रकार के वचनों को सुनकर सूतजी से सुदु तर वचन कहा—हे महामते ! वेद पहले किस प्रकार व्यस्त किये गये थे इस ात को हमको आप बतलाइये ।।१।। श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! द्वापर र परावृत्त हो जाने पर स्वायम्भुव मन्वन्तर मे ब्रह्माजी ने यह मनु से कहा, से मैं बतलाऊँगा ।।२।। हे तात ! युग के परिवृत्त हो जाने पर द्विजाति लोग वल्प वीर्य वाले हो गये थे । सभी युग के दोष से वे यथाक्रम हीन वीर्य ो गये थे ।।३।। युग के कारण से सब भ्रश्यमान और अल्प शिष्ट दिखलाई देता है । यह दस हजार के भाग से कृत युग से अवशिष्ट होता है ।।४।। वीर्य तेज बल और वाक्य यह सभी नष्ट हो जाते हैं बेद के ज्ञान वाले सब

तदिदं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ॥६॥
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ॥१०॥
अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परन्तपः ।
द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥११॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ॥१२॥
जैमिनिश्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च ।
पैलन्तेषां चतुर्थन्तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ॥१३॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलञ्जग्राह विधिवद्द्विजम् ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥१४॥

इस प्रकार से कहा हुआ लोक के हित में रत रहने वाला मनु ने तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो—यह कहकर प्रभु ने चार पाद वाले एक वेद को चार प्रकार से विभाजित किया था ॥८॥ हे तात ! ब्रह्माजी के वचन से लोकों के हित की कामना से आपके वर्त्तमान में यह वेद का कल्पन किया था ॥६॥ अब मैं मन्वन्तर से व्यतीतों के प्रकल्पन को बताऊँगा। हे सत्तमो ! अब आप लोगों को प्रत्यक्ष से परोक्ष को जान लेना चाहिए ॥१०॥ इस युग में किया हुआ व्यास (विस्तार) परन्तप एवं पाराशर्य है। वह द्वैपायन इस नाम से ख्यात हुआ है और भगवान् विष्णु का अंश कहा गया है ॥११॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होते हुए उसने वेद के व्यस्त करने का उपक्रम किया था। इसके अनन्तर वेद के कारण से उसने चार शिष्यों को ग्रहण किया था ॥१२॥ जैमिनि—सुमन्तु—वैशम्पायन और उनमें चौथा पैल, पाँचवाँ लोमहर्षण था ॥१३॥ ऋग्वेद का श्रावक (सुनने वाला) पैल को ग्रहण किया और पैल द्विज को विधि के साथ स्वीकार किया था। यजुर्वेद के प्रवक्ता वैशम्पायन को ग्रहण किया ॥१४॥

जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥१५॥
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ।

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वर प्रभुः ॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तञ्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥१७॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभि ।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ॥१८॥
तत. स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेद समकल्पयत् ।
होतृक कल्प्यते तेन यज्ञवाह जगद्धितम् ॥१९॥
सामभि सामवेदञ्च तेनोद्गात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥
आख्यानैश्चाप्युपाख्यै र्गाथाभि कुलकर्मभिः ।
पुराणसहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारद ॥२१॥

सामवेद के अर्थ का श्रावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था । इस प्रकार से अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषियो मे श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप में ग्रहण किया था ॥१५॥ इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ॥१६॥ यजुर्वेद एक ही था, उसको चार प्रकार के भेदो मे कल्पित किया था । उसने उसमे यज्ञ की कल्पना की जो कि चतुर्होत्र था ॥१७॥ यजु से आध्वर्यव, ऋक् से उसी प्रकार होत्र, साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया । अथर्व वेद से यज्ञ मे ब्रह्मत्व किया था ॥१८॥ इसके अनन्तर उसमे ऋक् का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी । उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत-हित की कल्पना की जाती है ॥१९॥ सामों से सामवेद को और उससे उद्गात्र को रोचित किया था । राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ॥२०॥ आख्यानो से तथा उपाख्यानों से गाथाओ के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणों के अर्थ के विशारद ने पुराण सहिता की अर्थात् पुराण सहिता की रचना की ॥२१॥

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमयायुजत् ।
युञ्जानः स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चय ॥२२॥

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते त सः ॥२३॥
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विष्कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥२४॥
इन्द्रप्रमतये चैका द्वितीया बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥२५॥
बोधन्तु प्रथमा शाखा द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यमथापराम् ॥२६॥
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तमः ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेय यशस्विनम् ॥२७॥
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विज ॥२८॥

जो कुछ यजुर्वेद में शिष्ट था उसमें इसके पश्चात् यज्ञ को योजित किया था । यजुर्वेद में वह युञ्जाल थे यही शास्त्र का विशेष रूप से निश्चय है ॥२२॥ पदों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम हैं । इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ॥२३॥ पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार में विभाजित किया था । दो करके प्रभु ने संयुग में शिष्यों के लिये दे दिया था ॥२४॥ एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को बाष्कलि के लिये दिया । द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा में अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन कर दिया था ।.२५॥ प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढ़ाया और दूसरी शाखा को अग्नि-माठर को पढ़ाया था । तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ॥२६॥ द्विजों में परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढ़ा दिया

था ॥२७॥ सत्यश्रवा द्विज ने जो कि महान् यश वाला था, सत्य मे सत्यश्रवस अग्र्य पुत्र को पढ़ाया था ॥२८॥

सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयामयद्विभुः।
सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ॥२९॥
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः।
सत्यश्रियस्तु विद्वास. शास्त्रग्रहणतत्पराः ॥३०॥
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथ(ा)न्तरः।
वाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ॥३१॥
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वितः।
जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्द्विजः ॥३२॥
कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः।
जनकस्याश्वमेधेन कथं वाद वभूव ह ॥३३॥
किमर्थञ्चाभवद्वाद. केन सार्द्धमथापि वा।
सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितन्तव।
ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ॥३४॥
जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः।
ऋषीणान्तु सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकशः।
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः ॥३५॥

उस विप्र ने भी फिर अपने सत्यतर नामक पुत्र को पढाया था सत्यश्री वाला, महान आत्मा से युक्त और सत्य धर्म मे परायण था ॥२९ उसके महान् ओज वाले तीन शिष्य हुए थे। वे सत्यप्रिय परम विद्वान् और शास्त्र के ग्रहण करने मे तत्पर थे ॥३०॥ उनमे पहिला शाकल्य था और उस दूसरा रथन्तर था। वाष्कलि और भरद्वाज ये शाखाओ के प्रवर्तक हु थे ॥३१॥ देवामित्र शाकल्य तो ज्ञान के अहङ्कार से बड़ा ही गर्व वाला था वह जनक के यज्ञ मे विनाश को प्राप्त हुआ था ॥३२॥ शाकपाय

हुआ ? जनक के अश्वमेध में वाद कैसे हुआ था ? ॥३३॥ और वह वाद किस लिए हुआ था और किसके साथ हुआ था ? यह सब जैसा भी कुछ हुआ था वह समस्त वृत्तान्त वर्णन करें क्योंकि आपको सभी कुछ विदित है। ऋषियों के इस वचन को सुन कर इसके अनन्तर उसका उत्तर कहने लगे ॥३४॥ श्रीसूत जी ने कहा—जनक के अश्वमेध में बहुत बड़ा समागम हुआ था। सहस्रों की संख्या में अनेक ऋषिगण वहाँ आये थे क्योंकि राजर्षि जनक के उस यज्ञ को सभी देखने की इच्छा वाले थे ॥३५॥

आगतान् ब्राह्मणान् दृष्ट्वा जिज्ञासास्याभवत्तत ।
को न्वेषां ब्राह्मण श्रेष्ठ कथं मे निश्चयो भवेत् ।
इति निश्चित्य मनसा बुद्धिं चक्रे जनाधिप ॥३६॥
गवां सहस्रमादाय सुवर्णं मधिकं तत ।
ग्रामान् रत्नानि दासाश्च मुनीन् प्राह नराधिप ।
सर्वानहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिन ॥३७॥
यदेतदाहृतं वित्तं यो व श्रेष्ठतमो भवेत् ।
तस्मै तदुपनीतं विद्यावित्त द्विजोत्तमा ॥३८॥
जनकस्य वच श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमा ।
दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिघृक्षव ।
श्रद्धयान्वक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्वणा ॥३९॥
मनसा गतवित्तास्ते ममेदं धनमित्युत ।
ममैवेतन्न वेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते ।
इत्येव धनदोषेण वादास्तत्रानेकशः ॥४०॥
तथान्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मवाहसुतु कवि ।
याज्ञवल्क्यो महातेजातपस्वी ब्रह्मवित्तम ॥४१॥
ब्रह्मणोऽङ्गात् समुत्पन्नो वाक्यं प्रावाच सुस्वरम् ।
शिष्य ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्गृहाण भो ॥४२॥

आये हुए ब्राह्मणों को देख कर इसके अनन्तर इसको जिज्ञासा हुई कि इन ब्राह्मणों में कौन महाब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ है—यह निश्चय मुझे कैसे होवे।

मन मे ऐसा निश्चय करके उस जनो के स्वामी ने बुद्धि की अर्थात् विचार किया था ॥३६॥ सहस्र गौओ को लाकर और बहुत-सा सुवर्ण, ग्राम, रत्न, दासो को लाकर वह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालो को शिरसे प्रपन्न हूँ ॥३७॥ जो यह सब धन लाया गया है, आप लोगो म परम श्रेष्ठ द्विज होगा हे उत्तम ब्राह्मणो! विद्या के धन वाले को यह उपवीत किया जायगा ॥३८॥ उन श्रुतिक्षम मुनियो म उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि से उसे ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वेद के ज्ञान के मद से उल्वण व सब अन्योन्य मे श्रद्धा करने लगे ॥३९॥ मन से गतचित्त वाले यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नही अथवा कोई अन्य बोल क्या विकल्प किया जाता है। इस प्रकार से धन के दोष से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ॥४०॥ उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाह का पुत्र कवि महान् तेज वाला, तपस्वी और ब्रह्मवित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग मे समुत्पन्न हुये थे, शिष्य से सुन्दर वाक्य बोले—जो ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ! आप इस धन को ग्रहण करिये ॥४२॥

नयस्व च गृह वत्स ममैतन्नात्र सशय ।
सर्ववेदेष्वह वक्ता नान्य कश्चित्तु मत्सम ।
यो वा न प्रीयते विप्रा स मे ह्वयत माऽचिरम् ॥४३॥
ततो ब्रह्मार्णव क्षुब्ध समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच तत स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ॥४४॥
क्रोध माकार्षु विद्वासो भवन्त सत्यवादिन ।
वदामहे यथायुक्त जिज्ञासन्त परस्परम् ॥४५॥
ततोऽभ्युपागमस्तेषा वादा जग्मुरनेकश ।
सहस्रधा शुभैरर्थै सूक्ष्मदर्शनसम्भवै ॥४६॥
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानैरलङ्कृता ।
आपोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौधपरिवर्जना ।
वादा समभवन्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ॥४७॥

ऋषयस्त्वेकत सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकत ।
सर्वोमिति होवाच वादकर्त्तारमञ्जसा ॥४६॥

हे वत्स ! इसे गृह मे ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमे तनिक-भी संशय नही है। समस्त वेदो मे मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नही है। जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नहीं करता हो वह मेरे साथ सम्प्रश्न करे। इसके पश्चात् सम्प्लव के समय मे समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणों का सागर क्षुब्ध हो उठा था। इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ॥४३॥४४॥ आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए। परस्पर मे जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ॥४५॥ इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रा प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थों के द्वारा अनको वाद हुए ॥४६॥ लोक मे तथा वेद मे विद्या स्थानो मे विभूषित—दानोत्तम गुणों से युक्त—नृपो के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओ के यहाँ अनक वाद हुये थे ॥४७॥ एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे। वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमे से उनका उत्तर नहीं बोला था ॥४८॥ तब उस ब्रह्म की राशि महान् द्युति वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियो को विजित करके वाद के कर्ता शाकल्य से सचानन बोले ॥४६॥

शाकल्य वद वक्तव्य किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वव जडमानेन वाताध्मातो यथा दृति ॥५०॥
एव स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्राम्यलोचन ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्य त परुष मुनिसन्निधौ ॥५१॥
त्वमस्मास्तृणवत्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधन महासार स्वयग्राह जिघृक्षसि ॥५२॥
शाकल्येनैवमुक्त स्यादाज्ञवल्क्य समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठाना बल विद्धि विद्यानत्वार्यदर्शनम् ॥५३॥

अथ सन्नोदित प्रश्न याज्ञवल्क्येन धीमता ।
शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ॥५६
एव मृत स शाकल्य प्रश्नव्याख्यानपीडित ।
एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषा धनार्थिभि ।
ऋषीणा मुनिभि सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ॥६०
सर्वे पृष्टास्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रश ।
व्याख्याय वै मुने तेषा प्रश्नसार महामति ॥६१
याज्ञवल्क्यो धन गृह्य यशो विख्याप्य चात्मन ।
जगाम वै गृहस्वस्थ शिष्यै परिवृतो वशी ॥६२
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजात्मा द्विजसत्तम ।
चकार सहिता पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तम ॥६३

इसके अनन्तर शाकल्य ने पहिले एक सहस्र प्रश्न उनसे किए थे और याज्ञवल्क्य ने उस समय मे समस्त ऋषियो के सुनते हुए सब प्रश्नो के उत्तर दे दिए थे ॥५७॥ जब शाकल्य निर्वाद हो गए तो याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा—आप मेरा भी एक प्रश्न कामिक बतलाओ । इस वाद का पण शाप बोले वह मृत्यु को जावे ॥५८॥ इसके पश्चात् धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा सञ्चोदित उस प्रश्न को शाकल्य ने न जानकर मृत्यु को प्राप्त किया ॥५९॥ इस प्रकार से वह प्रश्न के व्याख्यान स पीडित शाकल्य मृत हो गया । इस प्रकार से धन के अर्थी मुनियो के साथ उन ऋषियों का और याज्ञवल्क्य का बहुत ही बडा वाद हुआ था ॥६०॥ सबके द्वारा सैकडो तथा सहस्रो पूछे गए प्रश्नो की व्याख्या करके और उनके प्रश्नसार को समझा करके महामति याज्ञवल्क्य ने धन को ग्रहण करके और अपना यश विख्यात करके शिष्यो के द्वारा परिवृत वशी स्वस्थ होता हुआ अपने घर को चले गए ॥६१॥६२॥ पदवित्तम–द्विज श्रेष्ठ–महात्मा और बुद्धिमान देवमित्र शाकल्य ने पाँच सहिता की ॥६३॥

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्तथा ।
खालीयश्च तथा मत्स्य शैशिरेयस्तु पञ्चम. ॥६४

कामश्चार्थेन सम्बद्धस्तेनार्थं कामयामहे ।
कामप्रश्नधना विप्रा कामप्रश्नान्वदामहे ॥५४॥
पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मान्नीत धन मया ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्य क्रोधमूर्च्छित ।
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थमद्वच ॥५५॥
ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान् कामप्रश्नान् यथार्थत ।
तत समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ॥५६॥

हे शाकल्य ! बोला जो कुछ भी आपका वक्तव्य हो क्या ध्यान करते हुए चुपचाप खडे हुए हैं ? आप तो जडमात्र मे पूर्ण हैं जैसे वात से आध्मात इति होता है ॥५०॥ इस प्रकार से उसके द्वारा धर्षित होते हुए रोष स ताम्र मुख और लोचना वाले उनने मुनियो की सन्निधि म उस याज्ञवल्क्य पुरुष से कहा ॥५१॥ आप मुझको तिनके की भाति त्याग करके तथा इन अन्य श्रेष्ठ द्विजो का भी त्याग करक इस महान् सार वाले विद्या धन को स्वय ही ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ शाकल्य क द्वारा इस तरह स कहे हुए याज्ञवल्क्य न उससे कहा—विद्या के तत्वार्थ के देखने वाले ब्रह्मियो के बल को जान लो ॥५३॥ काम की अर्थ मे सम्बद्धता होती है इसलिए हम अर्थ की कामना करते हैं। ब्राह्मण काम क प्रश्न धन वाले होते हैं और हम काम के प्रश्नो का बोलते हैं ॥५४॥ राजर्षि का यह प्रण है इससे मैंने धन को लिया है। यह उसका वचन सुनकर शाकल्य क्रोध मे मूर्छित होते हुए याज्ञवल्क्य से काम प्रश्न के अर्थ वाले वचन को बोले ॥५५॥ अब मेरे द्वारा उद्दिष्ट काम प्रश्नो को यथार्थ रूप स बोलो। इसके बाद पुन दोनो ब्रह्म वेत्ताओ का बहुत बडा विवाद हुआ था ॥५६॥

साग्र प्रश्नमहस्रन्तु शाकल्यस्तमचूचुदत् ।
याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वान् ऋषीणा शृण्वता तदा ॥५७
शाकल्ये चापि निर्वादे यथवल्क्यस्तमब्रवीत् ।
प्रश्नमेक ममापि त्व वद शाकल्य कामिकम् ।
शाप पणाम्य वादस्य अब्रुवन् मृत्युमाप्नुयात् ॥५८

अथ सन्नोदित प्रश्न याज्ञवल्क्येन धीमता ।
शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ॥५९
एव मृत स शाकल्य प्रश्नव्याख्यानपीडित ।
एव वादश्च सुमहानासीत्तेषा धनार्थिभि ।
ऋषीणा मुनिभि सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ॥६०
सर्वे पृष्टास्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रश ।
व्याख्याय वै मुने तेषा प्रश्नसार महागति ॥६१
याज्ञवल्क्यो धन गृह्य यशो विस्थाप्य चात्मन ।
जगाम वै गृहस्वस्थ शिष्यै परिवृतो वशी ॥६२
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजात्मा द्विजसत्तम ।
चकार सहिता पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तम ॥६३

इसके अनन्तर शाकल्य ने पहिले एक सहस्र प्रश्न उनसे किए थे और याज्ञवल्क्य ने उस समय में समस्त ऋषियों के सुनते हुए सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे ॥५७॥ जब शाकल्य निर्वाद हो गए तो याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा—आप मेरा भी एक प्रश्न कामिक बतलाओ। इस वाद का पण शाप वाले वह मृत्यु को जावें ॥५८॥ इनके पश्चात् धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा सञ्जोदित उस प्रश्न को शाकल्य न न जानकर मृत्यु को प्राप्त किया ॥५९॥ इस प्रकार से वह प्रश्न के व्याख्यान से पीडित शाकल्य मृत हो गया। इस प्रकार से धन के अर्थी मुनियों के साथ उन ऋषियों का और याज्ञवल्क्य का बहुत ही बडा वाद हुआ था ॥६०॥ सबके द्वारा सैंकडा तथा सहस्रों पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या करके और उनके प्रश्नसार को समझा करके महामति याज्ञवल्क्य ने धन को ग्रहण करके और अपना यश विख्यात करके शिष्यों के द्वारा परिवृत वशी स्वस्थ होता हुआ अपने घर को चले गए ॥६१॥६२॥ पदवित्तम–द्विज श्रेष्ठ–महात्मा और बुद्धिमान् देवमित्र शाकल्य ने पाँच संहिता की ॥६३॥

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्तथा ।
खालीयश्च तथा मत्स्य शैशिरेयस्तु पञ्चम ॥६४

प्रोवाच संहितास्तिस्र शाकपूर्णरथीतर ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तम ॥६५
तस्य शिष्यास्तु चत्वार केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजा ॥६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्ता परा प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषित पवने पुरे ।
तत्र गच्छत यूय व सद्य पाप प्रणश्यति ॥६८
द्वादशार्क नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुन विशेषत ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्या तरिष्यथ ॥६९॥
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुर समुपागता ।
स्नान कृत विधानेन देवाना दर्शन कृतम् ॥७०॥

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुग्दल-गालव-शालीय-मत्स्य-और शैशिरेय पाँचवें थे ॥६४॥ शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता बनाई और द्विजश्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ॥६५॥ उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव-दालकि-धर्म शर्मा-देव शर्मा थे । ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ॥६६॥ शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे । इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप में गए ॥६७॥ ब्रह्माजी ने उनको चित्त से ही जानकर पवनपुर में प्रेषित किया । उन्होंने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप तुरन्त नष्ट हो जायगा ॥६८॥ द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारों कुण्डों में स्नान करके आप सब इस ब्रह्म हत्या से तर जाओगे ॥६९॥ वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर में आगये । वहाँ उन्होंने विधानपूर्वक स्नान किया और देवों का दर्शन कर के पाप मुक्त हो गए ॥७०॥

॥ इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ॥

